# मोदी Management

## Leadership व सुशासन के मंत्र

विवियन फर्नांडीज

भूमिका : राघव बहल, अध्यक्ष एवं संपादक Network 18

भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का किया गया कोई काम या बोला गया कोई शब्द तक छिपा नहीं रह पाता। मोदी खुद अपने मेगाफोन हैं। शताब्दी का कोई अन्य भारतीय नेता शायद उनसे ज्यादा जनता की निगाह में नहीं रहता। उनके इतने सारे पहलू हैं कि वे हर किसी की कल्पना में साकार हो सकते हैं। उनकी आर्थिक उपलब्धियों को नकारना किसी भी तरह उचित नहीं है। मोदी व्यापार-समर्थक हैं, लेकिन उन्हें बाजार-समर्थक नहीं कहा जा सकता। वे उदारवादी हैं—वह भी माने हुए। मोदी निजीकरण में विश्वास नहीं करते।

नरेंद्र मोदी अफसरों को स्वतंत्रता देकर और राजनेताओं को दूर रखकर उद्यमों को लाभदायक बनाने का प्रयत्न करते हैं। हालाँकि वे ऐसे एकमात्र नेता हैं, जो निजी उद्यमों के लिए जोरदार और निरंतर आवाज उठाते हैं। वे युवाओं को लगातार प्रेरित करते हैं कि वे रोजगार सर्जक बनें, न कि रोजगार तलाशनेवाले। वे मात्र अधिकार की बात करना और दूसरों पर निर्भरता की संस्कृति के विरुद्ध हैं। वे सरकार की न्यूनतम दखलंदाजी के पक्ष में सबसे मुखर वक्ता रहे हैं। वे राज्य को दौड़ाना नहीं चाहते; लेकिन वे यह भी नहीं चाहते कि अफसरशाही रेंगते हुए आगे बढ़े।

कुशल प्रशासक के रूप में अपनी विशिष्ट छवि बनानेवाले नरेंद्र मोदी के प्रबंधन-कौशल और मैनेजमेंट विज्ञान को रेखांकित करनेवाली व्यावहारिक पुस्तक।

# मोदी
# Management

# मोदी Management

## Leadership व सुशासन के मंत्र

विवियन फर्नांडीज

*सौ साल से कुछ ही दिन कम की उम्र*
*हँसते हुए बितानेवाली*
*मेरी प्यारी दादी*
*और हमसे बहुत जल्द बिछड़ जानेवाले*
*मेरे भाई को!*

# भूमिका

मैं विवियन फर्नांडीज को करीब दो दशकों से, और तब से जानता हूँ, जब वे 'टीवी 18' के समाचारों के नए-नए कामकाज में वरिष्ठ पत्रकार के रूप में शामिल हुए थे। मुख्यधारा के प्रकाशनों में काम करके वे बहुत अच्छी प्रतिष्ठा अर्जित कर चुके थे, जबकि हम टीवी के अपेक्षाकृत नए माध्यम में व्यापार पत्रकारिता में जगह बनाने की कोशिश करनेवाले नौसिखिया थे। साफ कहें तो '90 के दशक के आरंभ में अखबारी पत्रकारिता के दिग्गज टीवी खबरों का उपहास ही उड़ाते थे। टीवी न्यूज को बहुत हलका माना जाता था और कहा जाता था कि इसमें गहराई एवं तथ्यों की कमी को छिपाने के लिए लच्छेदार भाषा का इस्तेमाल किया जाता है। ऐसे में हमें बहुत खुशी हुई थी कि विवियन जैसा कोई गंभीर व्यक्ति हमारे साथ काम करने को तैयार हुआ। हमें आशा थी कि उनकी प्रतिष्ठा और विश्वसनीयता का कुछ हिस्सा हमारी 'क्षणभंगुर पत्रकारिता' को जरूर मिल सकेगा।

विवियन में जानकारी को गहराई से जानने-समझने की असाधारण क्षमता थी। अपने आकलनों में वे हमेशा तथ्यों का सहारा लेते थे। बिना प्रासंगिक सामग्री के वे शायद ही कभी किसी विशेषण का इस्तेमाल करते थे। खैर, वह सब तो 1000 शब्दों के गहन जानकारीपरक अखबारी लेख की बात थी। टीवी पर इसे बोधगम्य बनाना अकसर बहुत मुश्किल हो जाता है। विवियन को सबसे पहले इसी चुनौती का सामना करना पड़ा। 150 सेकेंड, 150 शब्द टीवी न्यूज के पैकेज के नियम थे; 1000 शब्द बिल्कुल ही नहीं चल सकते थे। टेलीविजन की कॉपी में ब्योरे को निहायत ही बुद्धिमानी और लगभग निर्दयता

के साथ समेटना होता है। विवियन ने इस नए कार्य के नियम हँसते-खेलते हुए सीख लिये, लेकिन मुझे संदेह है कि वे आज भी, बीस साल बाद भी, कॉपी को इतनी बुरी तरह काटने-छाँटने को थोड़ा भी सही समझते हो।

वर्षों बाद मैंने विवियन की पत्रकारिता में दो प्रमुख परिवर्तन देखे (मोटे तौर पर मेरे विचार भी उसी राह पर चले), '90 के दशक के शुरू के हर युवा की तरह विवियन भी भारत की वामपंथी विचारधारा की ओर आकर्षित थे। हम सभी समाजवाद और बड़ी सरकार के साये में बड़े हुए थे। यहाँ तक कि हम लोग इस तरह की विचारधारा के प्रति मूलरूप से असहज थे, लेकिन हमारे पास बेहतर तरीके से जानने का कोई और रास्ता नहीं था, क्योंकि भारत किसी भी वैकल्पिक व्यवस्था को एकमत से नकारता है। हालाँकि '90 के दशक में वह सब बदल गया। अचानक भारत खुला व्यापार, मुक्त बाजार, निजी उद्यम और छोटी सरकार के गुणों को स्वीकार करने पर बाध्य हो गया। हममें से कई ने राहत महसूस की—एक ऐसी विचारधारा, जो अदृश्य रूप में हम सभी के अंदर छिपी थी, वह उछलकर विश्वास के साथ बाहर निकल आई। भारत को अपनी गरीबी और विकासहीनता की स्थिति से उबरने के लिए इसी की जरूरत थी। उस समय अनजाने में ही हममें से अनेक लोग अस्वैच्छिक वामपंथ से दक्षिणपंथ की ओर आ गए। मुझे लगता है कि विवियन भी उन 'परिवर्तित' लोगों में से थे। दूसरा, अनेक लोग उम्रदराज होने के साथ-साथ अनवरत स्वाध्याय द्वारा जानकारी हासिल करते हैं।

नीतिगत मुद्दों के संवाददाता रहे विवियन आज विशेषज्ञता हासिल कर चुके हैं, एक बीट रिपोर्टर से अब वे नीतियों के जानकार बन चुके हैं। वास्तव में उनमें दोनों का सर्वोत्तम मेल है। उनके पास ब्योरों को समझनेवाली एक पत्रकार की नजर है, जिसके जरिए वे बिना किसी प्रयास के बौद्धिक नतीजा दे सकते हैं। जब वे मेरी पुस्तक 'सुपरपॉवर? : द अमेजिंग रेस बिटवीन चाइनाज हेयर ऐंड इंडिया टरट्वॉइज' के अनुसंधान और संपादन कार्य में लगे थे, तब मैंने उनके इस पहलू को पहचाना था। वे इस बात पर बहस करते कि भारत किस प्रकार अपनी क्षमता से दूर होता जा रहा है; किस तरह से भारत का कमजोर राजनीतिक नेतृत्व अपने पथ से भटक रहा है; किस तरह से वृद्धि संबंधी और

नीति निर्माण की अदूरदर्शिता हमारे विकास व सुरक्षा से समझौता कर रही हैं; गरीबी के बारे में सिर्फ बातें करते रहने से हम किस तरह गरीब ही बने हुए हैं; वामपंथ की ओर झुकाववाले और पुराने वैश्विक राजनीतिक नेतृत्व ने किस तरह से भारत के विकास को बाधित किया है। निरपवाद रूप से ये बहसें मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी के बहुचर्चित गुजरात के गवर्नेंस मॉडल की ओर मुड़ जातीं, जिसका समान रूप से गुणगान भी होता है और मजाक भी उड़ाया जाता है।

अन्य कई पत्रकारों की तरह विवियन को भी मोदी के बारे में हलकी-फुलकी जानकारी थी, लेकिन कई साल बीतते-बीतते विवियन अनचाहे ही गुजरात में मोदी की उपलब्धियों के प्रशंसक बनने लगे। अनेक पत्रकार तो अंधभक्ति या घृणा के बीच फँसे रहे, लेकिन उनके विपरीत विवियन अपनी पहचान मानी जानेवाली तटस्थता के साथ पाठकों को आश्वस्त करने में सफल होंगे।

विवियन का मुख्य जोर इस पर है कि जो देश के कानून और भारत के बहुलतावाद की पैरवी करते हैं, उन्हें मोदी के राजनीतिक हिंदुत्व पर आक्रमण करने के जोश में उनके संवेदनशील अर्थशास्त्र और सरकार के कामकाज को अनदेखा नहीं करना चाहिए। उन्हें भ्रमित नहीं होना चाहिए।

दुःख की बात है कि बकौल विवियन मोदी ने भिन्न मतों को समायोजित करने या सत्ता के विकेंद्रीकरण में बहुत अच्छा नहीं किया। इसके बावजूद मोदी ने अधिकारियों को लंबा कार्यकाल और पूर्ण स्वतंत्रता दी। उन्होंने सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में या अफसरों के तबादलों में राजनीतिक दखलंदाजी की अनुमति नहीं दी। विवियन के अनुसार मोदी काम करनेवाले नेता हैं। उनका क्रियान्वयन बहुत अच्छा है। वे नवीन विचारों का समर्थन करते हैं। वे काम करके सीखते हैं। वे हर चीज में बदलाव लाने वाले रहे हैं। उनके सामने सबसे बड़ी चुनौती शायद मुसलमानों का दिल जीतने और समाज का आधुनिकीकरण करने की है।

विवियन की पुस्तक को मेरी शुभकामनाएँ।

**—राघव बहल**

*संस्थापक और संपादक, नेटवर्क 18*

# प्रस्तावना

नरेंद्र मोदी के बारे में बहुत कुछ कहा जा चुका है, क्या उनके बारे में और भी कुछ कहा जा सकता है? उनके जीवन के बारे में हर बात क्रमशः लिखी जा चुकी है। इसमें या तो उनकी सराहना होती है या उन्हें धिक्कारा जाता है। उनकी आर्थिक उपलब्धियों का गुणगान किया जाता है, बचाव किया जाता है या फिर उपहास उड़ाया जाता है। सन् 2002 के दंगों में उनकी भूमिका की जाँच और अदालतों से उन्हें क्लीन चिट मिलने के बारे में 'द फिक्शन ऑफ फैक्ट-फाइंडिंग' पुस्तक में बताया गया है, जिसका प्रकाशन लोकसभा चुनावों की पूर्व संध्या पर हुआ। यह पुस्तक विशेष जाँच दल की रिपोर्ट पर आधारित है।

मोदी का किया गया कोई काम या बोला गया कोई शब्द तक छिपा नहीं रह पाता। मोदी खुद अपने मेगाफोन हैं। शताब्दी का कोई अन्य भारतीय नेता शायद उनसे ज्यादा जनता की निगाह में नहीं रहता। कुछ उन्हें भारत का संकटमोचक मानते हैं तो अन्य लोग विपत्ति मानते हैं। उनके इतने सारे पहलू हैं कि वे हर किसी की कल्पना में साकार हो सकते हैं। मुसलमान उनकी सरकार से दूर रहे और जब तक उन्होंने राष्ट्रीय परिदृश्य में कदम नहीं रखा, तब तक उन्होंने भी मुसलमानों तक पहुँचने की कोशिश नहीं की। इन कमियों के बावजूद मेरा मानना है कि उन पर राजनीतिक हमलों के लिए उनकी आर्थिक उपलब्धियों को नकारना किसी भी तरह उचित नहीं है। मोदी व्यापार-समर्थक हैं, लेकिन उन्हें बाजार समर्थक नहीं कहा जा सकता। वे उदारवादी हैं—वह भी माने हुए। तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की केंद्र की एनडीए सरकार तो विनिवेश से भी आगे बढ़कर कुछ सरकारी उद्यमों को सचमुच बेचने में ही लग गई थी, लेकिन उसके विपरीत मोदी निजीकरण में विश्वास नहीं करते। इसके बजाय वे

अफसरों को स्वतंत्रता देकर और राजनेताओं को दूर रखकर उद्यमों को लाभदायक बनाने का प्रयत्न करते हैं। हालाँकि वे ऐसे एकमात्र नेता हैं, जो निजी उद्यमों के लिए जोरदार और निरंतर आवाज उठाते हैं। वे युवाओं को लगातार प्रेरित करते हैं कि वे रोजगार सर्जक बनें, न कि रोजगार तलाशनेवाले। वे मात्र अधिकार की बात करना और दूसरों पर निर्भरता की संस्कृति के विरुद्ध हैं। वे सरकार की न्यूनतम दखलंदाजी के पक्ष में सबसे मुखर वक्ता रहे हैं; वे राज्य को दौड़ाना नहीं चाहते, लेकिन वे यह भी नहीं चाहते कि अफसरशाही रेंगते हुए आगे बढ़े।

यह सब वामपंथियों का प्रचार है, जिनकी चुनावी संभावनाएँ बहुत न्यून हो चुकी हैं, लेकिन अपने राजनीतिक प्रभाव से कहीं ज्यादा वे बौद्धिक जगत् में जगह बनाए हुए हैं। ये इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते कि उनकी सरकारों ने भारत को दिवालिया बना दिया है और जिस राज्य में भी उन्होंने राज किया, वहाँ से उद्योग-धंधों को बाहर कर दिया। वे सार्वजनिक क्षेत्र को आर्थिक सुधार शुरू होने से पहले की स्थिति में लाने में असमर्थ हैं और निजी उद्यमों के लिए मुश्किलें खड़ी करना चाहते हैं। अब वे लोग गुजरात की उच्च आर्थिक वृद्धि दर से तो इनकार नहीं कर सकते, इसलिए वे विकास की गुणवत्ता पर सवाल उठाते हैं। बड़े उद्यमों का समर्थन, रोजगारविहीन विकास, निर्दयी पूँजीवाद—ये सब शब्द वे बार-बार इस्तेमाल करते हैं।

गुजरात में स्थायी कृषि विकास हुआ है। अन्य किसी भी क्षेत्र के विकास की तुलना में कृषि विकास ज्यादा गरीबी दूर करता है। गुजरात के आर्थिक विकास को सिर्फ पूँजीपतियों के फायदे के लिए बताना उचित नहीं है। मोदी सरकार भी सामाजिक क्षेत्र में राज्य की अपेक्षा से कम उपलब्धियों के प्रति अनभिज्ञ नहीं है। पिछले दशक में उन्होंने इस कमी को पूरा करने की कोशिश की है। वहाँ पर स्कूलों में जोरदार पंजीकरण अभियान चलाया है। स्कूलों की संख्या दोगुनी हो गई है। उनमें से ज्यादातर सरकारी स्कूल हैं और यह स्थिति केरल से अलग है। अन्य राज्यों में विद्यार्थियों की उपलब्धियाँ बहुत अलग नहीं हैं, लेकिन यह कमजोर तर्क है। मोदी गुजरात में बच्चों के कुपोषण की अधिक दर से बेपरवाह नहीं हैं। उनके व्यापारिक प्रतिनिधिमंडल के सदस्य और बड़ौदा स्थित परिवहन बहुराष्ट्रीय कंपनी के तत्कालीन प्रबंध निदेशक ने देखा था कि मोदी सन् 2007 में यूरोप के दौरे में 'नेस्ले' से जानने की कोशिश कर रहे थे कि क्या वह गुजरात में उच्च

प्रोटीन के गेहूँ की किस्म 'भाल' से बच्चों के लिए पोषक कैंडी बना सकती है। विटामिन युक्त कैंडियाँ आँगनवाड़ियों में उपलब्ध कराई जाती हैं। हालाँकि सरकारी विशेषज्ञ डॉक्टरों की कमी को पूरा करने के लिए निजी स्वास्थ्य सेवाओं पर जोर की कमी अखरती है।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में बाजार काम नहीं करता। मरीज जानकारी के अभाव में डॉक्टरों से पूछताछ नहीं कर पाते। तंत्र में तो कमी है, लेकिन सरोकार में कमी नहीं है। इसके बावजूद गुजरात ने उल्लेखनीय तरक्की की है। उदाहरण के लिए, शिशु मृत्यु-दर सन् 2001 के चौंसठ प्रति हजार से गिरकर अड़तीस तक आ गई। निजी उद्यमियों के नेतृत्ववाला विकास का गुजरात मॉडल तमिलनाडु मॉडल से अलग है, जहाँ पर प्रभावशाली कल्याण योजनाओं के जरिए निजी धन पैदा किया जाता है। पार्टी संबद्धता की परवाह किए बिना गुजरात की सरकार लगातार उद्योगों में निवेश को आकर्षित करती है। उद्योग मंत्रालय के प्रभारी अधिकारी, जिन्हें व्यय खातों का विशेष अधिकार होता है, जो कि अन्य मंत्रालयों और विभागों के उनके साथियों को प्राप्त नहीं होता है। इन्वेस्टर एस्कॉर्ट सेवा शुरू करनेवाला गुजरात भारत का पहला राज्य है। पश्चिम बंगाल में वामपंथियों के सत्ता में आने के बाद उद्योगों के तबाह होने और मुंबई में सन् 1980 के दशक में कपड़ा मिल मजदूरों की लंबी हिंसक हड़ताल के बाद उद्योग-धंधे गुजरात में निरंतर वापी जैसी जगहों पर आने लगे।

विकास का मोदी मॉडल कुछ नहीं है, बल्कि मोदी की अनोखी सोच के कारण ऐसा हुआ है। निवेश प्रोत्साहन की चालक सीट पर सरकारी अधिकारियों को बैठने देनेवाले अन्य मुख्यमंत्रियों के विपरीत मोदी खुद इस मोरचे का नेतृत्व करते हैं। यह राज्य की राजनीतिक बाध्यता थी और निजी आवश्यकता भी।

हरियाणा की अर्थव्यवस्था ने बहुत अच्छी प्रगति की है। महाराष्ट्र और तमिलनाडु एक कदम पीछे ही हैं। कृषि में गुजरात बहुत अच्छा प्रदर्शन करनेवाला राज्य है, लेकिन कुछ अन्य राज्यों ने उससे भी बेहतर काम किया है। अगर राजनीतिक स्थायित्व, नीतियों की निरंतरता, व्यापार संचालन में आसानी और अति सक्रिय शासन की बात करें तो मोदी के नेतृत्व को बहुत उच्च स्थान हासिल होता है।

मोदी शायद अकेले ऐसे नेता हैं, जिनके पास शासन का दर्शन है। वे

प्रशासन को सुसंबद्ध बनाने का प्रयास करते हैं और सुनिश्चित करते हैं कि सशक्त अभियानों के जरिए निरंतर लोगों के संपर्क में रहे और सरकार के स्वामित्व के लिए उनके विभागों के सीमित दायरों से बँधी महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों की सोच को बड़ा किया जाए।

गुजरात का विकास चीनी विशेषताओं वाला है, जिसमें सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और आर्थिक विकास का संगम है। यह विचित्र मेल है कि सन् 2002 के दंगों, वाइब्रेंट गुजरात इन्वेस्टमेंट सम्मेलनों के तुरंत बाद मोदी 'विकास पुरुष' बने और चीन में भी थ्येनआनमन चौक हत्याकांड के बाद अर्थव्यवस्था के 'ड्रेगनहेड' रूप में शंघाई के पुडोंग वित्तीय जिले का विकास हुआ। मोदी गुजरात के विकास और इसके गौरव के साकार रूप में खुद को प्रोजेक्ट करते हैं, इसलिए व्यक्ति और राज्य का भेद धुँधला हो जाता है। उनकी छवि निर्माण कर रहे या राजनीतिक दृष्टि से उनकी सहायता कर रहे कॉरपोरेट्स इसे देशभक्ति के कर्तव्य के रूप में पेश कर सकते हैं। लेकिन मीडिया कॉरपोरेट के पक्ष में सरकारी धन लुटाने का हल्ला मचा रहा है। हालाँकि गुजरात के कॉरपोरेट में धनलोलुपता शामिल नहीं है। यही कारण है कि गुजरात तुलनात्मक रूप से स्वच्छ राज्य दिखाई देता है। अपनी सारी वित्तीय शक्ति के बावजूद कॉरपोरेट मोदी को उभरने से नहीं रोक पाए। वे उनसे डरते हैं।

विपक्ष की निष्क्रियता तथा गुजराती मीडिया के पालतू स्वभाव के चलते मोदी को वामपंथी उदारवादियों और राष्ट्रीय मीडिया के प्रति शुक्रगुजार होना चाहिए, जो निरंतर उन पर तीखी बौछार करके उनकी चेतना को जाग्रत् करते रहे। मानवाधिकार कार्यकर्ताओं और कुछ पत्रकारों की अनवरत सतर्कता ने मोदी को विकास पर ध्यान केंद्रित करने पर मजबूर किया। उन्होंने मुसलिम समुदाय को आशा की एक हलकी सी किरण दिखाई और उनकी निराशा को थामने का प्रयास किया। इन सबने यह सुनिश्चित किया कि मूकों की आवाज विकास के शोरगुल में दबकर न रह जाए।

गुजरात से मेरा पहला परिचय सन् 2008 में हुआ था। उस समय मैं 'स्वांतः सुखाय' या आत्म-संतुष्टि के लिए शासन पर एक शृंखला तैयार कर रहा था। स्टॉक मार्केट तथा फुटकर निवेश की सलाह देनेवाले अग्रणी टीवी चैनल सीएनबीसी-टीवी 18 के इकोनॉमिक पॉलिसी एडिटर के रोजमर्रा के काम से

यह बिल्कुल अलग था। इस कार्यक्रम को बनाते समय मेरी मुलाकात कुछ प्रेरित और समझदार गुजराती अधिकारियों से हुई, जिनके साथ मैं बराबर संपर्क में बना रहा। भारत के शहरों की दशा पर एक टेलीविजन शृंखला बनाने के दौरान भी मुझे गुजरात जाना पड़ा, क्योंकि अहमदाबाद भारत का पहला ऐसा नगर निगम था, जिसने नागरिक बॉण्ड जारी किए थे, जो कि अमेरिका के विपरीत भारत में अब भी दुर्लभ ही हैं।

उसी वर्ष जुलाई में मैंने अपने चैनल के लिए मोदी का इंटरव्यू लिया। चर्चा पूरी तरह से विकास पर केंद्रित रही। इस इंटरव्यू का इरादा मोदी की राजनीति को चमकाना नहीं था। हालाँकि मैंने सोचा कि सन् 2002 के दंगों का राग अलापते रहने से मोदी के शासन के वे सारे पहलू छिपे रह जाएँगे, जिनके बारे में जानना सही आकलन के लिए जरूरी है।

उसके बाद मेरा दो बार मोदी से मिलना हुआ। एक बार नवंबर 2008 में, जब मैं बड़ौदा के पास कनाडाई मेट्रो कोच फैक्टरी में एक परिचर्चा का संचालन कर रहा था। मोदी कांग्रेस पार्टी और मुसलिम समुदाय से उसके संबंधों पर बोलने से खुद को नहीं रोक पाए थे—''वोट बैंक की राजनीति में दिलचस्पी रखनेवाले लोग बम की बात करते हैं। मैं विकास की राजनीति में दिलचस्पी रखता हूँ, इसलिए मैं बम बनानेवाले की बात करता हूँ।''

दूसरी भेंट जनवरी 2012 में हुई, जब वाइब्रेंट गुजरात इन्वेस्टमेंट सम्मिट के बाद मोदी का इंटरव्यू लेने को कहा गया था। मैं उनके आमंत्रण से चकित था। मैं अंदर गया और जल्दी ही बाहर भी आ गया। वह सबसे छोटा इंटरव्यू था। कुछ अर्थशास्त्रियों ने मोदी के नेतृत्व में हुए गुजरात के कृषि विकास का श्रेय सशक्त चेक डैम अभियान को दिया था। हालाँकि हैदराबाद के कुछ नीति विशेषज्ञों ने उनकी धारणा पर सवाल उठाए थे। उन्होंने कहा था कि गुजरात सन् 1990 के दशक में इससे भी उच्च कृषि विकास देख चुका है। उन्होंने वर्षा जल संरक्षण की भूमिका पर तर्क दिए। उन्होंने निरंतर अच्छे मानसून और उत्तर की ओर बहनेवाली नर्मदा नहर के विभिन्न नदियों में जाने और जलीय चट्टानों के भूजल संभरण को इसके लिए उत्तरदायी बताया। उनका कहना था कि गुजरात की कृषि अब भी मौसम के प्रति संवेदनशील बनी हुई है। इस मुद्दे पर आपका क्या कहना है? मैंने मोदी से पूछा था। मैंने पहले से प्रश्न नहीं भेजे थे, लेकिन मुझे मानना

पड़ा। मैंने सोचा था कि मुझे सुविचारित उत्तर मिलेगा। जनसंपर्क अधिकारियों ने मुझसे प्रश्न न करने को कहा था, लेकिन मैंने उन्हें इसकी जरूरत समझाई और प्रश्न किया। मोदी नहीं माने, वे जवाब दे सकते थे। लोग कहते हैं, राजाओं की शिष्टता समय-पालन में होती है। मुझे लगता है कि मुख्यमंत्रियों की शिष्टता पत्रकारों को जवाब देने में होती है। मोदी के मन में यह शंका थी कि यह इंटरव्यू वाइब्रेंट गुजरात के लिए पेड मार्केटिंग का हिस्सा है। वैसे यह अगर विज्ञापन भी होता तो भी यह करदाताओं का धन था। और अगर यह प्रश्न किसी पत्रकार ने नहीं, किसी मार्केटिंग एक्जीक्यूटिव ने किया होता तो किसी मुख्यमंत्री को उसका जवाब देने से परहेज क्यों, जब तक कि वह प्रश्न निहायत ही मूर्खतापूर्ण या असभ्यता भरा न हो? हार मानने के बजाय मैंने मोदी से कहा कि मैं इस प्रश्न को छोड़ता हूँ और इंटरव्यू आगे बढ़ाता हूँ। 'बैड ब्लड (बैर) क्यों पैदा किया जाए', मैंने कहा। 'बैड ब्लड आपके दिल में है!' मोदी ने लेपल माइक निकाल दिया और खड़े होते हुए बोले। मैं घटना से चकित रह गया और बहुत कम मित्रों से मैंने इसकी चर्चा की।

जब नेटवर्क 18 टेलीविजन समूह के संस्थापक राघव बहल ने भारत और चीन पर पेंग्विन के अंग्रेजी भाषी विभाग पोर्टफोलियो द्वारा प्रकाशित अपनी पुस्तक का कार्यकारी संपादक नियुक्त किया तो मुझे गुजरात के बारे में गहन शोध करने और राज्य भर का दौरा करने का मौका मिला। उन्होंने उदारता दिखाते हुए गुजरात, तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश राज्यों पर अपने नाम से ही अध्याय लिखने की अनुमति दी थी। हम इन राज्यों को भारत के 'ड्रैगन राज्य' कहते थे।

सन् 2013 के आरंभ में मैं फिर से गुजरात गया। दिल्ली के विकासशील समाज अध्ययन पीठ की फैलोशिप पर मुझे गुजरात के जनजातीय जिलों में जाने और जनजातीय कल्याण के एक नवीन प्रोजेक्ट के बारे में जानने का मौका मिला। पाँच साल में जनजातियों की औसत आमदनी को दोगुना करने के अपने उद्देश्य में यह योजना असफल रही, लेकिन मुझे ऐसे कई जनजातीय लोग मिले, जिन्होंने बताया कि उन्हें इससे फायदा हुआ। सरकारी योजनाएँ कई कारणों से अपने मकसद में सफल नहीं हो पातीं। अकसर इसका कारण ईमानदारी की कमी रहती है। हालाँकि इस मामले में ऐसा नहीं था। इस योजना को शुरू करनेवाले सचिव ने बहुत उत्साह, परिश्रम और बेहतर प्रबंधन तकनीकों के साथ इसे लागू किया

था। उसका रवैया समाधानोन्मुखी था और दु:ख की बात है कि लोगों ने बताया कि उसके बाद आनेवाले अधिकारियों में इस तरह का रवैया नहीं दिखाया। मुझे लोगों ने बताया कि अब सबकुछ ठीक कर लिया गया है।

मैं नकारात्मक पत्रकारिता में विश्वास नहीं करता। मेरे पेशे में नकारात्मकता को अकसर तटस्थता समझ लिया जाता है। कई पत्रकारों के साथ ऐसी स्थिति है, क्योंकि इसमें कम मेहनत लगती है। अगर कोई सकारात्मक रवैया अपनाता है तो उसे 'बिका हुआ' कहलाने से बचने के लिए बहुत कुछ समझाना पड़ेगा। मेरा इरादा भी कोई बहुत सुंदर तरीके की प्रस्तुति का नहीं था। मैं बस जस-का-तस पेश करना चाहता था।

दु:ख की बात है कि जस-का-तस कह देने या निरीक्षण आधारित पत्रकारिता को इस समय पेशेवर पत्रकारों की मध्यस्थहीनता की ओर से निशाना बनाया जा रहा है, क्योंकि इंटरनेट प्रौद्योगिकी तथा कड़ी प्रतिस्पर्धा के बीच खबरें इसी तरह से निकल रही हैं। भारतीय समाचार-पत्रों में समाचार संकलन का बजट हमेशा कम ही रहा है और यह लगातार कम होता जा रहा है। खबरिया चैनलों में समाचार जुटाना महँगा कार्य है, लेकिन पैसा खर्च किया जाता है सुर्खियाँ बननेवाली सनसनीखेज खबरों पर, पर खबरों को समझने, उन पर विचार करने को महत्त्व नहीं दिया जाता। कुछ शीर्ष समाचार-पत्र भारी मुनाफा कमाते हैं, लेकिन उनका लालच भी कभी कम नहीं होता। विश्वसनीयता की कीमत पर भी नैतिकता की उपेक्षा की जाती है। वे मार्केटियरों और प्रबंधन विशेषज्ञों पर धन लुटाना बेहतर समझते हैं, सड़कों की खाक छान रहे रिपोर्टरों पर पैसा खर्च करना उन्हें बरबादी लगता है। खोजी पत्रकारिता मेरे लिए स्कैंडलों की खोज का नहीं बल्कि नीतियों और कार्यक्रमों की प्रभावशीलता की संपूर्ण पड़ताल का जरिया रहा है। यह अब भी पत्रकार का निजी उद्यम बनी हुई है; सामूहिक संसाधन शायद ही कभी उपलब्ध कराए जाते हैं। टीवी चैनलों में अगर आप एंकर बनने लायक नहीं हैं तो आपके कॅरियर के अवसर सीमित हैं, भले ही आप कितने ही अच्छे रिपोर्टर क्यों न हों। वरिष्ठ एंकर बहुत सारा समय सूर्य की कड़ी धूप से दूर स्टूडियो में ही बिताते हैं और यह विकासपरक रहस्य है कि इससे उनके रंग पर असर क्यों नहीं पड़ता। व्यंग्य की बात अलग है, पर रिपोर्टिंग एक खतरनाक काम हो गया है और लोकतंत्र की अधोसंरचना

के रूप में पत्रकारिता कमजोर पड़ रही है। यही कारण है कि दल और उम्मीदवार बिना किसी तथ्यात्मक चुनौती के डर के लंबे-चौड़े वादे करते रहते हैं।

मैं राघव बहल का अत्यधिक आभारी हूँ, जिनके साथ मैं दो दशकों से जुड़ा हुआ हूँ। मैंने देखा है कि किस तरह से एक विचार और आकांक्षा से उन्होंने एक बड़ा व्यवसाय खड़ा किया है—उनके दर्द, मुसीबत और उद्यमशीलता की निराशा को देखा है। लोगों से सर्वश्रेष्ठ काम निकलवाने का राघव का तरीका बहुत अच्छा है। अगर कुछ सामान्य रूप से अच्छा होता है तो वे उसे उत्कृष्ट कह देंगे। अगर उनके मानकों के हिसाब से कुछ कम हुआ है तो वे कभी इसे बेकार नहीं कहते। इसके बजाय वे कहते हैं, 'क्या हम इस बारे में बैठकर बात कर सकते हैं?' चीन और भारत पर उनकी पुस्तक हम दोनों के लिए ही (मेरे लिए सवैतनिक) एक खोज थी। इस काम में वे बहुत प्रोत्साहक रहे, साथ ही उन्होंने बहुत उदारता से मेरा परिचय भी दिया।

मैं डॉ. जैन को धन्यवाद देना चाहता हूँ। पीयूष दिल्ली के एक जाने-माने हृदय संस्थान में हृदयरोग विशेषज्ञ हैं, लेकिन मैं उन्हें डीजे कहता हूँ, क्योंकि वे जिंदगी को संगीत बना देते हैं। फोटोग्राफी और यात्रा करने के उनके शौक के कारण हम दोनों करीब आए। पिछले आवरण पर मेरी फोटो उनकी प्रतिभा का सम्मान है। जहाँ उम्र खत्म हो जाती है, वहाँ डीजे प्रफुल्लित दिखते हैं।

मैं लंबे समय से मोदी के संचार सलाहकार की भूमिका निभानेवाले धीरेन अवाशिया का भी आभारी हूँ, जिन्होंने अपने सुझाव दिए। मैं हरदेव सनोत्रा को बड़े आदर से याद करता हूँ, जिन्होंने मुझे हर उस घड़ी में आगे बढ़ने में मदद की, जब कभी मैं दुविधा में फँसता दिखा। कृष्णस्वामी का मैं आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे मेरे प्रकाशक सुधीर मल्होत्रा से मिलवाया, जो हमेशा तत्पर और फुरतीले रहे। संपादक दीपा माथुर को भी बहुत-बहुत धन्यवाद, जिन्होंने मेरी पांडुलिपि की गहराई से पड़ताल की और उसमें सुधार किए। मैं नेटवर्क 18 की वीडियो टेप लाइब्रेरी के हिमांशु मेहता और विनोद हरबोला का भी ऋणी हूँ। मैं अपनी पत्नी ग्लेंडा का भी आभारी हूँ, जिनसे मैंने अपनी प्रति पढ़वाकर अपनी परीक्षा ली।

**—विवियन फर्नांडीज**

# अनुक्रम

# 1

# जबरदस्त प्रचारक

*मोदी लगातार जन-संपर्क अभियानों को चलाए रखने में विश्वास करते हैं, जिससे कि उनका संपर्क जनता के साथ लगातार बना रहे और प्रशासन को भी जमीनी हकीकत से वाकिफ रखा जा सके। संभवतः वे अकेले ऐसे नेता हैं, जिनके पास शासन का एक दर्शन है।*

मोदी मूलतः लोगों को जोड़नेवाले नेता हैं। केवल चुनावों के समय ही नहीं बल्कि चुनावों के बीच भी उन्हें प्रचार करना अच्छा लगता है। हर साल वे प्रशासन को एक नया विषय देकर उसमें जोश भर देते हैं। यदि इस साल 'निर्मल (स्वच्छ) गुजरात' विषय है तो अगले वर्ष 'निरोगी बालक' (स्वस्थ बच्चे) का विषय चुना जाता है। मोदी का कहना है कि ये कार्यक्रम अलग नहीं हैं बल्कि एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। उनकी मंशा सरकार को एक टीम की तरह चलाने तथा विकास में लोगों की भागीदारी बढ़ाने की है। एकजुट प्रशासन और लोगों की भागीदारी ही मोदी के शासन करने की शैली है। दोनों मिलकर 'टीम गुजरात' का निर्माण करते हैं।

सन् 2008 में दिए एक इंटरव्यू में मोदी ने कहा था, ''मेरी एक मूलभूत सोच है। जब तक आप उस दर्शन को नहीं समझेंगे, तब तक यह नहीं समझ सकते कि मैं क्या कर रहा हूँ।'' उन्होंने पूछा, ''आप ही बताइए, स्वतंत्रता

संग्राम में इतने लोगों ने अपने प्राणों की आहुति क्यों दी? इसका कारण था कि महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता की व्यक्तिगत इच्छा को एक जन-आंदोलन का रूप दे दिया। मेरा विचार है कि विकास भी एक आंदोलन की भाँति होना चाहिए।''

मुक्त-बाजारवाद के विचार का प्रचार-प्रसार करनेवाले एक संगठन द्वारा दिल्ली में आयोजित एक समारोह में मोदी ने कहा था कि वे 4 पी में विश्वास करते हैं, यानी 'पीपुल पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप मॉडल'। मोदी के विचारों का प्रचार करनेवाले मोदी की इस शैली को पी2जी2 या प्रो-पुअर गुड गवर्नेंस या 'गरीबों के हित में सुशासन' कहते हैं।

''जब तक लोगों की भागीदारी नहीं होगी, तब तक आप अच्छे परिणाम नहीं दे सकते।'' मोदी ने यह बात मुझसे तब कही जब मेरी मुलाकात उनके गांधीनगर के आवास-सह-कार्यालय में हुई, जो कहीं से भी गुजराती स्वरूप का नहीं लग रहा था।

''लोकतंत्र का अर्थ क्या है?'' उन्होंने पूछा। ''जाओ और वोट करो। किसी एक दल या विशेष व्यक्ति के साथ पाँच साल का कॉण्ट्रैक्ट कर लो। मैं नहीं समझता कि लोकतंत्र का यह वास्तविक अर्थ है।''

कोई भी सरकार लोगों की भागीदारी के बिना अपने वादे पूरे नहीं कर सकती है। इसका मोदी ने एकदम जमीनी स्तर का उदाहरण दिया कि कैसे लोग राज्य परिवहन की बसों में यात्रा के दौरान समय काटने के लिए बेवजह सीट के रेक्सीन कवर को फाड़ते या नोंचते रहते हैं और उसके अंदर से पीवीसी फोम निकालते रहते हैं।

उन्होंने कहा कि यह 'मुझे क्या, मेरा क्या' की जो भावना है, इसकी बजाय आपके अंदर एक अच्छा नागरिक होने की या मालिक होने की भावना आनी चाहिए, जो कि अपनेपन ही से आती है।

उन्होंने अपने शासन के मॉडल का उदाहरण दिया, जिसमें सरकारी नेतृत्व के साथ लोगों की भागीदारी को जोड़ा गया है। ''सरकार ही सर्वेसर्वा है, ऐसा मैं नहीं मानता,'' उन्होंने कहा, ''मेरा मूलमंत्र है 'न्यूनतम सरकार, अधिकतम शासन'।''

जनाधारवाले नेताओं को सत्ता और अधिकार जनता से मिलते हैं। मोदी

के मामले में विडंबना यह है कि उन्हें एकाकी माना जाता है। जवानी के दिनों में ही परिवार से अलग हो जाने के कारण उनके पारिवारिक रिश्ते भी नहीं हैं। खबरें बताती हैं कि उनके कुछ सहयोगी और अनुयायी हैं, किंतु दोस्त बहुत कम हैं। संभवतः इसकी भरपाई वे लोगों के साथ रहकर, उन छह करोड़ गुजरातियों के साथ समय बिताकर करते हैं, जिनका वे नेतृत्व करते हैं। वे उनके स्नेह और संभवतः उनकी स्नेहयुक्त बातों के लिए लालायित रहते हैं, हालाँकि वे स्वयं इस बात से इनकार करते हैं। सन् 2002 में विधानसभा का अपना पहला चुनाव जीतने के बाद उन्होंने कहा था, ''लोग मुझ पर प्रभाव नहीं डालते, मैं उन पर प्रभाव डालता हूँ।''[1]

प्रचारकों में संगठन का शानदार कौशल होना चाहिए। वे मूलतः जनांदोलन को खड़ा करनेवाले और लोगों में प्राण फूँकनेवाले होते हैं। राष्ट्रवादी सामाजिक-सांस्कृतिक संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में रहकर मोदी ने लोगों को जुटाने और संगठन चलाने का कौशल सीखा।

इस कौशल की सहायता से ही वे लोगों की क्षमता को पहचानने, उन्हें टीमों में शामिल करने, सामूहिक चर्चा के माध्यम से विचारों या कार्यों को लागू करने के लिए सहमत करने तथा उन्हें कुशलता से संचालित करने के लिए उत्साहित कर सके। उन्होंने अपने जीवनी लेखक नीलांजन मुखोपाध्याय[2] से बातचीत में इसका आभार माना है।

बचपन में ही मोदी पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का प्रभाव पड़ गया था। आठ वर्ष की आयु से ही उन्होंने 'बाल-शाखा' में जाना शुरू कर दिया था। इसमें हलकी-फुलकी कसरत होती है, भारतमाता की आराधना होती है और राष्ट्रवाद की शिक्षाप्रद बातें होती हैं।

सन् 1967 में सत्रह वर्ष की आयु में उन्होंने कॉलेज में दाखिला लिया, लेकिन एक वर्ष बाद उन्होंने घर छोड़ दिया। ऐसा कहा जाता है कि बचपन से माता-पिता के द्वारा उनकी मरजी के बिना शादी कर दिए जाने से दुःखी हुए थे। वे राजकोट के रामकृष्ण मिशन आश्रम में गए, फिर वहाँ से कोलकाता चले गए, जहाँ बेलूर मठ में इसकी एक शाखा है। इसके बाद उन्होंने एक संन्यासी की तरह कुछ समय हिमालय की पहाड़ियों में एकांतवास करते हुए

बिताया। इस प्रकार लगभग दो वर्षों तक वे बेचैनी में यहाँ से वहाँ भटकते रहे और ऐसा लगता है कि वे अपने जीवन की दिशा और दशा तय करने के लिए व्यग्र थे। अहमदाबाद लौटने पर इसी असमंजस की स्थिति में उन्होंने अपने चाचा की उस कैंटीन में काम किया, जो राज्य परिवहन निगम के दफ्तर में थी। इसी दौरान उनका परिचय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अधिकारियों से हुआ।

उन्हें मोदी में एक जोशीला और दृढ़-संकल्पवाला नौजवान नजर आया। चूँकि वे तेली जाति से थे, इस कारण उन्हें लगा कि वे पिछड़ी जाति के युवाओं को संगठन में लाने का काम बखूबी कर सकेंगे। उनके निमंत्रण पर ही वे हेडगेवार भवन में रहने लगे, जिसका नामकरण राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक के नाम पर किया गया था। मोदी अब यहाँ कार्यालय में सबके सेवा-सत्कार के साथ-साथ साफ-सफाई एवं खाना बनाने तक का काम भी करने लगे। यहीं वे प्रांत प्रचारक श्री लक्ष्मणराव इनामदार 'उपाख्य' वकील साहब के निकट संपर्क में आए और उनसे अत्यंत प्रभावित हुए। वे 'वकील साहब' के नाम से जाने जाते थे। वे 1971 तक यहाँ रहे।

आगे चलकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक का दायित्व मिलने के साथ ही मोदी के भाषण-कला निखरती चली गई। यह एक ऐसा हुनर है, जो उनके साथ-साथ, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उसकी राजनीतिक शाखा भारतीय जनता पार्टी के कई नेताओं में देखा जा सकता है। पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की प्रतिभा विख्यात और अद्‌भुत थी। वे अपने श्रोताओं को अपने शब्दों से इस प्रकार मंत्रमुग्ध कर देते थे कि कभी-कभी अपने तनिक ठहराव पर भी वह उनके साथ बँधे रहने पर विवश हो जाते थे।

अरुण जेटली, सुषमा स्वराज और उमा भारती के भाषण बड़े ओजस्वी होते हैं। ऐसा लगता है, मानो वे मन के संकेतक से कहीं लिखी पंक्तियाँ पढ़ते जा रहे हों। पूर्व भाजपा अध्यक्ष लालकृष्ण आडवाणी बोलने की कला के एक जीवंत उदाहरण हैं। उनके बाद अध्यक्ष पद को सँभालनेवाले एम. वेंकैया नायडू भाषणों में नायाब चुटकुलों के लिए मशहूर हैं।

मोदी के विषय में ऐसा कहा जाता है कि वे अगर बातचीत न करें तो

उनका दम घुटने लगता है। स्तंभकार अमूल्या गोपालकृष्णन[3] कहते हैं, ''उनकी बोली एक लयबद्ध उपकरण है, जो अचानक इतना नीचे चली जाती है, मानो कोई षड्यंत्र कर रही हो, फिर विरोधस्वरूप गरजने लगती है और जब वे एक सफल सीईओ की भूमिका में आते हैं तो वास्तविक लय को पकड़ लेती है।'' वे एक बहुत बड़ी आवश्यकता को पूरा करते हैं, क्योंकि मनमोहन सिंह की सरकार का प्रत्यक्ष रूप से दिखने या अपने कार्यों की चर्चा करने में सक्षम न होने के कारण ही एक भरोसेमंद नेतृत्व की आवश्यकता को महसूस किया गया।

मोदी के विरोधी कहते हैं कि माइक से उनका लगाव इस कारण है, ताकि वे अपनी छवि को निखार सकें। इसमें कोई शक नहीं कि मोदी एक जबरदस्त प्रचारक हैं। सार्वजनिक जीवन का ऐसा कोई भी विषय नहीं, जिस पर चर्चा हो रही हो और वे उस पर खुलकर बोलने से चूक जाएँ। यह एक ऐसी आवश्यकता है, जो चुनौती के साथ जुड़ी हुई है।

मंच पर आने के बाद मोदी एक अभिनेता होते हैं और एक श्रोता भी। उनकी आवाज में उतार-चढ़ाव और उसकी लय मंत्रमुग्ध कर देनेवाली होती है। अपने शब्दों की गूँज उन्हें अपने श्रोताओं की ओर से उठती लहर के रूप में सुनाई देती है। उनके भाषण को सुनकर श्रोताओं के बीच एक हर्षोन्माद पैदा हो जाता है और उन्हें उनके बीच मंच पर खड़े होने में आनंद आता है। उनके हाव-भाव में ऐसा बहुत कुछ है, जिसका प्रदर्शन वे उन्मुक्त भाव से करते हैं : दृढ़ संकल्प का संकेत देनेवाली मुट्ठी, चेहरे पर क्रोध, तीखे अंदाज में दिखाई जानेवाली सीधी उँगली। वे अच्छी तरह समझते हैं कि हाव-भाव का टेलीविजन के दर्शकों पर कितना प्रभाव पड़ता है।

एक पुराने सहयोगी[4], जो 18 नवंबर, 2013 को भोपाल के दशहरा मैदान में हुई रैली में उपस्थित थे, उन्होंने बताया कि वहाँ बमुश्किल 5,000 लोग मौजूद थे, जो क्रीड़ा-स्थल की क्षमता का दसवाँ हिस्सा भी नहीं था, लेकिन मोदी इससे परेशान नहीं हुए। टेलीविजन के दर्शकों को पता भी नहीं चला होगा कि यहाँ इतने कम लोग मौजूद थे, क्योंकि मोदी ने उनकी ओर संकेत करते हुए कहा, ''बॉलकनी में सबसे पीछे बैठे हुए मेरे मित्रो, क्या

आप लोग मुझे सुन पा रहे हो?'' और कैमरा भी उनके हाव-भाव तथा भाषण को कैद कर रहे थे, न कि 'बालकनी' में बैठे उन लोगों को, जो असल में वहाँ थे ही नहीं।

लंबे अभ्यास के कारण मोदी ने लोगों को जुटाने की कला में महारत हासिल कर ली है। उनका प्रशिक्षण तब शुरू हुआ जब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने उन्हें गुजरात में बीजेपी की छात्र शाखा की कमान सौंपी। यहीं से उनकी छात्र राजनीति की शुरुआत हुई। पहले जनांदोलन से उनका परिचय सन् 1974 में हुआ, जब चिमनभाई पटेल की कांग्रेस सरकार के खिलाफ 'नवनिर्माण आंदोलन' चलाया गया।[5] इसकी शुरुआत दो सरकारी इंजीनियरिंग कॉलेजों अहमदाबाद और मोरवी से हुई, जहाँ छात्रों ने छात्रावास का बिल अचानक 80 रुपए प्रतिमाह से बढ़ाकर 120 रुपए करने का विरोध किया। अधिकारियों ने जब अपना फैसला नहीं बदला तब छात्रों ने कॉलेज की संपत्ति जला दी। जल्दी ही पूरे राज्य में विरोध प्रदर्शन शुरू हो गए और उसमें राज्य भर के छात्र एवं मजदूर संगठन शामिल हो गए। गुजरात में त्राहि-त्राहि मचानेवाले सूखे के कारण अनाज की कीमतों में बेतहाशा वृद्धि के मामले को सही ढंग से सँभालने में विफल रही सरकार के खिलाफ नवनिर्माण या समाज के नए सिरे से निर्माण का आंदोलन शुरू हो गया। ऐसा कहा जाता है कि उस दौरान मोदी ने भी उपवास किया था, किंतु उसका अधिक असर नहीं पड़ा और इसकी वजह यह भी थी कि छात्र शुरुआत में नेताओं के प्रवेश को लेकर सजग थे; हालाँकि बाद में उन्होंने स्वयं स्वतंत्रता सेनानी जयप्रकाश नारायण को इसमें शामिल होने का न्योता दिया, जिन्होंने इंदिरा गांधी की सरकार के खिलाफ 'संपूर्ण क्रांति' का नारा दिया। इसी दौरान वे छात्रों के करीब आए।[6]

आपातकाल के दौरान राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबंध लगा दिया गया था, फिर भी मोदी ने गुप्त बैठकें आयोजित कर तथा जेल में जानेवाले साथियों के परिवारों की मदद कर आंदोलन को जिंदा रखा। चूँकि नवनिर्माण आंदोलन के बाद गुजरात में एक गैर-कांग्रेसी सरकार सत्ता में आए, इस कारण जिन लोगों ने लोकतंत्र को कुचलने का विरोध किया था, उनके लिए गुजरात एक शरणस्थली बन गया था। रपटों से ऐसी जानकारी मिलती है कि जब

आर.एस.एस. के नेता को गिरफ्तार किया गया था, तब मोदी उसके बाद दूसरे सबसे बड़े नेता को एक स्कूटर पर बैठाकर सुरक्षित स्थान पर ले गए थे। मोदी ने पुलिस हिरासत में बंद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के शीर्ष नेता के पास महिला सहयोगियों को भेजा और गुपचुप तरीके से उनके जरिए संघ की रणनीति से जुड़े संवेदनशील दस्तावेज बाहर निकलवाए। मोदी ने आपातकाल के दौरान उन पुस्तकों और परचों के वितरण की व्यवस्था की, जिनमें मौलिक अधिकारों के कुचले जाने और सरकार की ज्यादतियों का जिक्र था।

इंदिरा गांधी ने जब दिल्ली में राष्ट्रमंडल देशों के कानून मंत्रियों की एक अंतरराष्ट्रीय बैठक का आयोजन किया, तब मोदी ने उनके पास गुप्त रास्तों से 'इंडियन प्रेस गैग्ड', '20 लाइज ऑफ इंदिरा गांधी' और 'व्हेन डिसओबिडिएंस टू लॉ इज ए ड्यूटी' जैसी पुस्तकें पहुँचाने का इंतजाम किया। मोदी गुप्त रूप से चलाए जा रहे प्रकाशन 'मुक्तवाणी' से भी जुड़े थे। मोदी ने गांधीनगर में सभी विपक्षी सांसदों की बैठक के आयोजन में बड़ी सहायता की। आपातकाल के दौरान ही उन्हें जॉर्ज फर्नांडिस जैसे समाजवादी नेताओं से मिलने का अवसर मिला। मोदी की वेबसाइट से यहाँ ऐसी जानकारी मिलती है कि उन्होंने केंद्र में बैठी अलोकतांत्रिक सरकार को उखाड़ फेंकने के लिए काम किया।

सन् 1987 में बीजेपी में अपनी प्रतिनियुक्ति और राजनीति में औपचारिक प्रवेश के बाद मोदी ने गुजरात के सूखा-प्रभावित लोगों को दी जानेवाली राहत में भ्रष्टाचार को उजागर करने के लिए न्याय यात्रा निकाली। 'इंडिया टुडे' का कहना है कि ऐसी चार यात्राओं में जीपों को रथों की तरह सजाया गया था, जिन्होंने चालीस दिनों से भी अधिक अवधि में गुजरात की 182 में से 115 तालुका और 18,000 में से 15,000 गाँवों का दौरा किया। इन यात्राओं के दौरान उन्होंने मजदूरों से बात की, उन्हें उनके हक के प्रति जागरूक बनाया।

"किल्लत के नाम पर अधिकारी हर दिन लाखों रुपए लूट रहे हैं। बीजेपी उनका पर्दाफाश करने के लिए प्रतिबद्ध है।" मोदी ने एक पत्रिका के संवाददाता से बातचीत में कहा था।[7]

मोदी ने इस मुहिम को लोक शक्ति यात्रा की मदद से आगे बढ़ाया, जो तीन महीने तक चली और इसमें लगभग 10,000 गाँवों को शामिल किया

गया। यह मंदिरों के शहर अंबाजी से शुरू हुई थी। इसने केशुभाई पटेल को न केवल सौराष्ट्र का बल्कि पूरे राज्य के नेता के रूप में पेश किया। इसी दौरान राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से संबद्ध विश्व हिंदू परिषद् ने इलाहाबाद में 'धर्म संसद्' का आयोजन किया और अयोध्या में बाबरी मसजिद के पास शिलान्यास करने की घोषणा की, जिससे कि एक भव्य मंदिर के निर्माण का रास्ता साफ हो सके।

उत्सव और जुलूस भारत के सभी धर्मों का हिस्सा हैं, जिनका इस्तेमाल राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उसके सहयोगियों ने जाति और जनजाति के विभाजनों को पाटकर हिंदू समाज को एकजुट करने के लिए किया। सन् 1983 में 'विश्व हिंदू परिषद्' की 'एकात्मता यात्रा' ने तीन तीर्थस्थलों हरिद्वार, पशुपतिनाथ और गंगासागर का इस्तेमाल धार्मिक भावनाओं को जाग्रत् करने के लिए किया। इन पवित्र स्थलों से लाए गए पावन जल को विधिवत् रूप से पूरे देश में घुमाया गया और उन्हें रामेश्वरम्, कन्याकुमारी तथा सोमनाथ के समुद्र तट पर समुद्र में प्रवाहित कर दिया गया। गुजरात में इस भव्य आयोजन में तेईस अन्य जुलूस भी निकाले गए।

सन् 1987 में विश्व हिंदू परिषद् ने पूरे गुजरात में 'राम-जानकी धर्मयात्रा' निकाली, जिसमें जनजातीय इलाकों को भी शामिल किया गया। अपनी पुस्तक में अच्युत याज्ञनिक एवं सुचित्रा सेठ ने लिखा है कि जैसे ही यात्रा वीरपुर से निकली तो खेड़ा, साबरकाँठा और पंचमहल जिलों में दो गुटों के बीच संघर्ष शुरू हो गया।

रामशिला पूजन यात्रा एक ऐसा बृहत् आयोजन था, जिसमें पूरे देश से 2,75,000 पवित्र ईंटों को इकट्ठा कर सन् 1989 में अयोध्या तक लाया गया, जिससे कि वहाँ एक 'भव्य राम मंदिर' का निर्माण किया जा सके। मोदी ने इस दौरान पूरे गुजरात का दौरा किया और लोगों से इसमें शामिल होने की अपील करने के साथ-साथ स्वयंसेवकों की भी नियुक्ति की, जिनमें से अनेक बीजेपी में शामिल हो गए, इससे उसकी सदस्यता में जबरदस्त वृद्धि हुई।

मोदी के जीवन का एक बड़ा दिन 25 सितंबर, 1990 को आया, जब बीजेपी अध्यक्ष एल.के. आडवाणी की सोमनाथ से 'राम रथ यात्रा' निकली,

जहाँ सन् 1026 में मुसलिम आक्रमणकारियों ने इस मंदिर को ध्वस्त कर दिया था। आडवाणी के अनुसार इस मंदिर का पुनर्निर्माण 'लोकशक्ति' का प्रतीक है। उनके इस अभियान की जिम्मेदारी गुजरात में मोदी को सौंपी गई, उन्होंने आडवाणी के साथ मुंबई तक की यात्रा की। उन्होंने ध्यानपूर्वक आडवाणी की यात्रा की योजना तैयार की, जो 600 गाँवों से होकर गुजरनेवाली थी, जिसमें सड़कों के किनारे करीब पचास रैलियाँ शामिल थीं। मोदी ने नीलांजन मुखोपाध्याय को बताया कि इस यात्रा ने उन्हें 'अपनी संगठनात्मक क्षमता को विकसित' करने का एक अवसर दिया।

राजनीतिक उद्देश्यों के लिए 'रथों'[8] के प्रयोग की शुरुआत तेलुगू सिनेमा के स्टार एन.टी. रामाराव द्वारा की गई थी। 'तेलुगू देशम' की स्थापना के बाद एन.टी.आर. उस शेवरले वैन को लेकर सड़कों पर उतरे, जिसे रथ का रूप दिया गया और उसे 'जागरूकता रथ' का नाम दिया गया था। इसी रथ पर सवार होकर उन्होंने सन् 1983 के विधानसभा चुनावों में विजय की मंजिल को प्राप्त किया। इसे तेलुगू स्वाभिमान का एक ऐसा मंच बना दिया, जिस पर कांग्रेस हाईकमान ने आंध्र के मुख्यमंत्रियों के साथ बुरा व्यवहार कर गहरी चोट पहुँचाई थी। जुगाड़ से बनाए गए इस रथ के दोनों किनारों पर तेज रोशनीवाली लाइटें लगाई गई थीं और लाउडस्पीकर लगातार तेलुगू स्वाभिमान के गाने बजाया करते थे। इस रथ ने 75,000 किलोमीटर की यात्रा तय की थी। आडवाणी का 'रथ' एक एयरकंडीशन डीसीएम टोयोटा मिनी-ट्रक था, जिसे 'महाभारत' सीरियल में अर्जुन के रथ का आकार दिया गया था।

बिहार के मुख्यमंत्री लालू प्रसाद ने आडवाणी को 23 अक्तूबर को समस्तीपुर में गिरफ्तार किया और उन्हें अयोध्या की और बढ़ने से रोक दिया, तब मोदी ने 'दृढ़संकल्प सप्ताह' का आयोजन किया। गुजरात के 1,500 शहरों और गाँवों में निंदा सभाएँ,[9] साथ ही 'बंद' का भी आयोजन किया गया था। इस दौरान बड़े पैमाने पर हिंसा हुई।

तत्कालीन भाजपा अध्यक्ष मुरली मनोहर जोशी की सैंतालीस दिनों की 'एकता यात्रा' के दौरान मोदी की छवि राष्ट्रीय स्तर पर उभर आई, जब उन्होंने यात्रा के अंत में श्रीनगर के लाल चौक पर तिरंगा फहराया। मोदी इस यात्रा की

आयोजना में निकट से जुड़े थे—कन्याकुमारी से रास्तों को तय करना, रात्रिविश्राम के स्थलों को चुनना, रास्ते में पड़नेवाले शहरों और महानगरों में उस जगह पर ठहरना, जहाँ अधिक-से-अधिक मीडिया की कवरेज मिल सके, इसके साथ ही सुरक्षा के खतरों पर भी नजर रखी जा सके।

'मोदी ने इसका नेतृत्व अग्रणी नेता के रूप में किया,' ऐसा उनकी वेबसाइट का कहना है, जिसने विनम्रता की आड़ लिये बिना साफ-साफ लिखा कि इस रथ पर सवार व्यक्ति ही प्रमुख आकर्षण का केंद्र था। किंतु जैसे ही कारवाँ कश्मीर पहुँचा, जोशी घबरा गए। कश्मीरी अलगाववादियों से उनकी जान को खतरा था। जबरदस्त सुरक्षा इंतजामों के बीच तिरंगा फहराया गया और इस दौरान लगभग अस्सी यात्री वहाँ मौजूद थे। संघ के एक स्वयंसेवक का कहना है कि यह समारोह पंद्रह मिनट से भी कम समय में समाप्त हो गया था।[10] इस यात्रा से जोशी की छवि को कोई खास फायदा नहीं हुआ, लेकिन मोदी को देश के कण-कण का ज्ञान हो गया।

मोदीजी द्वारा ओर से लोगों को जागरूक करने का सबसे नया अभियान सरदार वल्लभभाई पटेल की विशाल प्रतिमा के लिए चलाया जा रहा है। उनकी मूर्ति एकता के प्रतीक के रूप में स्थापित कर भारत के पहले गृहमंत्री को सम्मान दिया जा रहा है, जिन्होंने रजवाड़ों को सहमत कर देश को एक सशक्त और एकजुट राष्ट्र का रूप दिया। सरदार भारतीय राष्ट्रवाद के सबसे बड़े संत हैं। गुजरात में पहले भी पटेल की विरासत को आगे बढ़ाने के दावे हुए हैं। चिमनभाई ने खुद को छोटे सरदार के रूप में पेश किया। पूर्व भाजपा अध्यक्ष एल.के. आडवाणी ने अपने आपको लौह पुरुष के रूप में ढाला और वाजपेयी सरकार में अपने आपको 'लौह पुरुष' का नाम दिया। उनके समर्थकों के लिए मोदी अपने '56 इंच चौड़े सीने' के साथ अधिक शक्तिशाली हैं।

रामशिला पूजन यात्रा के समान ही इस अभियान के अंतर्गत देश भर से लोहे के टुकड़े इकट्ठा किए जा रहे हैं, जिनसे साधु बेट में पटेल का स्मारक बनाया जाएगा, जो नर्मदा पर बने सरदार सरोवर बाँध से तीन किलोमीटर की दूरी पर एक टापू पर है। लगभग 2,500 करोड़ रुपए की लागत से इसका निर्माण अमेरिकी कंपनी टर्नर कंस्ट्रक्शन के द्वारा छत्तीस महीने की अवधि में

किया जाएगा। स्मार्ट चिप से लैस बक्सों की सप्लाई सरदार पटेल राष्ट्रीय एकता ट्रस्ट द्वारा की जाएगी, जिसका नेतृत्व मोदी स्वयं कर रहे हैं, और उन बक्सों को गुजरात के एक केंद्रीय कक्ष से ट्रैक किया जाएगा। ग्रामीण स्तर पर होनेवाले कार्यक्रमों को जहाँ इस राष्ट्रीय उद्‌देश्य के लिए सामग्री सौंपी जाएगी, उन पर सेटैलाइट के जरिए नजर भी रखी जाएगी।

एक सर्वोत्कृष्ट संघ कार्यकर्ता होने के कारण मोदी ने अपने आपको 'गुजराती अस्मिता के प्रहरी' के रूप में पेश किया है। सरदार की छवि का इस्तेमाल मोदी को मनमोहन सिंह की तुलना में एक 'कुशल और सक्षम' नेता के रूप में पेश करने के लिए किया गया है, जिन्हें आडवाणी ने 'भारत का सबसे कमजोर प्रधानमंत्री' कहा है।

बीजेपी की मंशा भले ही ऐसी न हो कि एकता का यह प्रतीक 'स्टैच्यू ऑफ लिबर्टी' से दोगुना होकर व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर राष्ट्रवाद को हावी कर दे, लेकिन यह ऐसी तुलना है, जिससे बचा नहीं जा सकता है। वैसे भी मातृभूमि के लिए हिंदू राष्ट्रवादियों में समर्पण सर्वश्रेष्ठ नैतिक गुण होता है। मार्च 2013 में जब मोदी को बीजेपी के प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार घोषित नहीं किया गया था, उससे पहले ही भारतीय-अमेरिकी समुदाय को संबोधित करते हुए मोदी ने कहा था कि उनका नारा है, 'इंडिया फर्स्ट', जिसका अर्थ उनके लिए यह है कि 'देश तमाम धर्म, संप्रदाय, भाषा, विचार और पंथ से ऊपर है।'[11]

यह अवधारणा वैसे तो नुकसानदेह नहीं है, किंतु इसमें नुकसान पहुँचाने की क्षमता अवश्य है। चूँकि बहुत से राष्ट्रवादियों का ऐसा मानना है कि मुसलमानों और ईसाइयों के धार्मिक स्थल भारत से बाहर हैं, इस कारण उनकी आस्था देश के प्रति न होकर मक्का और बैटिकन में है।

सर्वसत्तावादी दर्शनों में राष्ट्र और राज्य को गौरवान्वित किया जाता है। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी अपने आपको चीनी राष्ट्रवाद की झंडाबरदार समझती है। अपने आपको ब्रह्मांड की शक्ति का केंद्र समझने के बाद इसने चीनी सभ्यता के ऐतिहासिक गौरव को फिर से स्थापित करने का बीड़ा उठाया और यह तय कर लिया कि तिब्बती और उइघुर जैसे लोगों की स्वच्छंदता तथा राष्ट्रवादी इच्छाओं को दबा दिया जाएगा। चीन में एक-दलीय शासन को सुदृढ़ करने के

लिए ही विकास के साथ-साथ शक्तिशाली राष्ट्रवाद का फॉर्मूला अपनाया गया है। मोदी साउथ ब्लॉक पर विकास के साथ-साथ कांग्रेस-मुक्त भारत के नारे के साथ पहुँचना चाहते हैं।

सन् 1958 में माओ जेदांग ने ग्रेट लीप फॉरवर्ड अभियान चलाया था, जिससे कि चीन जो दो पैरों पर चल रहा था, वह कृषि के सामूहिकीकरण की सहायता से अन्न के मामले में आत्मनिर्भर हो सके, ताकि कुछ ही वर्षों में उत्पादन के क्षेत्र में अमेरिका को पीछे छोड़ दे। औद्योगिक उत्थान का आकलन इस्पात से किया जाता था। अत: लोगों से कहा गया कि वे इसका उत्पादन चरागाहों के अहाते में भट्ठियों में पुराने लोहे की बेकार चीजों को गलाकर करें। इतिहासकार फ्रैंक डिकोटर का कहना है कि माओ ने सन् 1957 में 5.37 मिलियन टन के लक्ष्य को फरवरी 1958 तक बढ़ाकर 6.2 मिलियन टन कर दिया और फिर मई में 8.5 मिलियन टन और सितंबर में 12 मिलियन टन कर दिया। सन् 1960 के अंत तक चीन को सोवियत यूनियन के स्तर को छूना था और 100 मिलियन टन तक पहुँचकर अमेरिका को पीछे छोड़ना था।[12] इस इस्पात जुनून के चरम पर चीन में देखते-ही-देखते घर-घर में बनाई गई भट्ठियों की संख्या छह लाख तक पहुँच गई। भट्ठियों के ईंधन के लिए मैदानों से पेड़ों का सफाया कर दिया गया।

खेती का नुकसान होने लगा, क्योंकि सभी को इस्पात के उत्पादन में लगा दिया गया था। राष्ट्रीय स्तर पर वर्चस्व स्थापित करने के लिए विशाल लक्ष्यों का निर्धारण आवश्यक होता है। अकसर इसके परिणाम विनाशकारी होते हैं। ग्रेट लीप के बाद चीन अपने पैरों पर नहीं, घुटनों पर आ गया। एकता की मूर्ति का प्रभाव इससे उलट होगा, यदि इसने असहिष्णुता और अव्यक्त असुरक्षा को बढ़ावा दिया।

किंतु इंडिया फर्स्ट भी उच्च राष्ट्रवादी आकांक्षाओं को पूर्ण करने का जरिया हो सकता है। उदाहरण के रूप में, यदि यह लक्ष्य तय किया जाए कि सन् 2020 तक भारत को अमेरिका और चीन के बाद तीसरी सबसे बड़ी आर्थिक महाशक्ति बनाना है।[13] यदि ऐसा हुआ तो विकास को निश्चित रूप से एक अभियान बनाया जा सकता है, जिसमें देश को एक उद्देश्य को पूरा करने के

लिए एक सूत्र में पिरोया जा सकता है। इस बात को साबित करने के लिए कुछ और प्रमाणों की आवश्यकता पड़ेगी कि मोदी सबको साथ लेकर चल सकते हैं, लेकिन उनमें न साहस की कमी है और न ही कार्यान्वयन की क्षमता में कमी है (इस पर आगे के अध्याय में विस्तार से चर्चा की गई है)। हमारे राजनीतिक नेतृत्व में इन बातों की कमी के कारण ही भारत लंबे समय से पिछड़ता चला जा रहा है। जैसा कि राघव बहल ने अपनी पुस्तक में लिखा है—''भारत के सामने केवल एक ही जोखिम है, और वह है भारत के अपने ही नेताओं में उसकी क्षमता और प्रारब्ध को लेकर विश्वास में कमी। अन्य सभी प्रकार की अयोग्यता इसी गहराई तक समा चुकी हीन भावना से जुड़ी है, जिसके शिकार हमारे नीति-निर्धारक हैं। वे भारत को एक भारतीय की क्षमता कहाँ तक जा सकती है, उससे बहुत कम आँकते हैं। वे बस इस बात से संतुष्ट हैं कि भारत एक-चौथाई स्थान पर बना रहे और इस बात पर उन्हें भरोसा ही नहीं होता कि भारत में वह क्षमता है, जो उसे केवल शीर्ष स्थान के पास नहीं, बल्कि शीर्ष पर पहुँचा सकती है। राजनैतिक नेतृत्व में आत्मविश्वास की कमी और भ्रष्टाचार से ग्रस्त गतिहीनता में नौकरशाही सोने पर सुहागा जैसा काम करती है, जो न केवल रिश्वतखोर है, बल्कि उसकी सोच भी बँटी हुई है।''

आपसी द्वंद्व प्रशासनिक एकजुटता के साथ-साथ शासन को भी कमजोर बना देता है। अपने अधिकारियों को विकास के लिए एकजुट होकर आगे बढ़ने की प्रेरणा देने के लिए तथा अपनी सरकार को एक टीम का स्वरूप देने के लिए मोदी ने कुछ अनोखे उपायों को आजमाया है। उनमें से एक है 'वार्षिक चिंतन शिविर'। काम के स्थान से दूर या छुट्टियाँ मनाते हुए आपसी सूझ-बूझ और टीम की भावना विकसित करने का काम व्यापार जगत् आमतौर पर करता आया है; किंतु सरकार में उसका उपयोग उतना नहीं हुआ है या हुआ ही नहीं है। हँसमुख आढ़िया से 2014 में जब मेरी मुलाकात हुई थी, तब वे सहायक वित्त सचिव थे और उनका कहना था कि 2001 में मुख्यमंत्री बनने के बाद मोदी ने जिला कलक्टरों और विकास अधिकारियों की एक दिन की वार्षिक बैठक बुलाई थी। उन्होंने देखा कि मंत्री और सचिव पहले से तय अपने आधे घंटे के समय में अपनी-अपनी प्रस्तुति देकर चले जा रहे हैं। यह एक प्रकार

के घूमनेवाले दरवाजे के समान था। मोदी ने तब कहा था कि काम-काज का तरीका ऐसा नहीं होना चाहिए।

सन् 2002 में अपना पहला चुनाव जीतने के बाद मोदी ने अपने मंत्रियों और सचिवों से विस्तृत प्रस्तुति तैयार करने को कहा। दिसंबर से फरवरी के बीच हर हफ्ते एक या दो बार उनका आयोजन हुआ करता था। प्रत्येक प्रस्तुति लगभग चार से पाँच घंटे तक चलती थी और रात के नौ बजे के बाद भी जारी रहती थी। इससे पहले अलग-अलग विभाग अपनी प्रस्तुति मुख्य सचिव को बजट से पहले की कवायद के रूप में दिया करते थे। उनमें बस आँकड़ों का खेल हुआ करता था। किंतु अब विभागों से कहा गया कि वे गतिविधियों, लक्ष्यों, बजट प्रावधानों, आंतरिक और बाह्य तौर पर आनेवाली मुश्किलों का भी जिक्र करें। यह एक नट और बोल्ट के जैसा अभियान था। एक सचिव का कहना था—"इससे उन्हें और मंत्रियों को तो फायदा होता ही था, यह हमारे मन से द्वंद्व हटाने और तसवीर साफ करनेवाला अभियान भी था।" यहीं से चिंतन शिविर की अवधारणा का जन्म हुआ।

आढ़िया, जो प्रशासनिक सुधारों के प्रभारी थे, उन्हें इन विचारों को कार्य रूप में लागू करना पड़ा। पहला चिंतन शिविर 2003 में नर्मदा बाँध के मनोरम स्थल के पास केवाड़िया कॉलोनी में हुआ। यह ढाई दिन तक चला। इसमें मंत्रियों, सारे आई.ए.एस. अधिकारियों, जिनमें सचिव से लेकर कलक्टर और जिला विकास पदाधिकारी तक शामिल थे, इसमें आला पुलिस अधिकारियों और प्रमुख वन संरक्षक समेत लगभग 250 लोगों ने हिस्सा लिया। इसका उद्देश्य शासन को कम औपचारिक बनाने, आला अफसरों और निम्न स्तर के कर्मचारियों के बीच की दूरी कम करने एवं अनौपचारिक नेटवर्क बनाने का था, ताकि अधिकारी अपना काम आसानी से करा सकें। कोई भी कहीं भी भोजन के लिए बैठ सकता है, यहाँ तक कि मुख्यमंत्री के साथ भी। हाँ, एक नियम जरूर था कि पंक्ति तोड़ी नहीं जा सकती है।

चिंतन शिविर में दिन लंबे हुआ करते थे। उनकी शुरुआत प्रातः योग से हुआ करती थी और समापन रात 8 बजे होनेवाले रात के भोजन से होता था। सांस्कृतिक कार्यक्रम भी हुआ करते थे, जिनका उद्देश्य हुनर का प्रदर्शन करना

था। इसकी रूपरेखा बीते वर्षों में और निखर गई है। मुख्य सचिव अब शिविर से पहले की बैठकें लेते हैं, जिनमें शिविर के दौरान होनेवाली चर्चा के लिए छह विषयों को छाँटा जाता है। चर्चा में हिस्सा लेनेवालों का चयन किसी नियम से नहीं किया जाता और न ही उनके वर्तमान विभाग का खयाल रखा जाता है, जिससे कि किसी विषय पर एक नया दृष्टिकोण सामने रखा जा सके। इसी प्रकार के कई उपायों को राज्य भर में जिला स्तर पर लागू किया गया है। उनमें से ही एक है, भाग्येश झा का एक दिन का शासन या नागरिक सेवा का प्रावधान।

एक दिन के लिए सरकार चलाने का अवसर दिए जाने की प्रेरणा सन् 2004 में पाकिस्तान के विरुद्ध इरफान पठान के मैच जिताऊ गेंदबाजी प्रदर्शन से मिली थी। 'पूरे देश को आज उस पर गर्व है,' मोदी ने यह बात उनके बड़ौदा में बसे पिता से फोन पर कही थी, जब भारत ने अपने प्रतिद्वंद्वी को सीरीज में हराया था। भाग्येश झा, जो उस जिले के कलक्टर थे, उन्हें याद है कि कैसे वह पठान के घर गए थे। लौटते समय उन्होंने अपने साथ बैठे पुलिस कमिश्नर से पूछा था, "हम एक दिन के लिए क्रिकेट को अपने शासन में कैसे शामिल कर सकते हैं?" यह महज भाषण देने के उद्देश्य से नहीं कहा गया था। उन्होंने अपने सहयोगियों से इस पर गंभीरता से विचार करने को कहा। उन्होंने एक दिन के शासन की योजना बनाई, जिसमें एक तरफ थे बड़ौदा के लोग, जिन्होंने अपने आवेदनों की बॉलिंग की और दूसरी तरफ बल्ला सँभालते अधिकारी थे, जिन्हें आवेदन पर मैच समाप्त होने तक कारखाई करनी थी। झा ने बताया कि इस प्रक्रिया के दौरान सरकार के सामने जिला स्तर के बहत्तर मामले आए, जिनमें जन्म, जाति, आय और स्थानीय निवास के प्रमाण-पत्र जैसे मामले थे। इनमें से छह को इलेक्ट्रॉनिक रूप से एक ही दिन में जारी किया जा सकता था, बशर्ते आवेदक माँगी गई जानकारी उपलब्ध करा दे। इस प्रकार पहले नागरिक सेवा केंद्र की स्थापना बड़ौदा में हुई। एक चिंतन शिविर में चर्चा के बाद इसे राज्य भर में 'जन सेवा केंद्रों' के नाम से लागू कर दिया गया।

जन-सेवा केंद्रों में अब इस प्रकार की 156 सार्वजनिक सेवाएँ उपलब्ध हैं। इनमें से पाँचवाँ हिस्सा जमीन के कागजात, राशन कार्ड में संशोधन और

भू-राजस्व चुकाने जैसी सेवाएँ हैं, जिनका निपटारा दो घंटे में ही हो जाता है। बाकी सेवाओं में से आधे का निपटारा भी उसी दिन हो जाता है, और बाकी के आधे मामले तीस से नब्बे दिन के भीतर निपटा दिए जाते हैं। जिन प्रमाण-पत्रों को हासिल करने में पहले कई दिन लग जाते थे और काम को तेज करने के लिए घूस देनी पड़ती थी, जैसे जमीन के कागजातों के लिए, उन्हें अब एक मामूली फीस चुकाकर प्राप्त किया जा सकता है। यह सुविधा इ-धारा या 15 लाख भू-अभिलेखों के कंप्यूटरीकृत कर दिए जाने से मिली है। यह उपाय भी पहले चिंतन शिविर के दौरान हुई चर्चा से ही निकलकर आया था।

मोदी और उनके समर्थक ऐसा मानते हैं कि शासन में जो कोई भी अच्छा कदम है, उसका विचार उनके नेता ने ही दिया है। मोदी स्वयं भी मानते हैं कि उनके अंदर अनोखे विचार पैदा करने की एक जन्मजात क्षमता है। यह दोनों के बीच परस्पर सामंजस्य के कारण है। कुछ भी हो, मोदी में सीखने की क्षमता जरूर अच्छी है।

"वह अज्ञानता को वरदान में, संकट को अवसर में बदल देने की क्षमता रखते हैं," ऐसा एक आई.आई.टी. में शिक्षा प्राप्त शिक्षा सचिव का कहना है। "तुम तो एक भाव-विभोर छात्र जैसी बात कर रहे हो।" मैंने उन्हें छेड़ा। उन्होंने पलटकर कहा, "उसकी उम्र अब नहीं रही।"

ऐसी मान्यता के विपरीत कि वे अपने ही विचारों को प्रमुखता देते हैं और एक अहंकारी तानाशाह हैं, जिन्हें केवल अपनी बातों से प्रेम है, मोदी सदैव सभी के विचारों का स्वागत करते हैं, ऐसा हाल ही में रिटायर हुए एक नौकरशाह का कहना है, जिनके मुताबिक उन्हें कभी अपने विचारों को मोदी के सामने रखने में संकोच नहीं हुआ, किंतु ऐसा करते समय लक्ष्मण रेखा का ध्यान भी रखना पड़ता था। "वह मोदी जो मंच पर होता है और जो प्रशासन में होता है, उसमें काफी अंतर है।" ऐसा अहमदाबाद शहरी विकास प्राधिकरण के एक अधिकारी का कहना है।

रुकावटों को सूझ-बूझ से पार किया जा सकता है, इस बात को साबित करने के लिए मोदी एस.आर. राव का उदाहरण देते हैं, जो उस समय सूरत म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन के कमिश्नर थे। सन् 1994 में जब वहाँ ब्यूबोनिक

प्लेग फैला था, उस महामारी ने बावन लोगों की जान ले ली थी और हीरा चमकाने तथा कपड़ा कारखानों में दूसरे राज्यों से काम करने आए 3,00,000 मजदूरों को भागने पर मजबूर कर दिया था। पूरे देश में एक दहशत फैल गई थी, जो लोगों के चेहरों पर लगे मास्क के रूप में दिख रही थी। दवा की दुकानों से एंटीबायोटिक टेट्रासाइक्लीन गायब हो गई, विदेशी पर्यटक भारत आने से कतराने लगे और समुद्र के रास्ते होनेवाले निर्यात में रुकावट से अंतरराष्ट्रीय व्यापार पर बुरा असर पड़ा। विश्व स्वास्थ्य संगठन के आकलन के अनुसार भारत को $1.7 बिलियन का नुकसान हुआ।

राव ने इस विपरीत परिस्थिति का बेहतर इस्तेमाल किया और पूरे सूरत को साफ-सुथरा बना दिया। उन्होंने ताप्ती नदी से कचरा निकालने, नालों की सफाई करने, कचरा निष्पादन की परियोजनाओं को तेजी से लागू करने और स्वच्छता विभाग के अधिकारियों को पर्याप्त अधिकार देने जैसे उपायों को लागू किया। मोदी ने कहा, ''यदि सूरत ऐसा कर सकता है तो अन्य म्यूनिसिपल कॉरपोरेशनों को किसने रोका है?''

अन्य राज्यों में प्रशासन के क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित करनेवालों को प्रोत्साहित किया जाता है और शिविरों में भाषण देने का न्योता भेजा जाता है। सन् 2008 में नागालैंड के मुख्य सचिव आर.एस. पांडे को आमंत्रित किया गया था। उन्होंने स्कूलों, स्वास्थ्य केंद्रों, जलापूर्ति और ग्रामीण सड़क निर्माण के प्रबंधन में नागा ग्रामीण समुदायों की भागीदारी सुनिश्चित कर राज्य में उपलब्ध सामाजिक संसाधन का सराहनीय तौर पर इस्तेमाल किया था। 'सामुदायिकीकरण' के इस प्रयोग की सराहना संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी की थी और श्री पांडे को प्रधानमंत्री की ओर से प्रशासनिक उत्कृष्टता के सम्मान से भी नवाजा गया। पांडे, जो पेट्रोलियम सचिव और नागाओं के साथ केंद्र की बातचीत में मध्यस्थ की भूमिका निभा चुके हैं, वे अब मोदी के भक्त हैं। सन् 2014 के लोकसभा चुनावों से कुछ महीने पहले बीजेपी में शामिल होने के अवसर पर उन्होंने मोदी पर यह बयान दिया था—''मुझे उनके साथ हुई पहली मुलाकात अच्छी तरह याद है। पाँच साल पहले उन्होंने मुझे चिंतन शिविर में आने का न्योता दिया था···वे इकलौते मुख्यमंत्री थे, जो नए वितरण

मॉडल को समझने में दिलचस्पी रखते थे। केंद्र के अनेक विभागों के विपरीत, जो निष्क्रियता और पॉलिसी पैरालिसिस से ग्रस्त हैं, मोदी का अभियान लगातार नए प्रयोग और सुधार करने का है।''[14]

शुरुआत में निर्जन स्थानों पर शिविर लगाने का विरोध हुआ। अधिकारियों को लगा कि इनका कोई फायदा नहीं होगा। लेकिन यह विरोध धीरे-धीरे खत्म होता गया। गांधीनगर से दूर जाकर सहभागियों को अपना ध्यान केंद्रित करने का अवसर मिलता है। प्रेरित करने में महारत रखनेवालों को बुलाया जाता है और प्रबंधन से जुड़े खेल खेले जाते हैं। आमंत्रित लोगों में से एक दिल्ली के अक्षरधाम मंदिर के एक साधु थे। उन्होंने 200 करोड़ रुपए की लागत से तैयार उस मंदिर में, जिसकी बराबरी मुगल काल की इमारतों से की जा सकती है, किस प्रकार कार्य होता है, इस पर अपने विचार रखे।

शिविरों के लिए समस्याएँ सुलझाने की मनोवृत्ति बनाना अपेक्षित होता है। ''हम इस पर चर्चा नहीं करते कि क्या बुरा है, क्या पिछड़ रहा है। जब हम अच्छे की बात करेंगे तो स्वाभाविक रूप से बुरी चीजें समाप्त हो जाएँगी। हमारे काम करने का तरीका यही है।'' ऐसा मोदी ने एक साक्षात्कार में कहा था। परेशानी खड़ी करनेवाले मुद्दे, जिनका संबंध एक से अधिक विभागों से होता है, जैसे जनजातीय कल्याण या सार्वभौमिक शिक्षा तो उनके सुलझने की संभावना तब और बढ़ जाती है, जब उन्हें उसके दायरे से बाहर ले जाया जाता है। मोदी ने आदेश दे रखा है कि शिविरों में लिये गए फैसले अधिकारियों के गांधीनगर लौटने के तुरंत बाद सरकारी आदेश का रूप ले लेंगे और उनके अनुमोदन की काररवाई नहीं होनी चाहिए। किंतु कई बार अनुवाद में वास्तविक मंशा ही कहीं लुप्त हो जाती है। इसी का एक उदाहरण है कि फरवरी 2011 में मेहसाना के शंकू वाटर पार्क में हुए शिविर के कार्य विवरण में यह सुझाव दिया गया कि पिछले आयोजन में की गई काररवाई की समीक्षा की जानी चाहिए, और काररवाई न होने के कारणों की चर्चा भी होनी चाहिए। कार्य विवरण में कहा गया कि समस्याओं का जहाँ सर्वश्रेष्ठ विश्लेषण हो, वहीं समाधान ढूँढ़ने पर भी बल दिया जाए, हालाँकि इस बात की अपेक्षा की गई थी कि एक के होने से दूसरा अपने आप ही हो जाएगा।

विकास पर ध्यान केंद्रित करने से प्रशासनिक बाधाएँ दूर होती गईं, जिसकी शिकायत अकसर की जाती थी। चिंतन शिविरों में कानून व्यवस्था, कर व्यवस्था, बुनियादी ढाँचा और परियोजनाओं की समीक्षा नहीं होती, लेकिन ऐसा होना चाहिए, क्योंकि अकसर जिला स्तर के अधिकारी इन बातों को लेकर उलझन में रहते हैं। कार्य विवरण में यह भी कहा गया कि सात शिविर हो जाने के बाद भी विभागों के बीच आपसी बातचीत अपेक्षा के अनुरूप नहीं हो सकी। शंकू पार्क में जिन अठारह सबसे अच्छी आदतों पर प्रस्तुति को तैयार किया गया था, उनमें कुछ परिचित विषय शामिल थे—अपशिष्ट प्रबंधन, भरती में तकनीक का इस्तेमाल, प्रमाण-पत्रों और अनुमोदनों को ऑन लाइन जारी करने के प्रावधान, शिकायतों का निपटारा, वर्षा जल का संरक्षण, आदिम जनजातियों और उनके जैसे अन्य लोगों के लिए आवास का प्रावधान इत्यादि, जिनसे यह संकेत मिलता है कि सबसे अच्छे शासनवाले राज्यों में भी जो प्रशासनिक प्रणाली लोगों से जुड़ती है, वह अब भी मूल मुद्दों से वाकिफ नहीं हो सकी है। यह शिकायत थी कि तीन दिनों का शिविर अत्यंत व्यस्त था। शाम को अनौपचारिक चर्चा के लिए समय नहीं था और प्रस्तुतियों को और संक्षिप्त तथा रोचक बनाया जा सकता था। किंतु शिविर की अवधारणा को पूरे नंबर दिए गए और एक सुझाव भी आया कि इस प्रारूप का पेटेंट करा लिया जाए।

एक अधिकारी ने बताया कि सन् 2004 में एकांत स्थल पर हुई बैठक में मोदी ने कुछ इस प्रकार अपनी बात रखी थी—"आप लोग सरकार के लिए ढेर सारे काम करते हैं। आप ऐसा करते हैं, क्योंकि आपको इसके लिए कहा जाता है। यह आपकी ड्यूटी है। आप कुछ ऐसा क्यों नहीं करते, जो आपके नियंत्रण से बाहर है, जिससे कि आपको संतुष्टि मिले और लोगों का भी भला हो, और जहाँ आपके पास फंड के प्रयोग में कुछ सहूलियत हो? कुछ ऐसा करो, जो दिल से आपको अच्छा लगता हो। उन्होंने इस प्रयास को 'स्वांतः सुखाय' नाम दिया। (इसका भी कोई स्पष्ट रूप से फायदा नहीं हुआ। किसी अधिकारी के स्वांतः सुखाय की परियोजना से मुख्यमंत्री को उसकी उत्प्रेरणा के स्तर का अनुमान अवश्य मिल जाता था।)

संगठन उतना ही अच्छा होता है, जितने अच्छे उसमें शामिल लोग होते

हैं। लेकिन वे असहाय या अपने काम को मजेदार नहीं मानते तो उनकी क्षमता और हुनर पूरी तरह निरर्थक हो जाएगा। हर किसी को अपने काम से एक संतुष्टि की उम्मीद होती है, लेकिन अधिकांश लोगों को वह मिल नहीं पाती। अधिकांश काम ऐसे होते हैं, जिसमें संतुष्टि मिलने की संभावना नहीं होती; लेकिन उन्हें करनेवाले को संतुष्ट होना पड़ता है। इससे बचना संभव नहीं होता। लेकिन उनकी आंतरिक खुशी की एक चिनगारी पैदा हो जाए तो उनका नीरस अस्तित्व समाप्त हो सकता है। स्वांत: सुखाय ने कुछ अच्छा करने की दबी हुई इच्छा को किस हद तक व्यक्त किया, वह उसकी लोकप्रियता से स्पष्ट हो गया। पहले दो वर्षों में 256 परियोजनाएँ आरंभ हुईं, जिनमें से पैंतालीस का चयन सराहना के लिए किया गया। उनमें से एक था बड़ौदा में 'आँगनवाड़ियों' के साथ सब्जी उगाने का बगीचा।

जब इस परियोजना की शुरुआत हुई, तब बड़ौदा की एक-चौथाई आबादी जनजातियों की थी। गुजराती मुख्य रूप से शाकाहारी होते हैं, लेकिन जनजातियों को हरी शाक-सब्जियाँ खाने की आदत नहीं थी। आयरन की कमी के कारण गर्भवती माताओं और बच्चों में खून की कमी रहती थी। मेरे द्वारा सी.एन.बी.सी. टी.वी. 18 के लिए शासन पर टेलीविजन सीरीज के लिए किए गए सर्वेक्षण के बाद बड़ौदा के चीफ मेडिकल ऑफिसर ने पाया कि 94 फीसदी माताएँ काफी हद तक या कुछ हद तक खून की कमी से पीड़ित थीं। यदि ऐसा है तो क्यों न आँगनवाड़ी की जमीन पर सब्जियाँ उगाकर उनके आहार को पोषक बनाया जाए। यह बात तमिलनाडु के तंजावुर के रहनेवाले 2000 बैच के आई.ए.एस. अधिकारी एम. थानेसरन के दिमाग में आई। इस उपाय पर सबको सहमत करने में कुछ समय लगा, लेकिन थोड़ा-बहुत समझाने के बाद तीनों एजेंसियाँ इसके लिए तैयार हो गईं। सरदार पटेल लोक प्रशासन संस्थान द्वारा कराए गए एक ऑडिट से यह बात सामने आई कि इस अभियान से 20,000 बच्चों को लाभ पहुँचा। उनके हीमोग्लोबिन का स्तर बढ़कर 0.6 ग्राम/डिएल हो चुका था। इस कार्यक्रम के अंतर्गत आनेवालों का विटामिन ए की कमी के लिए भी इलाज किया गया।

थानेसरन के उत्तराधिकारी आर.जे. पटेल ने इन बगीचों को 'ग्रीन ब्लड

बैंक' नाम दिया और सरकार को इस बात के लिए राजी कर लिया कि सरकारी डॉक्टर दवाओं के साथ-साथ बीज भी बाँटें, जिससे कि लोग उनके स्वास्थ्य संबंधी फायदों की बात मान लें। मेरी जब उनसे मुलाकात हुई, तब वे बनासकाँठा के कलक्टर थे। उस दिन रामनवमी थी और उसके साथ-साथ अंबेडकर जयंती भी थी। हालाँकि वह छुट्टी का दिन था, फिर भी पटेल ने अधिकारियों को दलितों, आदिवासियों, गरीबों और विकलांगों की सेवा के लिए आठ सूत्री शपथ दिलाने के लिए बुलाया था। वे कुछ हद तक सनकी थे, इस कारण मैंने उनसे कहा कि सार्वजनिक कार्यों के प्रति उनकी सनक ने उन्हें उनके परिवार से दूर कर दिया है। उस समय एक कैसेट से सब्जी खाने के फायदों पर उनके द्वारा पिछली पोस्टिंग के दौरान लिखे गए गीत बज रहे थे। उन्होंने अपनी बात रखने के लिए भगवान् कृष्ण का स्तुति-गान भी किया था।

अहमदाबाद में एक स्वांत: सुखाय प्रयोग मुख्यमंत्री का अपने अधिकारियों के विश्वास की परीक्षा साबित हुआ। सड़क परिवहन अधिकारी की इच्छा थी कि शहर के धुआँ छोड़नेवाले ऑटोरिक्शा को कंप्रेस्ड गैस से चलाया जाए। ट्रैफिक पुलिस चीफ और कलक्टर उनकी बात से सहमत थे, क्योंकि अहमदाबाद में प्रदूषण के कारण आँखों से आँसू निकल आते थे। इस प्रकार के 35,000 वाहन थे, जो कानून तोड़ रहे थे, लेकिन म्यूनिसिपल के चुनाव सिर पर थे और वोटों का डर सता रहा था। अधिकारियों के द्वारा जब यह भरोसा दिया गया कि गाड़ियों में ईंधन का परिवर्तन चुनावों से पहले हो जाएगा और बिना दिक्कत के हो जाएगा तो मुख्यमंत्री ने हरी झंडी दिखा दी।

वाहन मालिकों का विरोध तब पूरी तरह समाप्त हो गया, जब ऋण की व्यवस्था भी कर दी गई। मोटर निर्माता बजाज ऑटो ने कुछ रियायत भी दे दी। गैस वितरकों को मुफ्त गैस के वाउचर भी दे दिए। इन सहूलियतों के चलते ही 22,200 ऑटो को कंप्रेस्ड गैस से चलनेवाले ऑटो में बदल दिया गया और 12,000 नए ऑटो भी सड़कों पर उतर गए। अब अहमदाबाद की पचास लाख से भी अधिक आबादी राहत की साँस ले सकती थी।

दाहोद के जनजातीय जिले में, जहाँ की जमीन निर्जल है, वहाँ वर्षा के जल के संरक्षण के लिए किए गए उपाय छोटे कदम से पड़नेवाले विशाल

प्रभाव के समान हैं। इस जिले में न केवल बहुत कम वर्षा होती है, बल्कि जितनी वर्षा होती भी है, वह संरक्षित नहीं हो पाती है। दरअसल, यहाँ की मिट्‌टी ही कुछ ऐसी है। उस परियोजना पर लगभग 4 करोड़ रुपए का खर्च आया। इसकी शुरुआत जिला ग्रामीण विकास एजेंसी के द्वारा की गई। अट्‌ठाईस चेक डैम, 3,700 बोरीवाले बाँध, 4,500 खेतों में बने तालाबों और पाँच लिफ्ट सिंचाई योजनाओं ने जिले को नखलिस्तान में तो नहीं बदला, लेकिन गरमियाँ अब उतनी कष्टदायी नहीं रहीं।

राजनेताओं को हर पाँच साल बाद वोटरों का सामना करना पड़ता है, बशर्ते उससे पहले चुनाव न हो जाएँ। राजनीति में जो लोग लंबे समय से हैं और जो इसे केवल तुरंत कमाई करानेवाला निवेश नहीं मानते, उन्हें प्रशासनिक असहयोग का डर सताता रहता है। प्रवीण के. लाहिड़ी, जो 2005 में मुख्य सचिव पद से रिटायर हुए, वे बताते हैं कि कैसे मुख्यमंत्री माधवसिंह सोलंकी मजाक उड़ाते हुए इसे एक ऐसा डाइनोसोर बताते थे, जो काटे जाने के दो महीने बाद प्रतिक्रिया करता है।

"मोदी अभियानों में विश्वास करते हैं।" ऐसा लाहिड़ी का कहना है, "वे प्रशासन पर ध्यान देते हैं, अन्यथा निष्क्रियता आ जाती है।"

चीन में कम्युनिस्ट पार्टी के शासन के पहले दशकों में अभियान दैनिक जीवन की विशेषता बन गए थे। इन अभियानों से नई नीतियों का प्रचार होता था और उन्हें लागू करने का प्रयास होता था। इनका उद्‌देश्य था कि पार्टी उन लक्ष्यों को आत्मसात् कर ले और लोगों की उनमें कदम-दर-कदम सहभागिता सुनिश्चित करे।[15]

क्रांतिकारी जोश में उबाल और अपनी शक्ति को क्षीण करते विरोधियों के डर ने माओ तथा उनकी पार्टी को हमेशा सतर्क रखा। हंड्रेड फ्लावर कैंपेन ने असंतोष को बढ़ावा दिया, लेकिन उसका मकसद उन विरोधियों को ढूँढ़ निकालना था, जो आगे चलकर दक्षिणपंथ-विरोधी अभियानों में खुलकर हिस्सा लेने के लिए बाहर निकले। ग्रेट लीप फॉरवर्ड के दौरान तीन से चार करोड़ लोगों की भुखमरी से होनेवाली मौत के कारण माओ की सत्ता को बहुत बड़ी चुनौती मिली और उसने अगले दशक में लंबी सांस्कृतिक क्रांति का रूप ले

लिया, जिसमें कॉलेजों को बंद कर दिया गया और कुलीन वर्ग को गाँवों में भेजा गया, जिससे कि वे जनता से सीख सकें।

चूँकि भारतीय परिदृश्य अलग है, इस कारण इसकी सटीक तुलना नहीं की जा सकती है, लेकिन कृषिक्षेत्र के विस्तार, कन्याओं की रक्षा, सार्वभौमिक नामांकन सुनिश्चित करना, स्कूली शिक्षा के स्तर में सुधार, शिशु स्वास्थ्य में निवेश, राज्य को कचरा-मुक्त बनाना, वर्षाजल का संरक्षण से जुड़े प्रशासनिक कार्य तथा स्वयं मुख्यमंत्री द्वारा प्रत्येक महीने के अंतिम गुरुवार को वीडियो कॉन्फ्रेंस के जरिए समस्याओं का निपटारा—ऐसे उपाय हैं, जिनसे अधिकारियों को लोगों के संपर्क में लाया जाता है, ताकि नीतियों का वास्तविकता से सामंजस्य हो और मोदी की लोकप्रियता के साथ-साथ पार्टी पर उनकी पकड़ भी बनी रहे।

गुजरात के विकास में कृषि की चौंकानेवाली तरक्की का बड़ा योगदान है। पिछले दशक में इस अर्ध शुष्क प्रदेश में कृषि के विकास की औसत दर 8 प्रतिशत रही, जबकि पूरे देश में इस क्षेत्र का विकास मंथर गति से (3.1 प्रतिशत) हुआ है। भारतीय प्रबंधन संस्थान, अहमदाबाद के प्राध्यापकों रविंद्र ढोलकिया और समर दत्ता ने इसके जो विभिन्न कारण गिनाए हैं, उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण है—कृषि क्षेत्र के विस्तार में जुटा तंत्र।

भारत के पूर्व आर्थिक-राजनीतिक सलाहकार शंकर आचार्य[16] कहते हैं कि स्वतंत्रता के दो दशक बाद तक कृषि के विस्तार के लिए जिस प्रणाली की स्थापना की गई, उसमें देश भर में गंभीर एंट्रॉपी और ह्रास दर्ज किया गया। उनका कहना है कि गुजरात में कृषि महोत्सव कार्यक्रम के अंतर्गत कृषिक्षेत्र के विस्तार के लिए एक योजनाबद्ध तरीके से बड़े पैमाने पर पुनर्जीवन अभियान चलाया गया, जिसकी शुरुआत सन् 2005 में हुई। मानसून से पहले अठारह विभागों के करीब एक लाख अधिकारी किसानों के पास उनके गाँवों में जाते हैं। वे मिट्टी की जाँच करते हैं, ऐसे पोषक तत्त्व सुझाते हैं, जिनका प्रयोग करना आवश्यक होता है, साथ ही जिन फसलों को उपजाया जाना चाहिए, उनका सुझाव देते हैं, संकर प्रजाति के बीजों की सलाह देते हैं और इस बारे में सुझाव देते हैं कि खेती से मुनाफा कैसे कमाया जाए। योजना को उन कार्यालयों

और प्रयोगशालाओं से ब्लॉक व गाँवों तक लाया गया है, जहाँ उनकी वास्तव में आवश्यकता है। कृषिक्षेत्र तक पहुँच बनाने के लिए ही कृषि महोत्सवों का आयोजन किया जाता है।

गुजरात ने यह समझ लिया है कि कृषि अब गुजारे का जरिया नहीं रह गई है, उसे एक व्यवसाय के रूप में चलाया जाना चाहिए। खेती औद्योगिक प्रक्रिया के समान है, जहाँ पौधे ऐसे कारखाने हैं, जिनका प्रबंधन वैज्ञानिक दृष्टि से किया जाता है। सालाना कृषि महोत्सव सोच में बदलाव लाने और प्रशासन के लोगों की एक कवायद है। यही बात लड़कियों के स्कूलों में नामांकन के लिए चलाए जानेवाले अभियान पर लागू होती है, जिन्हें 'कन्या केलवानी' और 'शाला प्रवेशोत्सव' नाम दिया गया है। प्रति वर्ष अधिकारियों को तीन दिनों के लिए पाँच गाँवों में जाना पड़ता है। इस प्रकार पंद्रह गाँव हुए और प्रति अधिकारी पंद्रह भाषण हुए, जिनके माध्यम से लोगों को यह समझाया जाता है कि यदि एक लड़की शिक्षित होती है तो एक परिवार शिक्षित हो जाता है। उन्हें उन बच्चों के घर जाना होता है, जिन्होंने स्कूल छोड़ दिया है और उनके माता-पिता को यह समझाना होता है कि उनके स्कूल छोड़ने से कितना नुकसान होगा और उन्हें अपने साथ लेकर स्कूल में फिर से नामांकन के लिए लाना होता है। यह पिछले सात वर्षों से किया जा रहा है। इस प्रक्रिया में अधिकारियों को यह अहसास होता है कि राज्य के लिए शिक्षा एक प्राथमिकता है और इसमें सारे विभागों को आपस में एक-दूसरे का सहयोग करना है।

अब लगभग सौ प्रतिशत तक नामांकन हो गया है, इस कारण शिक्षा के स्तर पर जोर दिया जा रहा है। गुणोत्सव (गुणवत्ता बढ़ाने का त्योहार) अभियान के अंतर्गत प्रत्येक अधिकारी को (और केवल शिक्षा विभाग से ही नहीं) तीन दिनों के लिए तीन गाँवों में भेजा जाता है। इस प्रकार लगभग 3,000 अधिकारियों के जिम्मे 9,000 स्कूल आते हैं। वे दिन की शुरुआत सुबह में होनेवाली प्रार्थना में शामिल होने, योगाभ्यास को देखने और शिक्षक-विद्यार्थी के बीच की बातचीत पर नजर रखने से करते हैं। इसके बाद वे कक्षाओं में जाते हैं और छात्रों के अंग्रेजी, गुजराती और गणित के ज्ञान की परीक्षा लेते हैं।

कागजों पर यह सब पढ़ने में बहुत अच्छा लग सकता है, लेकिन वास्तव

में अधिकारियों के अंदर इतना जोश नहीं होता। फिर भी उन्हें इस प्रक्रिया में तो शामिल होना पड़ता है और वे इस अभियान की मंशा को लेकर टाल-मटोल नहीं कर सकते हैं। निस्संदेह, इसमें एक जोखिम यह है कि स्कूलों को उनकी गलती के बिना नुकसान उठाना पड़ सकता है। निरीक्षक सनकी, अजीब या उदासीन हो सकते हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए ही आकलन की प्रणाली को दुरुस्त किया जा रहा है, जिससे कि आत्मवाद को कम-से-कम या पूरी तरह समाप्त किया जा सके।

'निर्मल गुजरात' एक ऐसा उदाहरण है, जो जोर-शोर से किए गए प्रचार के बावजूद वास्तविकता से सामंजस्य नहीं बिठा सका। इस अभियान की शुरुआत सन् 2007 में गुजरात को साफ और स्वच्छ बनाने के लिए हुई, जिसमें कचरा प्रबंधन, अपशिष्टों का उपचार, वायु प्रदूषण पर नियंत्रण और बड़े पैमाने पर शौचालयों की स्थापना के प्रावधान थे। लेकिन सन् 2012 में राज्य परिवहन की बसों से एक हफ्ते के गुजरात दौरे में मैंने पाया कि कहीं-कहीं गंदगी और कचरा था। द्वारका की तसवीर तो अलग थी, यहाँ विकास कार्य चल रहे थे। (जबकि सोमनाथ को बिल्कुल साफ-सुथरा रखा गया था)। सुधीर मांकड़, जो एक पूर्व मुख्य सचिव हैं, उनका कहना है कि निर्मल गुजरात को पाँच वर्षों का कार्यक्रम होना चाहिए था, तब वह अपने उद्देश्यों को पूरा कर सकता था।

आढ़िया कहते हैं, ''मोदी का मानना है कि अधिकारी अच्छा काम करना चाहते हैं।'' गुजरात के अधिकारियों को एक स्थान पर लंबा समय मिलता है, कभी-कभी तो इतना कि वे ऊब जाते हैं। आढ़िया सन् 2001 से 2013 तक शिक्षा सचिव थे। उनसे पहले के सचिवों का कार्यकाल चार-चार साल का था। आनंद मोहन तिवारी साढ़े पाँच वर्षों तक जनजातीय मामलों के सचिव थे, जबकि उनके खिलाफ विभिन्न प्रकार के हित साधनेवालों ने अभियान चला रखा था। मोदी का मानना है कि एक निकम्मे अफसर को एक जगह से दूसरी जगह भेजकर केवल उनके निकम्मेपन का ट्रांसफर किया जा सकता है। इससे उनकी क्षमता का विकास नहीं होता। मोदी ट्रांसफर और पोस्टिंग में किसी की भी नहीं सुनते।

उनके लिए ऐसा करना इस कारण संभव है, क्योंकि विधायक और सांसद उनके प्रति आभारी हैं। उन्हें चुनाव मोदी ही जिताते हैं। एलेक्जेंडर के. ल्यूक, जो आई.आई.टी. में शिक्षा प्राप्त अधिकारी हैं और जिन्हें प्रबंधन कौशल के लिए जाना जाता है, उनका कहना है कि गुजरात खनिज विकास निगम जैसे मुनाफा कमानेवाले विभाग से उनका ट्रांसफर गुजरात स्टेट फर्टिलाइजर कॉरपोरेशन जैसे घाटे में चल रहे विभाग में उनके कहने पर केवल एक हफ्ते में ही हो गया। यही नहीं, भ्रष्टाचार में डूबी ड्रिप सिंचाई योजना को कृषि विभाग से अलग कर गुजरात ग्रीन रेवोल्यूशन कंपनी को सौंपा जाना, जो भरूच की गुजरात स्टेट फर्टिलाइजर कॉरपोरेशन की सहायक थी और जिसके अध्यक्ष ल्यूक थे, बिना किसी मुश्किल के हो गया था। किसी भी प्रकार कृषि मंत्री उसका विरोध नहीं कर सकता था।[17]

भले ही मोदी ने राज्य के उपक्रमों में पेशेवर मैनेजरों की नियुक्ति न की हो, लेकिन उन्होंने उनके प्रबंधन को सक्षम अधिकारियों की पोस्टिंग से पेशेवर बनाया है, जबकि दूसरे राज्यों में उन कुरसियों पर नेता खुद बैठते हैं और उन पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेते हैं।

यह तरीका कारगर सिद्ध हो रहा है। ऑडिट रिपोर्ट बताती है कि जब मोदी ने सत्ता सँभाली, तब राज्य सरकार के स्वामित्ववाली चालीस कंपनियाँ और सांविधिक निगम थे, जिनमें बिजली निगम भी शामिल था, जिसे बाद में कंपनी का रूप दे दिया गया। 15,000 करोड़ रुपए की पूँजी पर वे 3.33 प्रतिशत का मुनाफा कमाती थीं। सबसे ताजा रिपोर्ट बताती है कि इकतालीस राज्य स्वामित्ववाली कंपनियाँ लगभग 9,000 करोड़ रुपए का मुनाफा कमाती हैं और पूँजी पर लगभग 7 प्रतिशत का मुनाफा दे रही हैं। दूसरी तरफ दस कंपनियाँ ऐसी थीं, जिनका नुकसान कुल मिलाकर 400 करोड़ रुपए था।

फरवरी 2014 के अंत में दिल्ली में चार्टर्ड अकाउंटेंट्स को दिए अपने संबोधन में मोदी ने कहा कि जैसे ही सन् 2001 में उन्हें मुख्यमंत्री बनाया गया, वैसे ही प्रतिनिधिमंडलों का उनके पास आना शुरू हो गया, जबकि उन्होंने शपथ भी नहीं ली थी। उनमें से एक जी एस एफ सी मजदूरों का दल था। कंपनी घाटे में चल रही थी, कामगारों को डर था कि नौकरी चली जाएगी

और इस कारण उन्होंने अपने परिवार की सौगंध देकर उनसे सलाह माँगी। मोदी ने विचार करने के लिए कुछ समय माँगा, चूँकि प्रशासनिक मामलों के लिए वे नए-नए ही थे। उनके अधिकारियों ने बताया कि इसके दो ही रास्ते हैं—या तो घाटे में चलनेवाले राज्य के उपक्रमों को बंद कर दिया जाए या उन्हें बेच दिया जाए। पर मोदी ने तीसरा विकल्प निकाला—उन्हें पुनर्जीवित करने का। इस काम के लिए उन्होंने ल्यूक को ही चुना था। अब वे केरल में खेती करते हैं, चूँकि ट्रांसफर किए जाने पर उन्होंने आईएएस से इस्तीफा दे दिया और अब यहाँ से भी रिटायर हो चुके हैं। उस समय उन्हें पदोन्नत कर अपर मुख्य सचिव (परिवहन) बनाया गया था, लेकिन ल्यूक के लिए यह अपमानजनक था। उन्हें लगा कि उनका आदर-सत्कार होगा, मोदी उनकी सुनने को तैयार नहीं थे।

जी एस एफ सी में ल्यूक ने बहुत अच्छा काम किया था। मई 2003 में जब उन्होंने कार्यभार सँभाला था, तब कंपनी की हालत दयनीय थी। बीते वर्ष का घाटा 383 करोड़ था। बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज के अनुसार स्टॉक की कीमत 17 रुपए थी। इसने लेनदारों से कानूनी संरक्षण की माँग की थी। रिजर्व बैंक उसके कर्ज के पुनर्गठन के लिए तैयार हो गया था। ल्यूक ने इसकी किस्मत को बदल दिया और इसके लिए उन्होंने अपने नैतिक प्रबंधन के सिद्धांत को अपनाया। उनकी वेबसाइट, www.ethicalmanagementluke.com में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है कि संगठन के लिए जो कुछ भी अच्छा हो, उसे किया जाना चाहिए। ल्यूक का कहना है, ''मैं एक औसत क्षमता का व्यक्ति था। नैतिकता की दृष्टि से लैस होकर मैंने उल्लेखनीय उपलब्धि प्राप्त की।'' ल्यूक का मानना है कि 'नैतिक व्यक्ति' उन्हें पसंद करते हैं। इसका अर्थ हुआ कि ऐसे लोग, जिनमें सामान्य क्षमता है, वे दृढ़ संकल्प के साथ पहाड़ों को भी हिला सकते हैं।

ल्यूक ने इससे पहले गुजरात अल्कलीज को भी मुनाफे में ला दिया था और उसका फायदा गुजरात सरोवर निगम को भी मिला था। जी एस एफ सी में उन्होंने सारे संयंत्रों को उनकी पूरी क्षमता के अनुसार चलाया। उन्होंने फॉस्फोरिक एसिड के उत्पादन के लिए ट्यूनीशिया में संयुक्त उद्यम शुरू किया।

न मजदूरों की छँटनी की गई और न ही सरकार से आर्थिक सहायता ली। नवंबर 2006 में जब उन्होंने इस्तीफा दिया, तब स्टॉक की कीमत 185 रुपए थी। बीच में उसने 243 रुपए की ऊँचाई को भी छुआ था। कंपनी अब मुनाफा कमाने लगी थी। उसने दस वर्ष के लिए लिये गए कर्ज को समय से पहले ही चुका दिया। मोदी ने इस कार्य की प्रशंसा की, किंतु वे खुश नहीं हुए। कारण यह है—ल्यूक ने मुख्यमंत्री राहत कोष में निश्चित रकम से अधिक देने से इनकार कर दिया था और एक ऐसे कर्मचारी के ट्रांसफर का विरोध किया था, जो वित्तीय रूप से भ्रष्ट नहीं था। उन पर चुने गए प्रतिनिधियों की बेइज्जती करने का आरोप भी लगा था।

ल्यूक की सफाई यह है—'मैं यह मानता हूँ कि अपने अधीन संगठनों का पुनरुद्धार करना ही चुने गए प्रतिनिधियों के प्रति सबसे बड़ा सम्मान है।'

मनोज मित्ता की पुस्तक में कुछ प्रमाण मिलते हैं।[18] राहुल शर्मा जो सन् 2002 में भावनगर के पुलिस अधीक्षक थे, उन्होंने अपने सिपाहियों को आदेश दे रखा था कि वे दंगाइयों को देखते ही गोली मार दें, ताकि उन्हें भेदभाव करने का बहाना न मिल सके। दो बार एक भीड़ ने उस मदरसा को आग लगाने का प्रयास किया, जिसमें 400 छात्र रहते थे, लेकिन त्वरित पुलिस काररवाई ने उनकी कोशिश नाकाम कर दी। अपने पेशेवर रवैये के लिए शर्मा को चौबीस घंटे के भीतर अहमदाबाद के नियंत्रण कक्ष में डिप्टी कमिश्नर ऑफ पुलिस बनाकर भेज दिया गया। एक इंजीनियर (आई.आई.टी. कानपुर से) और एक लॉ ग्रेजुएट होने के कारण उनके दिमाग में यह बात आई कि सेल फोन के डाटा रिकॉर्ड से दंगाइयों और उनके नेताओं की गतिविधियों का पता लगाया जा सकता है। उन्होंने आँकड़े जुटाए और उसकी एक सीडी जाँच आयोग को सौंप दी। इस कारण ही मंत्री माया कोडनानी को पकड़ा गया और दंगे के दो मामलों में उन्हें फाँसी की सजा मिली।

प्रशासन पर मोदी की जबरदस्त पकड़ है। वे पुलिस और सरकारी खुफिया जानकारी जुटानेवाले तंत्र का इस्तेमाल बखूबी करते हैं। लेकिन उनके पास इसके अलावा भी प्रशासन पर नजर रखने का एक सुनिश्चित तरीका है। हर महीने के आखिरी गुरुवार को मोदी लोगों की शिकायत सुनते हैं, जो उनके

पास तीन स्तरीय छँटनी की प्रक्रिया को पार करके पहुँचती हैं। शिकायतों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है—पहली बार आनेवाली, लंबे समय से लंबित और नीतिगत। इसके अलावा जिन मामलों का निपटारा निचले स्तरों पर नहीं हुआ है, उन्हें भी मोदी के समक्ष रखा जाता है। मुख्यमंत्री, वरिष्ठ अधिकारियों और शिकायतकर्ताओं को राज्यव्यापी वीडियो कॉन्फ्रेंसिग सिस्टम से जोड़ा जाता है। इसे 'स्वागत' नाम दिया गया है, जो तकनीक की मदद से राज्य भर की समस्याओं का निपटारा करनेवाली प्रणाली का संक्षिप्त नाम है। इसकी शुरुआत सन् 2003 में की गई थी और अपनी पारदर्शिता, जवाबदेही और त्वरित प्रतिक्रिया के कारण इसे संयुक्त राष्ट्र से अवॉर्ड भी मिल चुका है। यह राज्यव्यापी कंप्यूटर नेटवर्क प्रणाली पर आधारित है, जिसके जरिए सारे मंत्रियों और विभागों, जिला मुख्यालयों और तालुका कार्यालयों को जोड़ा गया है। सन् 2011 से लेकर अब तक इसका विस्तार ग्रामीण इलाकों में गाँव-गाँव तक हो चुका है।

आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री चंद्रबाबू नायडू भी वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के जरिए जिलों में बिजली आपूर्ति की स्थिति, रीथू (किसान) बाजारों, वस्तुओं की कीमतों, सड़क निर्माण कार्य की प्रगति, सार्वजनिक स्वास्थ्य की स्थिति और कानून व्यवस्था जैसे विषयों पर जिला कलक्टरों से सीधी बात करते थे या कैबिनेट मंत्रियों से चर्चा करते थे।

इसके अतिरिक्त जिला स्तर पर चलाए जानेवाले कार्यक्रम हैं, जैसे—लोकवाणी। यह इंटरनेट आधारित शिकायत निपटारे की प्रणाली है, जिसकी शुरुआत सीतापुर के कलक्टर अमोद कुमार ने सन् 2004 में की थी। "भारत जैसे विशाल देश में इ-गवर्नेंस से सुशासन संभव नहीं है," ऐसा कुमार का कहना था, जिनसे मेरी मुलाकात कुछ वर्षों बाद एक टेलीविजन धारावाहिक के सिलसिले में हुई थी। लोकवाणी और कुमार को सामान्य प्रशासन में बेहतरीन प्रदर्शन के लिए प्रधानमंत्री की ओर से पुरस्कृत भी किया गया। उत्तर प्रदेश में सूचना प्रौद्योगिकी विभाग में विशेष सचिव, जोहरा चटर्जी ने उस गैर-मुनाफावाली संस्था से सॉफ्टवेयर खरीदा, जिसकी स्थापना कुमार ने की थी और उसे राज्य के सभी उनहत्तर (अभी के मुकाबले एक कम) जिलों को दे

दिया। सन् 2009 में मजदूर किसान शक्ति संगठन के सह-संस्थापक निखिल डे ने कलक्टर मंजू राजपाल को इस बात के लिए मना लिया कि वह राजस्थान के भीलवाड़ा जिले में लोकवाणी स्थापित करें। उत्तर प्रदेश में लोकवाणी का अब इस्तेमाल नहीं किया जा रहा है, चूँकि न तो मायावती और न ही उनके बाद सत्ता सँभालनेवालों ने उसकी तरफ ध्यान दिया। किंतु कुछ ही मुख्यमंत्री हैं, जो अपने प्रशासन को उत्तरदायी बनाने के लिए तकनीक का प्रयोग करते हैं। उनमें से कई 'जनता दरबार' या व्यापक अभियानों पर यकीन करते हैं। मोदी इसके अपवाद हैं। मोदी एक साफ-सुथरा प्रशासन चलाते हैं। वह अकेले ऐसे नेता हैं जो अपने परिवार को सत्ता से दूर रखते हैं।

लावण्येंदू मानसिंह जो ऐसे अधिकारी थे, जिन्होंने उद्योग विभाग में प्रधान सचिव का पद सँभाला था और केंद्र सरकार में उपभोक्ता मामलों के विभाग में सचिव के पद से रिटायर हुए थे, उनका कहना है कि सामान्य तौर पर जैसे ही एक निवेशक फैक्टरी लगाने के लिए स्थल का चुनाव करता है, तो राजस्व विभाग या गुजरात औद्योगिक विकास निगम भूमि अधिग्रहण कानून के तहत एक अधिसूचना जारी करता है। इसके जारी होते ही उस जमीन की किसी और कार्य के लिए बिक्री पर रोक लग जाती है। बोली लगानेवालों को दूर रखा जाता है और जमीन की कीमत निश्चित कर दी जाती है। उसके बाद वह निवेशक जमीन के मालिकों से मोल-भाव करता है। अकसर राजस्व विभाग से रिटायर हो चुके अफसर बिचौलिए की भूमिका निभाते हैं। वे सेल एग्रीमेंट करते हैं और उसके ही आधार पर सरकार सहमति का एक आदेश जारी कर देती है।

इस कारण ही गुजरात में पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र या उड़ीसा की अपेक्षा किसानों के आंदोलन नहीं के बराबर हैं। किंतु लोगों के विरोध की घटनाएँ होती हैं, जैसे भावनगर जिले में सीमेंट कारखाने की जगह को लेकर लोगों का विरोध और मेहसाना में एक विशेष निवेश क्षेत्र के लिए खेती की जमीन के अधिग्रहण पर हंगामा खड़ा हो गया था।

मोदी का ध्यान पूरी तरह ध्येय पर केंद्रित है। वे अपना अधिकांश समय काम में ही लगाते हैं। 'वे जितने घंटे काम करते हैं, उतना बहुत कम ही लोग

कर सकेंगे,' लाहिड़ी कहते हैं। मोदी कार्यक्रमों को लागू करने की अद्भुत क्षमता रखते हैं। एशिया विकास बैंक के एक सलाहकार अनिल दास का कहना है कि कच्छ में सन् 2001 में आए विनाशकारी भूकंप के बाद 'मोदी चाहते थे कि भूकंपरोधी निर्माण की बारीकियों का ज्ञान बच्चे-बच्चे को होना चाहिए।' मोदी से पहले नीतियों से जुड़े फैसले मुख्यमंत्री केशुभाई पटेल द्वारा लिये जाते थे, लेकिन पटेल के बाद कार्य भार सँभालते ही मोदी ने सुनिश्चित किया कि प्रशासन उन फैसलों को लागू करे और सुखद परिणाम दे।

एडीबी वित्तीय सहायता देनेवाली एजेंसियों में से एक थी। मोदी ने जोर दिया कि जितने भी मकान बनाए जाएँ, वे सभी भूकंपरोधी हों। जागरूकता फैलाने के लिए एक व्यापक अभियान छेड़ा गया। गाँवों में शेक टेबल टेस्ट यानी नमूने के तौर पर इमारतों को हिलाकर दिखानेवाले परीक्षण का प्रदर्शन किया जाता था और यह बताया जाता था कि भूकंपरोधी तकनीक और पारंपरिक तरीके से बनाए गए मकानों में क्या अंतर होता है। जाँच के बिना किसी भी निर्माण को मंजूरी नहीं मिलती थी। निर्माण सामग्री और मकानों का औचक निरीक्षण होता था। सक्षम अधिकारियों की तैनाती की गई। जिला मुख्यालय भुज की सीमाओं का विस्तार किया गया और शहर का निर्माण सुनियोजित तरीके से किया गया। लोगों को इस बात के लिए राजी किया गया कि वे अपनी जमीनें दें, ताकि चौड़ी सड़कों का निर्माण हो सके। अनेक लोगों को घनी बस्तियों से निकालकर खुले इलाके में बसाया गया।

कच्छ के आर्थिक पुनर्निर्माण की कहानी बेहतरीन सोच का प्रमाण है। उद्योग को आकर्षित करने के लिए राज्य सरकार ने करों में रियायत देने, आर्थिक मदद देने और बुनियादी ढाँचे का निर्माण करने का अभियान छेड़ दिया। विशाल, कम आबादी, खनिजों की खान, समुद्र से संपर्क और नर्मदा से की जानेवाली जलापूर्ति के साधनों से संपन्न इस बंजर जिले की कायापलट हो गई।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में कार्य करते हुए मोदी ने जहाँ दृढ़तापूर्ण विचार ग्रहण किए हैं, वहीं उनके अंदर लचीलापन भी है। इसका कोई प्रमाण नहीं है कि वे हिंदुत्व की मूल विचारधारा के प्रति बहुत नरम रवैया रखते हैं। मोदी ने शिक्षा के प्रति अपने रवैये में बदलाव किया। मोदी यह भले ही मानते हैं कि

व्यक्ति अपनी मातृभाषा में ही सबसे अच्छी तरह सीख सकता है, फिर भी उन्होंने अंग्रेजी के प्रसार के लिए हर संभव कदम उठाए। इसी प्रकार निजीकरण के हिमायती होने के बावजूद मोदी ने राज्य में बिजली आपूर्ति की सुविधाओं का निजीकरण इस डर से नहीं किया कि निजी कंपनियाँ कहीं गरीब उपभोक्ताओं की अनदेखी करने न लग जाएँ।

मोदी निर्णय लेने में भी देरी नहीं करते। एक छोटी किंतु सारगर्भित प्रस्तुति के बाद सत्यम कंप्यूटर के संस्थापक रामलिंग राजू की संस्था इमरजेंसी मैनेजमेंट ऐंड रिसर्च इंस्टीट्यूट (EMRI) को गुजरात में इमरजेंसी एंबुलेंस सेवा देने की अनुमति दे दी गई थी। मोदी एक असरदार प्रचारक और जनता को जुटानेवाले नेता हैं, क्योंकि वे स्वयं भी जोश से भरे रहते हैं। अत: उनका शासन असरदार है, क्योंकि उनका प्रशासन एकजुट है और वे स्वयं आगे बढ़कर उसका नेतृत्व करते हैं। इसका न केवल आर्थिक मोरचे पर बहुत बड़ा फायदा मिला है, बल्कि शिक्षा जैसे सामाजिक क्षेत्रों ने भी पर्याप्त तरक्की की है। इस विकसित राज्य की स्वास्थ्य सेवा भी कम अच्छी नहीं है, हालाँकि प्रयासों में कहीं कोई कमी नहीं रही है। उनके कई उपायों और नए प्रयोगों को राष्ट्रीय स्तर पर लागू किया जा सकता है तथा उनका फायदा भी देश को मिल सकता है।

## संदर्भ—


1. एस. प्रसन्नराजन, 'इंडिया टुडे', 6 जनवरी, 2003
2. 'नरेंद्र मोदी, द मैन, द टाइम्स', ट्रैंक्यूवर, 2013
3. इंडियन एक्सप्रेस 'आई', 19-25 जनवरी, 2014
4. भूपेंद्र चौबे, CNN-IBN के राष्ट्रीय मामलों के संपादक। साथ ही आकाश दीप अशोक द्वारा लिखित 'इज नरेंद्र मोदीज पॉपुलरिटी ऑन द वेन?', 21 नवंबर, 2013, 'इंडिया टुडे' वेबसाइट, फरवरी 2014 में की गई पड़ताल
5. http://www.narendramodi.in/navnirman-movement-1974-when-student-power-rattledthe-unhealthy-status-quo/फरवरी 2014 में की गई खोज
6. अच्युत याज्ञनिक और सुचित्रा सेठ, 'अहमदाबाद : फ्रॉम रॉयल सिटी टू मेगा सिटी', पेंग्विन बुक्स इंडिया, 2011
7. जर्नी ऑफ अवेयरनेस, स्टेट नोट्स, इंडिया टुडे, 15 जनवरी, 1988
8. http://www.hindu.com/2009/04/17/stories/2009041755071300.htm.

9. अच्युत याज्ञनिक और सुचित्रा सेठ, 'द शेपिंग ऑफ मॉडर्न गुजरात', पेंग्विन बुक्स इंडिया, 2005
10. http://saswatpanigrahi.blogspot.in/2011/02/playing-nationalism-to-public-gallery.html (the guy is a self-confessed *swayamsevak*).
11. 'इंडिया फर्स्ट', मोदी का नया मंत्र है, द हिंदू, 11 मार्च, 2013
12. फ्रैंक डिकोटर, माओज ग्रेट फेमीन, ब्लूम्सबरी, 2010
13. 27 दिसंबर, 2013 के 'द इकोनॉमिक टाइम्स' में प्रकाशित CBER की वार्षिक विश्व आर्थिक लीग तालिका में भारत को ब्रिटिश एजेंसी ने 11वें स्थान पर रखा था। 2013 के आँकड़ों के आधार पर CBER ने कहा था कि भारत 2028 तक तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन जाएगा
14. http://articles.economictimes.indiatimes.com/2013-12-14/news/45191138_1_policyparalysis-tough-action-entire-country
15. जेफरी एन वासरस्टॉर्म, 'चाइना इन द 21स्ट सेंचुरी : व्हाट एवरीवन नीड्स टू नो', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2010
16. शंकर आचार्य, एग्रीकल्चर : बी लाइक गुजरात, 'बिजनेस स्टैंडर्ड', 14 जुलाई, 2014
17. ए.के. ल्यूक से बातचीत, 24 फरवरी, 2014
18. मनोज मित्ता, द फिक्शन ऑफ फैक्ट फाइंडिंग, हार्पर कॉलिंस पब्लिशर्स इंडिया, 2014

□

# 2

# विकास की ढाल

*1960 में एक राज्य बनने के बाद से ही निवेश को बढ़ावा देना गुजरात की सभी सरकारों का रुझान रहा है, लेकिन मोदी आगे बढ़कर अपने नेतृत्व को दिखाते भी हैं और जोर-शोर से बताते भी हैं। 'विकास' मोदी का सबसे अच्छा विज्ञापन है और बचाव भी।*

उनके भाषणों, ब्लॉग और प्रशंसकों को देख और सुनकर ऐसी छवि बनती है, मानो मोदी गुजरात के आर्थिक इतिहास के शीर्ष पर खड़े हों। उनकी यशगाथा लिखनेवाले गुजरात के कारोबारी इतिहास को AM या एंटी मोदी और PM या पोस्ट मोदी में विभाजित करते हैं। लेकिन राज्य के सभी मुख्यमंत्रियों ने, चाहे वे किसी भी पार्टी के रहे हों, उन सबने औद्योगिक विकास को बढ़ावा देने के सतत प्रयास किए हैं। मोदी अकसर उस गुजरात मॉडल की बात करते हैं, जो उन्होंने तैयार किया है। दंगों को लेकर मीडिया ने मोदी की जिस प्रकार अग्निपरीक्षा ली, उसने ही संभवत: मोदी को अर्थव्यवस्था पर इतनी गहराई से विचार करने के लिए मजबूर किया, जो वह सामान्य परिस्थितियों में शायद नहीं करते।

बिहार के राजनेता लालू यादव का उदाहरण कुछ ऐसा ही है। तीन बार मुख्यमंत्री बनने के बावजूद चाहे इस दौरान वे स्वयं कुरसी पर बैठे या किसी और को बिठाया, राज्य की आर्थिक स्थिति को चौपट करनेवाले कुख्यात

मुखिया के रूप में बदनाम हुए और इस बदनामी के दाग को धोने के लिए उन्होंने सन् 2004 से 2009 के बीच रेल मंत्री के अपने कार्यकाल का इस्तेमाल अपनी छवि को बनाने के लिए किया। रेलवे में सुधार का जिम्मा एक काबिल अधिकारी को सौंपने के बाद उसे पूरा राजनीतिक संरक्षण देकर लालू ने रेलवे की माली हालत को काफी हद तक सुधार दिया। माल-भाड़ा बढ़ाया गया, विशेषकर निर्यात किए जानेवाले माल के लिए, जो अधिक कीमत चुका सकते थे और यात्री किराया नाममात्र के लिए बढ़ाया गया, जबकि तेजी, लंबी और बड़ी-बड़ी ट्रेन चलाकर यात्रियों को ले जाने की क्षमता को बढ़ाया गया। लालू को भारत और विदेश के प्रबंधन संस्थानों ने यह बताने के लिए न्योता भेजना शुरू किया कि उन्होंने गाय को कैसे दुह लिया। उनकी चर्चा कायापलट करनेवाले किरदार के रूप में होने लगी। इसी विषय पर ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा एक पुस्तक भी प्रकाशित की गई थी।

गुजरात के विकास का व्यक्तिवादी चेहरा रोचक है, लेकिन यह एक मुखौटा नहीं है। विरोधियों के मत से मोदी को लेकर संशय को बढ़ावा अत्यधिक प्रचार के कारण मिलता है। वे वास्तविकता से भी बड़ी तसवीर प्रस्तुत करते हैं। ऐसा ही उनके प्रशंसक भी करते हैं।

मोदी को सार्वजनिक जीवन की शिक्षा देनेवाले राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का मानना है कि सफल राजनीतिक संवाद दावे, पुनरावृत्ति और प्रवर्धन पर निर्भर करता है। इसके अनुसार शब्दों और वक्तव्यों के जरिए जिस अर्थ को समझाने का प्रयास किया जा रहा है, उसे बार-बार पुरजोर तरीके से अनेकानेक लोगों द्वारा दोहराया जाना आवश्यक होता है।

विकास-पुरुष के पद पर मोदी का पुख्ता अधिकार है। पिछले दशक की शुरुआत में, जो मुख्यमंत्री के रूप में मोदी के कॅरियर के साथ शुरू हुआ, गुजरात का विकास सालाना 8.85 प्रतिशत की दर से हुआ है। यह प्रमुख राज्यों की तुलना में सबसे ऊँची दर है और देश के कुल राज्यों को मिलाकर विकास की दर का डेढ़ गुना है। उत्तराखंड ने इससे भी अच्छा[1] किया है, लेकिन वह अपेक्षाकृत छोटा राज्य है और उसकी आबादी गुजरात की आबादी

के छठे हिस्से के बराबर है। विकास की रफ्तार में हरियाणा टक्कर दे रहा है, जबकि महाराष्ट्र एक कदम पीछे है। दोनों ही राज्य प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद में गुजरात को पछाड़ देते हैं। बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार का दावा है कि उनका विकास मॉडल बेहतर है, क्योंकि वे समावेशी हैं। यह बात सही है, क्योंकि राज्य का विकास पिछले दशक में 8 प्रतिशत की दर से हुआ है, लेकिन सकल घरेलू उत्पाद के निचले स्तर पर अर्थव्यवस्था में उछाल आसान होता है। देश की आर्थिक समृद्धि में गुजरात के मुकाबले बिहार का योगदान एक चौथाई ही है।

मोदी को श्रेय देने से वे लोग कतराते हैं, जो उनकी हिंदुत्व की राजनीति की निंदा करते हैं। उनका कहना है कि उद्यमिता तो गुजरातियों के डीएनए में ही होती है। ''मैं विकास पर उनके दावों को मान लूँगा, बशर्ते वे अपना प्रदर्शन बिहार में भी दोहरा दें।'' ऐसा गांधीनगर के एक पूर्व (मुसलिम) डिप्टी कलक्टर का कहना है।

गुजरात की अर्थव्यवस्था को व्यापार के अनुकूल नौकरशाही ने सुदृढ़ किया है, यह विचार समाचार पोर्टल के एक (धर्मनिरपेक्ष) गुजराती संपादक का है। यहाँ तक कि मोदी के समर्थकों का भी मानना है कि सरकार मददगार न हो तो भी राज्य में उद्यमिता की ऊर्जा को स्वरूप लेने से कोई रोक नहीं सकता। हिंदुत्व की बोली बोलनेवाले एक पत्रकार का कहना है कि गुजरात की अर्थव्यवस्था केवल स्वचालित नहीं बल्कि अनेक व्यक्तियों द्वारा चालित है। वामपंथी मोदी की उपलब्धियों को यह कहकर कम आँकते हैं कि उसका फायदा पूँजीवादी मित्रों और बड़ी कंपनियों को हुआ है, जबकि गरीबी कम करने की दिशा में कोई काम नहीं किया गया है। विपक्ष आरोप लगाता है कि मोदी पाँच करोड़ गुजरातियों की नहीं, पाँच करोड़पतियों की सेवा में जुटे हैं। इसके साथ ही यह जोड़ा जाता है कि उनकी आर्थिक नीतियों दानी, अडानी और नाथवानी के लिए हैं। पर यह सब सच्चाई से दूर है, गुजरात का विकास फीका दिखाने के लिए विरोधी ऐसे हमले करते रहते हैं।

मसालों और रेशम के आयात-निर्यात के रास्ते में पड़ने तथा भारत के समुद्र तट का लगभग एक चौथाई हिस्सा गुजरात में पड़ने के कारण गुजरात

को उद्यम की जन्मभूमि माना जाता है। व्यापार और वाणिज्य को लेकर गुजरातियों की सोच वैश्विक है। दुनिया भी उन्हें इसी नजरिए से देखती है। ऐसा कहा जाता है कि व्यापारियों के लिए प्रयोग किया जानेवाला 'बनिया' शब्द पुर्तगाली भाषा के 'वानिया' से बना है, जो गुजरात की मुख्य व्यावसायिक जाति है। कारोबार ने ही धर्म के चुनाव को लेकर उन पर असर डाला है—जैन और वैष्णव धर्मों को उन्होंने अपनाया, जो हिंदू धर्म के शांतिप्रिय संप्रदाय हैं। यहाँ तक कि जिन्होंने इसलाम धर्म को अपनाया, जैसे बोहरा, मेमन और खोजा, उनके मन में भी व्यापार में सहूलियत की बात रही होगी, क्योंकि इसलाम में समुद्र को लाँघने पर मनाही नहीं थी। व्यापार की ललक ही उन्हें अफ्रीका तक लेकर गई और व्यापार को बढ़ाने के लिए ही उन्होंने धीरे-धीरे वहाँ की राजनीति पर भी अपनी पकड़ बना ली।

सूरत भारत का प्रमुख बंदरगाह था। ईस्ट इंडिया कंपनी ने सन् 1608 में यहीं के तट पर मोरचाबंदी की थी। ब्रिटिश यहाँ व्यापारी बनकर आए, लेकिन डेढ़ दशक बाद उन्होंने पूर्व की दिशा से, बंगाल के रास्ते औपनिवेशिक साम्राज्य का विस्तार शुरू कर दिया। उन्होंने औद्योगिक पूँजीवाद के लिए माहौल तैयार किया। बंगाली और पारसी पहले ऐसे हिंदुस्तानी थे, जिन्होंने उद्योग लगाया। अहमदाबाद में बसे कारोबार के इतिहासकार द्विजेंद्र त्रिपाठो ने मुझे बताया कि उस व्यापार ने जल्दी और मोटा मुनाफा दिया, उस कारण गुजरातियों के मन में औद्योगिक जोखिम और नए प्रयोग को लेकर एक डर समा गया। किंतु इस क्षेत्र में अपनी पकड़ बनाने में उन्हें देर नहीं लगी। गुजरात की अर्थव्यवस्था में निर्माण (खनन, उत्खनन, और बिजली-पानी जैसी उपयोगिताओं को छोड़कर) का योगदान 24 प्रतिशत है, जबकि भारत की अर्थव्यवस्था में उत्पादन का हिस्सा 16 प्रतिशत ही है। किंतु उद्यमी व्यक्तियों को अनुकूल परिस्थितियों की दरकार होती है। यह कहना कि अर्थव्यवस्था अपने आप ही तरक्की करने लगती है, ठीक नहीं होगा और यह सरकार तथा नेतृत्व की भूमिका को अनदेखा करने के समान होगा। प्रबंधन के प्राध्यापक रविंद्र ढोलकिया का कहना है कि गुजरात देश की तुलना में 1980[2] के दशक में भी पिछड़ा हुआ था। यहाँ की वार्षिक विकास दर 4.1 प्रतिशत थी, जो देश के 5.2 प्रतिशत की तुलना में

पीछे थी। एक बातचीत के दौरान उन्होंने बताया कि निजी उद्यमिता का दमन करनेवाली केंद्रीय नीतियों ने राज्य की जीवन-शक्ति को अनौपचारिक क्षेत्रों की ओर मोड़ दिया होगा। किंतु विविध अर्थव्यवस्था, वाणिज्यीकृत कृषि और अपेक्षाकृत उच्च दर से होनेवाले शहरीकरण के कारण राज्य की अर्थव्यवस्था तब चरम पर पहुँच गई, जब सुधारों को लागू किया गया।

यह सही है कि गुजरात में पूँजी प्रधान उद्योगों का बड़ा योगदान है। देश की पूँजी में 16 प्रतिशत की स्थिर पूँजी के साथ यह पहले नंबर पर है। तेल और गैस के मामले में संपन्न होने के कारण गुजरात का चुनाव रिफाइनिंग और पैट्रोकेमिकल उद्योगों की स्थापना के लिए स्वाभाविक तौर पर किया गया। इसने अपनी लंबी समुद्री सीमा का इस्तेमाल भी अपने घाटे को मुनाफे में बदलने करने के लिए किया है।

लौह अयस्क की कमी के बावजूद गुजरात के हजीरा में फ्लैट स्टील का अकेला सबसे बड़ा कारखाना है।[3] घरेलू कोयला खदानों से दूरी और भारतीय रेल के निकम्मेपन के कारण तटों पर स्थित ऊर्जा संयंत्रों को बढ़ावा मिला, जो आयातित कोयले से चलते हैं। सन् 2001 के भूकंप के बाद करों में राहत दिए जाने से और एक विशाल निजी बंदरगाह होने के कारण बंजर कच्छ पाइपलाइन के निर्माण[4] से यह विश्व के नक्शे पर आ गया है और ताजा जनगणना के आँकड़ों के अनुसार, सूरत के बाद आबादी के लिहाज से सबसे तेजी से विकसित होनेवाला जिला है। नमक के भंडारों की वजह से राज्य में हैवी केमिकल (जैसे कॉस्टिक सोडा और सोडा एश) उद्योग आकर्षित हुए हैं। आंध्र प्रदेश के साथ-साथ दवा के उत्पादन में गुजरात चोटी का राज्य है। दिल्ली, पुणे और चेन्नई के बाद अहमदाबाद ऑटोमोबाइल निर्माताओं की नई पसंद बन गया है। छोटी सी कार नैनो ने टाटा मोटर्स की किस्मत बेहतर बनाने में भले ही खास योगदान न दिया हो, लेकिन साणंद में, जहाँ उसकी फैक्टरी है, फोर्ड जैसे कार निर्माता और ऑटो पार्ट्स बनानेवाली कंपनियाँ आकर्षित हुई हैं। महेश्वर साहू, जो जनवरी 2014 के अंत में उद्योग सचिव के पद से रिटायर हुए, का कहना है कि पाँच वर्षों की अवधि में लगभग 70,000 करोड़ रुपए का निवेश हो सकता है।[5]

पूँजी प्रधान एक गाली के समान शब्द है, जिसका इस्तेमाल वामपंथियों द्वारा विशाल निजी उद्योगों (कभी राज्य-स्वामित्ववालों के लिए नहीं) को नीचा दिखाने के लिए किया जाता है। लाभोन्मुखी होने के कारण, उनके मन में इन निगमों की छवि औद्योगिक शिकारियों के समान है। किंतु विशाल कारखाने किसी विशाल वृक्ष की घनी शाखा के समान नहीं हैं, जो अपने नीचे उगनेवाले पौधों को नष्ट कर देते हैं। इसकी बजाय वे औद्योगिक नर्सरी के समान हैं। सन् 2010-11 के औद्योगिक सर्वे के अनुसार, गुजरात में 21,300 कारखाने थे, जो देश के कुल कारखानों का दस प्रतिशत हैं। वे बड़ी फैक्टरियाँ हैं, जहाँ पचास से अधिक लोग काम करते हैं। इस मामले में तमिलनाडु पहले नंबर पर है, जहाँ 17 प्रतिशत उद्योग हैं। गुजरात चौथे पायदान पर है, लेकिन उसके आगे जो दो और राज्य हैं, उनसे गुजरात का फासला बहुत मामूली है। गुजरात में देश के 10 प्रतिशत मजदूर काम करते हैं। यह दूसरे पायदान पर आनेवाले महाराष्ट्र की तुलना में अधिक है, जिसकी आबादी गुजरात से दोगुनी है। गुजरात में हर एक करोड़ रुपए के निवेश पर पैदा होनेवाले रोजगार और उत्पादन में गिरावट दर्ज की जा रही है, लेकिन बेरोजगारी की दर यहाँ देश की तुलना में काफी कम है। किसी राज्य में बड़े व्यवसायों के होने से छोटे उद्योगों की मुश्किल नहीं बढ़ती। कल-कारखाना उद्योग में, कार कंपनियों जैसे बड़े समूह पायदान में सबसे ऊपर होते हैं और उनके नीचे छोटे एसेंबलर तथा पुरजे डालनेवाले उद्योग होते हैं। गुजरात में दो सौ से ज्यादा औद्योगिक संपदा है, और वहाँ लघु व मझोले उद्योग खूब फल-फूल रहे हैं। यहाँ तक कि प्रसंस्करण उद्योगों, जैसे पैट्रोकेमिकल में, सेवा-क्षेत्र में अनेक रोजगार पैदा हो रहे हैं और उनमें प्लास्टिक को पाइप, चद्दरों और अन्य उत्पादों में बदलनेवाले उपकरणों की माँग होती है। राज्य में लगभग पाँच लाख छोटे-मोटे और लघु उद्योग हैं। पिछले दशक की शुरुआत में उनकी संख्या इसकी आधी भी नहीं थी।

मार्केटिंग राजनीतिज्ञों का एक अनिवार्य साधन है। मोदी इस कला में माहिर हैं। वे जानते हैं कि केवल वादों को निभा देना ही पर्याप्त नहीं है। उन्हें लोगों की धारणा का ध्यान भी रखना पड़ता है। एक पत्रकार में खामोशी एक

गुण के समान होती है। मोदी इनफोसिस की विचारधारावालों में शामिल नहीं हैं, जो कम वादा करते हैं और अधिक निभाते हैं। वे जानते हैं कि कभी कम दर पर नहीं बेचते और इसकी कोशिश भी नहीं करते हैं।

विज्ञान और जनसंपर्क के प्राध्यापक पंकज मुधोलकर, जिन्होंने वाइब्रेंट गुजरात अभियान की नींव रखी थी, का कहना है, ''मोदी उपलब्धियों के प्रदर्शन में विश्वास करते हैं।'' उन्होंने बताया कि एक बार मोदी ने एक अफसर की उसके विभाग की प्रस्तुति पर पीठ थपथपाई, लेकिन उसे 'जीरो नंबर' दिया, क्योंकि की विषय पर किसी को कोई जानकारी नहीं थी।

'वह ब्रांडिंग करने की कला जानते हैं,' इस बात को साहू भी मानते हैं। 'इस तरीके से ही वे हर किसी को एक उद्देश्य के पीछे लगा देते हैं। यदि आपने ब्रांडिंग नहीं की तो आप उसके पीछे पूरी ऊर्जा नहीं झोंक सकते हैं।'

सन् 1969 में केंद्रीय वाणिज्य मंत्री मनुभाई शाह और वी.जी. पटेल ने टेक्नीशियन स्कीम लॉन्च की। पटेल GIDC के आर्थिक सलाहकार थे। स्कीम का उद्देश्य इंजीनियरों को उद्यमिता की ट्रेनिंग देनी थी, क्योंकि उनमें से अधिकतर के पास आत्मविश्वास की कमी थी। वे नहीं जानते थे कि कारोबार की योजना कैसे तैयार की जाती है, उन्हें ऋण प्राप्त करने के बारे में भी जानकारी नहीं थी या उद्यमों के प्रबंधन का भी कोई ज्ञान नहीं था।[6]

इसी से जुड़ा था उद्यमिता विकास कार्यक्रम, जिसकी शुरुआत अप्रैल 1970 में हुई थी। पटेल कहते[7] हैं कि कई वर्षों बाद पैंतालीस लोगों को न्योता दिया गया, लेकिन केवल सैंतीस ही आए। पटेल ने 'आउटलुक' पत्रिका को बताया, ''हमारे पास औद्योगिक संपत्ति थी, हमने परियोजनाओं के लिए पैसों का इंतजाम करने के लिए एक निवेश निगम की स्थापना की, लेकिन इन सबका लाभ उठानेवाले उद्यमी ही नदारद थे।'' सन् 1983 में, केंद्र सरकार के स्वामित्ववाले निवेशी बैंकों की मदद से, उद्यमिता विकास संस्थान की स्थापना एक राष्ट्रीय संस्थान के रूप में की गई थी। तीस वर्षों की अवधि में इसने लगभग 10,000 ऐसे लोगों को प्रशिक्षित किया, जो नौकरियों का सृजन कर सकते थे।

औद्योगिक विस्तार ब्यूरो या जो निवेशकों को सुरक्षा प्रदान करनेवाली

सेवा थी, उसकी शुरुआत भी पहली बार गुजरात में सन् 1977 में हुई, और आगे चलकर अन्य राज्यों ने उसका अनुकरण किया। इस संक्षिप्त नाम के पहले और अंतिम अक्षर को जान-बूझकर छोटे में लिखकर यह संकेत दिया गया है कि यदि गुजरात को भारत में निवेश के लिए लोकप्रिय राज्य का दरजा प्राप्त करना है तो अहंकार (या I यानी मैं) और लालफीताशाही जैसी रास्ते की रुकावटों को हटाना होगा। यह एजेंसी सरकारी बजट पर निर्भर नहीं थी और इस कारण यह राजनीतिक हस्तक्षेप से भी दूर थी।

ब्यूरो के प्रमुख का पद मुख्य सचिव के बराबर का होता था और उसकी पहुँच सीधे मुख्यमंत्री तक थी।

इसके फैसले अकसर बिना किसी विरोध के मान लिये जाते थे, यह कहना है इसके पहले प्रबंध निदेशक जय नारायण व्यास का, जो टेलीविजन पर होनेवाली डिबेट में अकसर राज्य बीजेपी का पक्ष रखते दिखाई पड़ते हैं। व्यास एक इंजीनियर व अर्थशास्त्री हैं और पिछले चुनाव में हार से पूर्व वे मोदी की कैबिनेट में कई महत्त्वपूर्ण विभाग, जैसे स्वास्थ्य और पर्यटन को सँभाल चुके हैं। एजेंसी की उत्पत्ति पर ध्यान दें तो पता चलता है कि नौकरशाहों में कारोबार को सहूलियत देने की कितनी उत्सुकता थी। सन् 1972 से ही एक परंपरा के तौर पर उद्योग आयुक्त के दफ्तर में हफ्ते में एक बार चाय पर बैठक हुआ करती थी। ऐसी ही एक बैठक में, व्यास ने ही, जो तब एक अधिकारी थे, यह विचार रखा था कि एक ऐसी संस्था बनाई जाए, जो संभावित निवेशकों को औद्योगिक खुफिया जानकारी उपलब्ध करा सके। इन बैठकों में मुख्य सचिव, वित्त सचिव और राज्य के विभिन्न औद्योगिक और वित्तीय निगमों के प्रबंध निदेशक शामिल हुआ करते थे। इनमें निवेश के मुद्दे पर बातचीत होती थी। अनिवासी भारतीय निवेशकों के लिए उद्योग विभाग में पहले से ही एक प्रकोष्ठ काम कर रहा था। उनसे विचार-विमर्श के बाद यह विचार सामने आया कि ब्यूरो मंजूरी और रियायतों को लेकर राज्य की विभिन्न एजेंसियों से संबंध स्थापित करेगा।

निवेशकों को लाइसेंस-परमिट राज की भूलभुलैया से निकलने में मदद करने के लिए सरकार ने दिल्ली में एक वरिष्ठ अधिकारी की तैनाती कर दी।

इसने मुंबई, कोलकाता और पूर्वी अफ्रीका में दफ्तर खोले, जहाँ निवेशकों से मिलना-जुलना होता था। iNDEXTb में आशय पत्रों (LoIs) पर नजर रखने और उन्हें औद्योगिक लाइसेंस में परिवर्तित कराने की प्रक्रिया अत्यंत सुलझी हुई थी। यह गुजरात के लिए केंद्र सरकार द्वारा जारी LoIs की सूची प्राप्त करती थी और एक-एक निवेशक को चिट्ठी लिखकर यह पूछती थी कि क्या उन्होंने आशय को लाइसेंस में परिवर्तित करने के लिए अरजी दे दी है, यदि हाँ, तो उनकी अरजी कहाँ फँसी है और कब से अटकी है। ब्यूरो उस अरजी के पास होने तक उसका पीछा करती थी। निवेशकों को औद्योगिक इलाकों का विकल्प भी दिया जाता था। एक विश्लेषण से यह बात सामने आई कि सन् 1977 से 1985 के बीच 60 प्रतिशत आशय-पत्रों को औद्योगिक लाइसेंस में परिवर्तित किया गया था।

गुजरात में भरपूर प्रयत्न किए जाते थे कि परियोजनाएँ अपना तय लक्ष्य प्राप्त करें। उत्पादन में प्रगति के आधार पर ही सब्सिडी जारी की जाती थी। ब्यूरो मुनाफा कमाने के अवसरों की सूचना देता था, निवेश के लिए प्रचार अभियान चलाता था और संभावित उद्यमियों तक अपनी पहुँच बनाता था। काफी हद तक उसकी गतिविधियाँ मोदी के प्रमुख निवेश मंच 'वाइब्रेंट गुजरात' के जैसी ही थीं, बस अंतर यह था कि उसमें महानगरों और विदेश में रोड शो (पहली बार सन् 1997 में हुए) हुआ करते थे। अब राजधानी गांधीनगर में यह एक भव्य समारोह के रूप में आयोजित किया जाता है। व्यास इस बात पर अफसोस जताते हैं कि ब्यूरो एक खोल के रूप में रह गया है। उनका संकेत इसकी घटती भूमिका की ओर है, हालाँकि जब स्वयं मुख्यमंत्री ने ही निवेश के प्रयासों की कमान सँभाल ली है तो अफसरों के प्रचार की अपेक्षा उनकी लोकप्रियता तो बढ़नी ही थी।

अलग राज्य बनने के बाद से ही गुजरात की सारी सरकारों के लिए औद्योगिक विकास को बढ़ावा और निवेश प्राप्त करने के प्रयास महत्त्वपूर्ण विषय रहे हैं। इनकी जिम्मेदारी सँभालनेवाले अधिकारी लगभग एक विशेष दरजा रखते थे। उनके पास पर्याप्त स्टाफवाला दफ्तर और खर्च के लिए अलग अकाउंट था, हालाँकि उन्हें गैरजरूरी मामलों में कंजूसी के गांधीवादी उसूलों

का पालन करने के निर्देश थे।

निवेश आकर्षित करने के लिए रोड शो केवल भारत में ही नहीं, बल्कि विदेश में भी हुआ करते थे। विदेशी मुद्रा के लेन-देने में पाबंदियों से राहत दिलाने के लिए प्रवासी गुजराती समुदाय हमेशा तैयार रहता था।

एक बार आर्थिक सुधारों ने जड़ जमा ली तो विकास दर में राज्य ने चीन के अलग हुए किसी प्रांत के जैसी रफ्तार पकड़ ली। निवेश सुनिश्चित करने के मामले में सिंगापुर को एक मापदंड के रूप में तय किया गया था। अफसर इतने नकचढ़े नहीं थे कि उद्यमियों के दफ्तर में जाने से कतराते।

हमारी संस्कृति बॉक्सवाला जैसी नहीं थी, ऐसा कहना है गुजरात कैडर के अधिकारी मानसिंह का, जिन्होंने भारत के विदेश व्यापार के महानिदेशक का पद भी सँभाला था। लेकिन मोदी से पहले के मुख्यमंत्री निवेश के प्रयत्नों में बढ़-चढ़कर हिस्सा नहीं लेते थे। एक बार डील हो जाने पर, वे बस निवेशकों से औपचारिक मुलाकात भर कर लेते थे।

गुजरात के मुख्यमंत्रियों में चिमनभाई पटेल ने निवेशकों को तीव्रता से आकर्षित करने की शुरुआत की। मार्च 1990 से शुरू हुए अपने दूसरे कार्यकाल के दौरान उन्होंने अनेक बुनियादी और विशाल औद्योगिक परियोजनाओं को शुरू करने में योगदान दिया, जिनमें से एक हजीरा स्थित रिलायंस पेट्रोकेमिकल भी है। पटेल ने केंद्र में काबिज गठबंधन सरकार को आँख दिखाई कि वह राज्य को कम दाम पर भारी मात्रा में गैस की आपूर्ति करे और तेल के बदले ऊँची दर पर अधिशुल्क दे। उन्होंने नर्मदा बाँध को पर्यावरण की मंजूरी के लिए पहले पर्यावरण सचिव टी.एन. शेषन को और फिर राजीव गांधी सरकार को मनाया। मंजूरी का मामला लंबे समय से अटका हुआ था।

गुजरात के आर्थिक उदारीकरण को हिंदू राष्ट्रवाद के चश्मे से देखनेवाली निकिता सूद ने सन् 2012 में लिखी अपनी पुस्तक में लिखा है कि पटेल रातोरात फैसला करने की माँग कर रहे थे।[8] सूद के एक परिचित अधिकारी ने उन्हें बताया कि पटेल को कोई भी देरी मंजूर नहीं थी। वे मानते थे कि उनके द्वारा भेजे जानेवाले प्रस्तावों को अनिवार्य और विस्तृत जाँच के नाम पर रोका गया तो वह गुजराती अस्मिता का अपमान है। यह हथकंडा उन्होंने आंध्र प्रदेश के

मुख्यमंत्री एन.टी. रामाराव से सीखा था, जो हमेशा तेलुगू 'आत्म गौरवम' का मुद्दा उठाए रहते थे। पटेल जोखिम उठानेवाले व्यक्ति थे और अनाड़ी पर भी दाँव लगा सकते थे। निखिल गांधी, जो बंदरगाह विकसित करनेवालों में अग्रणी हैं, उन्हें पटेल की वह बात याद है, जो उन्होंने गुजराती व्यावहारिकता का परिचय देते हुए अपने वित्त सचिव से कही थी, 'एक बनिया राज्य में बनिए के जैसी सोच रखो।' गांधी, जो एक डॉक के मालिक हैं और जिन्होंने उद्योगपति मुकेश अंबानी के साथ मिलकर विशेष आर्थिक क्षेत्रों (SEZ) की स्थापना की, उन्हें बंदरगाह विकसित करने का कोई अनुभव नहीं था। फिर भी सरकार ने जब दस बंदरगाहों को विकसित करने के लिए निजी क्षेत्रों को आमंत्रण दिया, तब उन्होंने पीपावाव को विकसित करने का प्रस्ताव रखा। केंद्र के द्वारा जिनकी स्थापना की गई थी और जिन्हें प्रमुख बंदरगाह कहा जाता था, वे भारी माँग को पूरा नहीं कर पा रहे थे।

गुजरात ने अन्य राज्यों से कहीं पहले यह समझ लिया था कि राज्यों पर बंदरगाह विकसित करने के मामले में कोई रोक नहीं है और आधिकारिक तौर पर उन्हें छोटा कहा जाता था, लेकिन उन्हें कितना भी बड़ा करने में कोई पाबंदी नहीं थी। सचिव को पता चल गया कि गांधी अन्य के अधिकार में हाथ डालनेवाले व्यक्ति हैं, जो सरकार से जबरदस्ती रियायत लेते हैं और जैसे-जैसे निर्माण आगे बढ़ेगा, वे और रियायत माँगेंगे। यदि गांधी ने बीच में ही काम छोड़ दिया तो सरकार के पास अधूरे काम को निपटाने भर की जिम्मेदारी रह जाएगी। "तो क्या हुआ," पटेल ने कहा, "हम खुद परियोजना को पूरा करेंगे। इस तरीके से हमें एक बंदरगाह आधे दाम पर ही मिल जाएगा!"

भारत का सबसे लंबी समुद्री सीमावाला राज्य होने के कारण गुजरात के विकास की रणनीति में बंदरगाह आधारित विकास की भूमिका सबसे अहम है। राज्य ने सन् 1982 में देश के पहले समुद्री बोर्ड का गठन किया। चिमनभाई द्वारा निजी क्षेत्र के साथ मिलकर बंदरगाह विकसित करने की प्रक्रिया ने संस्थागत रूप ले लिया और उसे आगे आनेवाले बीजेपी के मुख्यमंत्री केशुभाई पटेल ने सन् 1995 मे सुरेश मेहता ने आगे बढ़ाया। उन्होंने इस क्षेत्र में निजी निवेश को बढ़ावा देने के लिए नीतियाँ और रियायत देनेवाले अनुबंध

तैयार किया तथा देश का पहला बुनियादी ढाँचा 'विकास बोर्ड' गठित किया।

अक्तूबर 2001, जब केशुभाई कुरसी से उतरे और मोदी ने कमान सँभाली, तब तक गुजरात में पीपावाव, मुंद्रा, सिक्का और दाहेज बंदरगाहों के विकास के लिए अच्छा खासा निजी निवेश हो चुका था। अब बिजली की सुविधा और एशियाई विकास बैंक से मिले पैसे को व्यवस्थित करने की योजना तैयार की गई। दस वर्षों के लिए बुनियादी ढाँचे का खाका तैयार किया जा चुका था। इसी प्रकार का खाका कृषि क्षेत्र के लिए तैयार हो चुका था। सुप्रीम कोर्ट ने काफी समय से लंबित नर्मदा बाँध पर निर्माण कार्य को मंजूरी दे दी थी और उसे पूरी ऊँचाई दिए जाने को भी हरी झंडी दे दी थी, बशर्ते पर्यावरण से जुड़ी चिंता का ध्यान रखा जाए और पहले की तरह विस्थापितों की उपेक्षा न की जाए। प्यासे सौराष्ट्र और कच्छ में अनेक चेक डैम का निर्माण किया जा चुका था।

यह सही है कि मोदी ने गुजरात की अर्थव्यवस्था को ऊँचे स्तर पर और नई दिशाओं में तेजी से बढ़ाने का काम किया है। एक ऐसे राज्य में जहाँ मुख्यमंत्रियों का कार्यकाल 'आया राम गया राम' जैसा था, वहाँ दस साल से भी अधिक समय तक एक स्थिर कार्यकाल ने नीतियों को भी स्थायित्व दिया है। स्पष्ट सोच, निर्णायक काररवाई, दूरदर्शिता, बेहिसाब ऊर्जा, नए विचार और विकास पर मजबूत से ध्यान दिए जाने के कारण गुजरात ने एक दशक से भी अधिक समय तक लगभग दोहरे अंकोंवाला विकास देखा है। पहले के मुख्यमंत्रियों के कार्यकाल में भी विकास में उछाल दर्ज की गई थी, लेकिन वह लंबे समय तक जारी नहीं रह सका था।

मोदी के मुख्यमंत्री रहते गुजरात को निवेश के 5,200 प्रस्ताव मिले, जो दूसरी सबसे बड़ी संख्या है, जबकि महाराष्ट्र को 7,720 (हालाँकि आवश्यक नहीं कि ये फैक्टरियों का रूप ले लेते हैं) प्रस्ताव मिले। प्रस्तावित निवेश की बात करें तो उड़ीसा और छत्तीसगढ़ काफी ऊपर हैं, लेकिन वे खनन के टेढ़े-मेढ़े प्रस्ताव हैं। निवेश के वादे के मामले में गुजरात 10.07 लाख करोड़ के साथ तीसरे नंबर पर है और इस राशि के अंतर्गत अनेक प्रकार की परियोजनाएँ हैं।[9]

गुजरात दंगों की भयावहता कुछ दिनों के बाद थम गई, फिर भी छिट-पुट घटनाएँ कई हफ्तों तक जारी रहीं। ऐसा तब तक चलता रहा जब तक कि पुलिस अफसर के.पी.एस. गिल, जिन्हें पंजाब में सिख आतंकवाद को समाप्त करने का श्रेय दिया जाता है, को सुरक्षा सलाहकार नियुक्त नहीं कर दिया गया। गिल का कहना था कि उन्होंने किसी के मन में पछतावा नहीं देखा। गुजरात के अधिकांश हिंदू मानते थे कि जो कुछ हुआ, वह अयोध्या में महायज्ञ के बाद ट्रेन से लौट रहे हिंदू कार सेवकों को 27 फरवरी, 2002 को नृशंसता से जला दिए जाने की स्वाभाविक प्रतिक्रिया के तौर पर हुआ।

दंगों के बाद हुए चुनावों में मोदी सरकार को मिला जबरदस्त समर्थन बेकार साबित होता, यदि सामाजिक उपद्रव कारोबार को प्रभावित करता और आर्थिक नुकसान को बढ़ा देता। राष्ट्रीय उद्योग चैंबर फिक्की और उसकी गुजरात इकाई ने मौन धारण कर लिया। लेकिन भारतीय उद्योग परिसंघ चुप नहीं रहा, विशेष तौर पर इस कारण क्योंकि मुंबई के पारसी समुदाय (जिनकी जड़ें गुजरात में हैं) के सदस्यों जैसे अनु आगा ने उसे बोलने पर मजबूर कर दिया था। अनु आगा, जो ऊर्जा और पर्यावरण इंजीनियरिंग कंपनी की अध्यक्ष थीं और साइरस गुजदर, जो लॉजिस्टिक बिजनेस करनेवाली कंपनी के मालिक थे, जिसे फेड एक्स ने अधिगृहीत कर लिया था, ने भी आवाज उठाई। कोलकाता में बसे उद्योगपति और सीआईआई के अध्यक्ष संजीव गोयनका, जिन्हें कांग्रेस के करीब माना जाता है।[10]

एक वर्ष बाद भी उद्योगपति दंगों को लेकर सहज नहीं हो सके थे। मुझे याद है, जब मैं 6 फरवरी, 2003 को दिल्ली के ली मेरीडियन होटल में CNBC-TV18 न्यूज चैनल के रिपोर्टर की हैसियत से मोदी की सीआईआई के साथ बातचीत को कवर करने पहुँचा था, उस दिन आधे घंटे की एक डॉक्यूमेंट्री जिसका नाम 'गुजरात : द शनसाइन स्टेर' था, उसे दिखाया गया। उसकी टैगलाइन थी—'द स्टेट दैट रन्स लाइक ए कंपनी' (एक राज्य जो कंपनी की तरह चलाया जाता है)। उद्योगपति राहुल बजाज और जमशेद गोदरेज ने गुजरात में कानून व्यवस्था की स्थिति का, और उन मूल्यों का मुद्दा उठाया, जिनकी हिमायत मोदी करते हैं। यह बात कोई चाहकर भी

नहीं भुला सकता कि आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से सन् 2002 गुजरात के लिए घाटे का साल था। बजाज ने बेबाकी से अपनी राय रख दी। (उनके दादा जमनालाल बजाज कारोबार में नैतिकता में विश्वास रखते थे और उन्होंने गांधीजी के आदर्शों एवं उद्देश्यों के लिए अपनी लगभग सारी दौलत न्योछावर कर दी थी।)

गोदरेज ने कहा कि सीआईआई एक संस्थान के रूप में विकसित हुआ है क्योंकि इसने विभिन्न प्रकार की विचारधाराओं की अभिव्यक्ति को बढ़ावा दिया है। इस नीति में कोई बदलाव नहीं हो सकता है। हालाँकि हम अपनी बैठकों में हंगामे की इजाजत भी नहीं दे सकते हैं।

गोदरेज पिछले ही महीने मुंबई सीआईआई की एक घटना का जिक्र कर रहे थे। सीआईआई ने उद्योगपतियों को गुजरात में निवेश के अवसरों पर मोदी का भाषण सुनने के लिए आमंत्रित किया था। आमंत्रित उद्योगपति तो दंगों के बाद की स्थिति पर चुप थे।

मोदी ने दिल्ली की बैठक में इस्तेमाल की गई तीखी भाषा पर नाराजगी जताई थी।[11] "आप और आपके छद्म-धर्मनिरपेक्ष साथियों को यदि उत्तर चाहिए तो वे गुजरात आएँ। पिछले आठ महीनों में राज्य में 8,000 करोड़ रुपए का निवेश हुआ था, ऐसे में आप मुझसे कानून और व्यवस्था पर क्या सवाल कर रहे हैं?"

"मेरा मानना है कि सीआईआई ने पिछले वर्ष गुजरात के साथ घोर अन्याय किया था," मोदी ने अपनी आवाज बुलंद करते हुए कहा।[12] मोदी की आक्रामकता से स्पष्ट था कि वे अपने सीआईआई को बख्शनेवाले नहीं हैं। एक महीने बाद 7 मार्च को इसके महानिदेशक तरुण दास फ्लाइट से गांधीनगर पहुँचे और उन्होंने मुख्यमंत्री और राज्य को पहुँची ठेस के लिए माफी माँगी।[13]

मोदी ने सीआईआई की तेल और गैस उद्योग की प्रदर्शनी का बहिष्कार कर दिया था। सीआईआई की स्थानीय शाखा भी टूटकर अलग होने की योजना बना रही थी। निरमा, अडानी, कैडिला, आशिमा और टोरेंट ग्रुप के उद्योगपतियों ने रीसरजेंस ग्रुप ऑफ गुजरात के बैनर तले राज्य की छवि

धूमिल करने की सुनियोजित साजिश के' खिलाफ एक मुहिम छेड़ रखी थी।[14] उन्होंने पिछले वर्ष हुए दंगों को 'एक सामाजिक दुर्घटना' करार दिया, जिसका 'राजनीतिक मापदंड के रूप में दुरुपयोग' नहीं किया जाना चाहिए। मनोज मित्ता ने अपनी पुस्तक 'द फिक्शन ऑफ फैक्ट फाइंडिंग : मोदी ऐंड गोधरा' में लिखा है कि मोदी ने आर्थिक विकास के मुद्दे को ढाल बनाकर राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा सुप्रीम कोर्ट के समक्ष बड़ौदा के बेस्ट बेकरी केस (जिसमें चौदह लोग मारे गए थे) की जाँच को फिर से केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा कराए जाने और गुजरात दंगों की दोबारा जाँच को बाहर शिफ्ट किए जाने से रोकने का प्रयास किया। राष्ट्रपति को लिखी एक चिट्ठी में उन्होंने कहा, ''निहित स्वार्थवाले लोग प्रगति की राह में बाधाएँ खड़ी करना चाहते हैं। वे छिटपुट घटनाओं को ढूँढ़-ढूँढ़कर निकाल रहे हैं और उन्हें केवल एक मंशा से बढ़ा-चढ़ाकर पेश कर रहे हैं कि कैसे भी विकास की रफ्तार को धीमा किया जा सके।''

इस परिप्रेक्ष्य में महेश्वर साहू ने, जो तब उद्योग आयुक्त थे और उनके साथ डी जे पांडियन ने, जो गुजरात स्टेट पेट्रोलियम कॉरपोरेशन के प्रबंध निदेशक थे और iNDEXTb के प्रमुख अरविंद शर्मा ने अंतरराष्ट्रीय निवेशकों की बैठक की योजना तैयार की थी। इसका उद्देश्य जितना निवेश को सुनिश्चित करना नहीं था, उससे कहीं अधिक उस छवि को मिटाना था, जो दिन-रात मीडिया में और विशेष तौर पर अंग्रेजी मीडिया में आ रही खबरों से बन रही थी कि गुजरात कारोबार के लिए सुरक्षित नहीं है। मोदी पहले इस विचार पर उतने उत्साहित नहीं थे, लेकिन अंत में उन्होंने इसमें अपनी दिलचस्पी दिखानी शुरू कर दी। यही तीन अफसरों की एक कोर कमेटी बनाई गई और उन्हें पूर्ण अधिकार दिए गए।

यह तय हुआ कि पहला आयोजन सितंबर 2003 में होगा, जो दंगों से नौ महीने बाद की बात है। इसी दौरान नवरात्रे भी पड़ते हैं, जब गुजरात सबसे जीवंत रूप में होता है और स्त्रियाँ देर रात तक सड़कों पर घूमती रहती हैं। फिक्की को इस आयोजन में भागादीरी दी गई। आयोजन का नाम 2001 के पर्यटन अभियान से लिया गया, 'वाइब्रेंट गुजरात : द कलर्स ऑफ इंडिया',

जिसे पंकज मुधोलकर के नेतृत्व में ग्रे वर्ल्डवाइड नाम की विज्ञापन एजेंसी ने तैयार किया था। टीम को गुजरात पर्यटन विभाग के प्रबंध निदेशक सी.टी. मिश्रा से निर्देश मिले थे। इसमें ऐसा दिखाया गया इस राज्य में वह सबकुछ है, जो भारत में है—समुद्र तट, जंगल और वन्यजीव, ऐतिहासिक धरोहर और तीर्थस्थल, योजनाबद्ध छुट्टियों में इन सबको देखा जा सकता है।

मुधोलकर ने बताया कि निवेश सम्मेलन से पहले बिजनेस न्यूज चैनल CNBC-TV18 पर आधे घंटे के फीचर कार्यक्रम विज्ञापन के रूप में चलाए जा रहे थे। उनमें राज्य की क्षमता और सामर्थ्य को दिखाया गया था। मोदी के वक्तव्य अनिवार्य रूप से चलाए जा रहे थे। उन्होंने अपने नजरिए की बात की थी। चैनल 'आजतक' ने एक पेड क्लिप चलाई, जिसका नाम था—'वाइब्रेंट गुजरात पेश करते हैं देश में नवरात्रि' और इसे प्राइम टाइम के न्यूज बुलेटिन में चलाया जाता था। इसमें देश भर में नवरात्रि के उत्सव को दिखाया जाता था। खबरवाली पत्रिकाओं में इस प्रकार के विज्ञापनवाले संपादकीय लेख छपते थे, जो संपादकीय के समान लगते थे और उनमें गुजरात के कारोबारी माहौल की तारीफ होती थी। मीडिया में चलाई जा रही इस मुहिम के अंदर का संदेश था 'हैप्पी, हैपनिंग गुजरात।'[15]

शैलेष पाठक, जो एक इन्वेस्टमेंट बैंकर थे और भारतीय प्रशासनिक सेवा में शामिल होने के बाद छत्तीसगढ़ सरकार में सचिव के पद से इस्तीफा देकर एक बार फिर निजी निवेश बैंकिंग और एक्विपमेंट फाइनेंस में काम करना शुरू कर दिया, वह पहले सम्मेलन को छोड़कर अन्य सभी वाइब्रेंट गुजरात सम्मेलनों में हिस्सा ले चुके हैं। उनका कहना है कि 'वे एक भारतीय विवाह समारोह की तरह होते हैं जहाँ आप दूलहे और उसके परिवार के साथ पाँच मिनट का असरदार समय बिताते हैं और उसके बाद का समय अपने दोस्तों के साथ गुजारते हैं। यह आयोजन ऐसे हैं, जहाँ आपको जाना ही चाहिए, क्योंकि यहाँ आप उन सभी लोगों से मिलते हैं जिनकी भारतीय कारोबार में एक हस्ती है।'

सन् 2009 की जनवरी के दूसरे हफ्ते में अहमदाबाद की साइंस सिटी में हुए वाइब्रेंट गुजरात सम्मेलन में मोदी एक रॉकस्टार बन गए। सितंबर

2008 में यानी सम्मेलन से कुछ ही महीने पहले अमेरिका के शीर्ष निवेश बैंक, लेहमन ब्रदर्स के दिवालिया होने से भारतीय व्यापार जगत् में निराशा का माहौल था। विश्व की वित्त प्रणाली ठप पड़ गई थी। निर्यात कम हो गया था, क्योंकि बैंक साख-पत्रों को मान्यता नहीं दे रहे थे। एक साल के अंदर सेंसेक्स 52 प्रतिशत गिर गया था। भारत सरकार ने अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहित करने के लिए कर रियायतों और अनुबंधों (जिस प्रकार बसों के लिए आदेश जारी होते हैं) के तौर पर एक महीने के भीतर दो किस्तों में 1,86,000 करोड़ रुपए या सकल देशी उत्पाद का 3.5 प्रतिशत दिया था। अक्तूबर 2008 में पश्चिम बंगाल के सिंगूर से नैनो कार कारखाने को बोरिया बिस्तर समेटकर बाहर भेज दिया गया था, तब टाटा संस के चेयरमैन रतन टाटा मोदी के पास आए और यह ऐलान किया कि उनका कारखाना अहमदाबाद के पास साणंद में लगेगा।

मोदी का उत्साह सातवें आसमान पर था। अपने नेतृत्व में उन्होंने लगातार दूसरी जीत दिलाई थी। उन्होंने निवेशकों को वे सुविधाएँ दीं, जो वे चाहते थे। सम्मेलन को लेकर प्रतिक्रिया इतनी अच्छी थी कि आवासीय ऋण देनेवाली एक बड़ी कंपनी के प्रमुख की यह टिप्पणी थी कि इस प्रकार का आयोजन मुंबई में करना संभव नहीं था।

अब तक साल में दो बार आयोजित किया जानेवाला 'वाइब्रेंट गुजरात' निवेश सम्मेलन छह बार हो चुका था। यह मंच अब सरकार और कारोबारियों का नहीं रह गया है। निवेशक अब इस मंच का इस्तेमाल आपस में जुड़ने के लिए करते हैं। अनेक कारोबारी समझौते बिना सरकार के शामिल हुए भी होते हैं। यह आयोजन विश्व के लिए खुली गुजरात की एक खिड़की के समान हो गया है। जापान और कनाडा जैसे देश अब आयोजन में साझीदार बन चुके हैं। चीन के विपरीत, जहाँ निवेश का अधिकांश हिस्सा विदेशों में बसे चीनियों का होता है, निवेश में अनिवासी गुजरातियों का हिस्सा दहाई के अंक को नहीं छू सका है।[16]

प्रत्येक आयोजन पिछले आयोजन से अधिक भव्य होता है। इसकी योजना पूरी गंभीरता से तैयार होती है, जिसमें प्रत्येक अधिकारी को विभिन्न

प्रकार की जिम्मेदारियाँ सौंपी जाती हैं। पिछले सम्मेलन में सरकार ने बताया कि निवेश के लगभग 18,000 आशय-पत्र मिले, जबकि 2011 में इनकी संख्या केवल 8,400 थी। दो हजार से अधिक विदेशी प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। सरकार ने निवेश से जुड़े लंबे-चौड़े दावे भी नहीं किए, क्योंकि उनकी जरूरत नहीं थी। सन् 2011 में मोदी ने दावा किया था कि $450 बिलियन के निवेश प्रस्ताव मिले हैं। यह भारत सरकार द्वारा सन् 2012 में समाप्त हो रही पूरे पाँच वर्षों की अवधि में बुनियादी ढाँचा के क्षेत्र में निवेश के लिए तय किए गए आधा खरब डॉलर के लगभग बराबर था। निवेश के अनेक बड़े वादे हकीकत में नहीं बदलते। पहले दो सम्मेलनों में आधिकारिक दावा किया गया कि निवेश का लक्ष्य लगभग 70 प्रतिशत हासिल कर लिया गया, लेकिन एक उद्योग चैंबर ने उसे एक चौथाई कहा तो और एक समाचार-पत्र ने एक तिहाई करार दिया।

इन लोगों की ही मानें तो एक-तिहाई वादों का भी कारखानों, मशीनों और रोजगार में बदलना बुरा नहीं है। गुजरात में निवेश को लेकर कभी कोई शंका नहीं रही है। सन् 1991-2011 की बीस वर्षों की अवधि में गुजरात में $7 बिलियन का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश हुआ। इस लिहाज से यह चौथे नंबर पर है, बीच में तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश हैं। महाराष्ट्र इन सबसे काफी आगे है, जहाँ $44.5 बिलियन विदेश निवेश हुआ और दिल्ली $25 बिलियन के साथ दूसरे नंबर पर है। मोदी के आलोचक कहते हैं कि निवेश के लिए गुजरात को सबसे पसंदीदा राज्य बतानेवाले नेता की पोल इन आँकड़ों से खुल जाती है। लेकिन एक समय था जब गुजरात इस सूची में काफी नीचे था। महत्त्वपूर्ण यह नहीं है कि इसका स्थान कहाँ है, बल्कि यह अहम है कि यहाँ तक गुजरात कैसे पहुँचा। मुंबई में सबसे अधिक विदेश निवेश इस कारण होता है, क्योंकि वह भारत की पारंपरिक वाणिज्यिक राजधानी है। राजनीतिक केंद्र के रूप में दिल्ली निवेशकों के आकर्षण का स्वाभाविक केंद्र है। चेन्नई औपनिवेशिक काल से ही एक औद्योगिक केंद्र रहा है। अहमदाबाद भारत के कपड़ा उद्योग का केंद्र था। बड़ौदा के राजा ने स्वतंत्रता से पहले जिस पॉलिटेक्निक की स्थापना की, उसने डाई और केमिकल उद्योग को जन्म दिया। किंतु राज्य के सामने

एक बड़ी मुश्किल भी है। यहाँ कंप्यूटर और वित्तीय सेवा के संस्थान आसानी से नहीं आते, ये ऐसे उद्योग हैं, जिनमें मोटा विदेशी निवेश होता है। यहाँ जीवन की उमंग भी नहीं है, क्योंकि यह राज्य शाकाहार का कट्टर समर्थक है और आधिकारिक रूप से यहाँ शराब पर पाबंदी है।

मुख्यमंत्री को मुख्य विक्रेता के रूप में प्रस्तुत करने का अनोखा फॉर्मूला मोदी का नहीं है। सन् 1991 के आर्थिक सुधारों ने राज्यों को निवेश आकर्षित करने में एक बड़ी भूमिका अदा करने का अवसर दिया। इसी दौरान केंद्र में कांग्रेस का शासन भी कमजोर पड़ा। आंध्र के चंद्रबाबू नायडू ने मुख्यमंत्री को राज्य के सीईओ की भूमिका में लानेवाला उदाहरण पेश किया—अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन और माइक्रोसॉफ्ट के संस्थापक बिल गेट्स से मुलाकात की, दावोस में भाषण दिया और सूचना प्रौद्योगिकी की ओर निवेशकों को बड़ी संख्या में आकर्षित कर राज्य की राजधानी का कायापलट 'साइबराबाद' के रूप में कर दिया।

अपनी पुस्तक 'प्लेन स्पीकिंग'[17] में नायडू ने बताया है कि कैसे वह गेट्स से अकेले में मिलना चाहते थे, लेकिन उन्हें एक समूह के साथ आमंत्रित किया गया। फिर भी जिस नायडू के समर्थन पर प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार टिकी थी, उन्होंने अमेरिकी राजदूत फ्रैंक वाइजनर को इस बात के लिए राजी कर लिया कि यह मुलाकात अकेले में ही हो। नायडू ने निवेश आकर्षित करने के लिए एक प्रभावशाली प्रस्तुति दी, जिसमें गेट्स के सामने यह आकर्षक प्रस्ताव रखा गया कि उन्हें भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान में साझीदार बनाया जाएगा, जो एपी प्रौद्योगिकी सेवा तथा एक सॉफ्टवेयर विकास केंद्र का रणनीतिक गठबंधन है और जिसमें भागीदारी के लिए चीन एवं इजरायल भी प्रतिस्पर्धा में शामिल हैं। नायडू ने निर्माण कंपनी लार्सन और ट्यूब्रो की मदद से केवल पंद्रह महीने में हाई-टेक सिटी तैयार कर लिया। नायडू ने लिखा है कि यह एक तख्तापलट जैसा था। इसने निवेश के लिए आंध्र प्रदेश के आकर्षण को कई गुना बढ़ा दिया और निवेशकों की सोच में इसका स्थान, जो सन् 1995 में बाईसवाँ था, उसे सन् 2000 में दूसरे नंबर पर ला दिया।

नायडू ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि एक मुख्यमंत्री और उसके अधिकारी शासकों के जैसा व्यवहार नहीं कर सकते, उन्हें हर हाल में सहयोगी और मदद करनेवाला बनना होगा। कोई भी राजनीतिज्ञ, जो कुछ कर दिखाना चाहता है, उसमें अहंकार नहीं होना चाहिए। उसे केंद्र सरकार से फंड के लिए मेल-जोल बढ़ाना होगा और उन्हें मनाने के लिए हरसंभव तरीके अपनाने होंगे। उसे उद्योग को आकर्षित करने होगा और विदेशी निवेश के लिए अपने राज्य को एक कुशल विक्रेता के समान प्रस्तुत करना होगा। उसे विदेशी निवेश आकर्षित करना होगा। उसे वित्त मुहैया करानेवाली एजेंसियों को भरोसा दिलाना होगा कि वह अपने वादे को पूरा करेगा।

दिवंगत मुरासोली मारन नायडू और मोदी की शैली के नेता थे। वे अपने चाचा, तमिलनाडु के पूर्व मुख्यमंत्री और द्रविड़ मुनेत्र कड़गम के नेता एम. करुणानिधि के समान नहीं थे, जो अपने बाद सत्ता में आई जे. जयललिता के समान ही खुद को सामंती शासक समझते हैं, नायडू ने इससे बचने की सलाह दी थी।

सन् 1996 में मारन केंद्रीय वाणिज्य मंत्री थे, उस दौरान केंद्र की नेशनल फ्रंट सरकार डीएमके के समर्थन से चल रही थी। मारन ने इस समर्थन को और सस्ती जमीन, करों में छूट और पर्याप्त बिजली का भरोसा देकर फोर्ड कार फैक्टरी को तमिलनाडु में लगवा लिया, जबकि महाराष्ट्र भी उसे लुभाने में जुटा था। उनके बेटे दयानिधि मारन, जो कांग्रेस के नेतृत्ववाली संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन में टेलीकॉम मंत्री थे, ने सोनी, सैमसंग, डेल और नोकिया से निवेश कराया। सन् 2007 में मारन ने बहुत बड़ा दावा किया, 'हमने चेन्नई में इलेक्ट्रॉनिक सामान बनानेवालों के लिए एक शानदार माहौल तैयार किया है।'

नायडू और मोदी की शैली काफी हद तक एक जैसी है, हालाँकि कुछ विशेष अंतर भी हैं। दोनों ही पद्धति और योजना में विश्वास करते हैं। नायडू ने पार्टी कैडर की ट्रेनिंग के लिए एक स्कूल की स्थापना की थी। यह उस ऑक्सफोर्ड शिक्षित किसान नेता के मॉडल पर आधारित था, जो उनके डॉक्टरेट की थीसिस के विषय भी थे—एन.जी. रंगा, जो उस स्वतंत्र पार्टी के

संस्थापक थे, जिसने समाजवाद और सहकारी खेती को खारिज कर दिया। मोदी के विजन डॉक्यूमेंट के समान ही नायडू ने प्रबंधन सलाहकार कंपनी मैकिन्से की मदद से बीस वर्षीय आर्थिक खाका तैयार किया। दोनों ने ही राज्य के उद्यमों में सुधार किए। मोदी ने राजनीतिक हस्तक्षेप से उनकी रक्षा की तो नायडू ने घाटे में चलनेवालों को बेच दिया। दोनों ही इ-गवर्नेंस में विश्वास करते हैं। मंदिरों के शहर तिरुपति का दौरा करने और वहाँ भगवान् वेंकटेश्वर के दर्शन के लिए कंप्यूटरीकृत व्यवस्था को देखने के बाद नायडू को इ-सेवा केंद्रों की स्थापना की प्रेरणा मिली। इन केंद्रों में उपयोगी सेवाओं के बिलों का भुगतान कर रसीद ली जा सकती है। गुजरात के जन-सेवा केंद्र भी इसी प्रकार के हैं, लेकिन उनकी प्रेरणा एक कलक्टर की इच्छा से जुड़ी है, जो जिला प्रशासन को और अधिक उत्तरदायी बनाना चाहते थे। वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग का व्यापक प्रयोग भी दोनों के बीच समानता स्थापित करता है।

मोदी सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के बीच भागीदारी के प्रबल समर्थक हैं। नायडू का AP आइडिया (बुनियादी ढाँचे के विकास को सक्षम बनाने का अधिनियम) सन् 2001 भी पीपीपी को बढ़ावा देने के उद्देश्य से ही लाया गया था।

नायडू ने जहाँ अपनी छवि एक सीईओ की बनाई, वहीं मोदी इससे बचते रहे। वे उसके जैसा ही व्यवहार करते होंगे और सन् 2003 में उन्होंने कारोबारियों के सामने गुजरात को कंपनी की तरह चलाया जानेवाला राज्य बताया, लेकिन उन्हें सीईओ कहलाना पसंद नहीं है। सन् 2008 में एक इंटरव्यू के दौरान जब मैंने उनसे पूछा कि क्या प्रदर्शन के लक्ष्य तय करना और उनके लिए प्रयास करने के जो निर्देश देते हैं, वे एक सीईओ के जैसा नहीं है, तब उनका कहना था—"चूँकि यह 21वीं सदी है, फिर भी मैं नहीं समझता कि मैं एक लीडर हूँ, मैं राज्य का एक सैनिक हूँ।"

नायडू की पार्टी में जहाँ भ्रष्टाचार की बीमारी फैल गई थी और वोटरों की नजर में उनकी छवि एक ठंडे, जनता दूर और कॉरपोरेट नेता की बन गई थी, और यही उनकी चौंकानेवाली हार के कारण भी थे, वहीं मोदी की सरकार को तुलनात्मक रूप से साफ-सुथरा माना जाता है। वे अपने परिवार

को दूर रखते हैं। अकेले होने के कारण मोदी कहते हैं कि मुझ पर अपने बच्चों के लिए दौलत इकट्ठा करने का दबाव नहीं है।

उन्होंने कृषिक्षेत्र की उपेक्षा नहीं की है। असल में उन्होंने इसमें निवेश किया है। नायडू का मानना है कि आय में तेजी से उछाल उद्योग और सेवाओं में विकास के बिना संभव नहीं है। नायडू ने बिजली के क्षेत्र में सुधार और उसकी कीमतों में इजाफा तब किया जब राज्य लंबे सूखे की मार झेल रहा था, इससे किसान नाराज हो गए। मोदी प्रतिदिन एक सीमित समय के लिए खेतों में पंप चलाने के लिए बिजली मुहैया कराते हैं। उन्होंने बिजली चोरी करनेवालों को जेल भेजने में संकोच नहीं किया; किंतु किसान खुश हैं, क्योंकि उनकी आमदनी बढ़ी है।

नायडू ने जिस प्रकार हैदराबाद में इंडियन स्कूल ऑफ बिजनेस (आईएसबी) की स्थापना करवाई, उसी प्रकार मोदी ने नैनो कार की फैक्टरी लगवाने के लिए प्रयास किए। एक कारोबारी अखबार ने जब खबर छापी कि आईएसबी को महाराष्ट्र सरकार के साथ कुछ अड़चनों का सामना करना पड़ रहा है, तब नायडू ने अनिल अंबानी को फोन लगाया, जो पाँच सदस्योंवाली समिति के प्रमुख थे, और उन्हें इतने उदार प्रस्ताव दिए कि समिति इनकार नहीं कर सकी।[18]

इसी प्रकार जब पश्चिम बंगाल में ममता बनर्जी की तृणमूल कांग्रेस और वामपंथी सरकार के बीच नैनो कार फैक्टरी के लिए भूमि अधिग्रहण को लेकर खींचतान चल रही थी, तब रतन टाटा ने अपने कर्मचारियों और प्रबंधकों की सुरक्षा के चलते उस फैक्टरी को बंद करने का फैसला किया, जिसका थोड़ा-बहुत ही निर्माण हुआ था।

मोदी को यह बात जैसे ही पता चली, उन्होंने टाटा को एक टेक्स्ट मैसेज भेजा, जिसमें लिखा था—'सुस्वागतम्'। टाटा ने जब इस प्रस्ताव पर विचार किया तो मोदी ने सारे दरवाजे खोल दिए। उन्होंने अहमदाबाद के पास साणंद में 1,100 एकड़ जमीन दी, जिसे किस्तों में अदा करना था। खबरों के अनुसार जमीन की कीमत 400 करोड़ रुपए थी। यही नहीं, सरकार ने जो पैकेज दिया, उसमें स्टाम्प ड्यूटी में छूट दी गई, वैट को स्थगित रखा

गया; सड़क, नाले और ऊर्जा जैसी बुनियादी सहूलियतें दी गईं तथा बहुत कम दर पर कर्ज जैसी बातें शामिल थीं। पूरा समझौता एक महीने से भी कम समय में तय हो गया।[19] गुजरात सरकार के अधिकारियों का कहना था कि वे टाटा मोटर्स के अधिकारियों से बातचीत करने से पहले, जनसंपर्क कंपनी वैष्णवी कम्युनिकेशन की प्रमुख नीरा राडिया से बातचीत कर रहे थे, जो ब्रोकर की भूमिका निभा रही थीं। साहू, जो उद्योग सचिव थे, का कहना है कि रियायतों को निवेश के तौर पर देखा जाना चाहिए। आनेवाले समय में उनसे कई गुना फायदा होगा। टाटा ने कहा था, 'यह घर लौटने जैसा है।' उन्होंने यह संकेत संभवत: इस कारण दिया था, क्योंकि जिस स्थान पर फैक्टरी लग रही थी, वहाँ वर्ष 1900 में पड़े अकाल के दौरान टाटा समूह के संस्थापक की ओर से मिले दान के पैसों से पशुओं का बाड़ा बनाया गया था।

टाटा ने कहा था, ''मुझे कहना ही होगा कि गुजरात के जैसा दूसरा राज्य नहीं है।'' मोदी को इसी प्रकार के प्रचार की दरकार थी। टाटा की ख्याति नैतिक व्यवहार करने और कर्मचारियों के हितों का ध्यान रखनेवाले समूह के रूप में है। शरमीले और कम बोलनेवाले रतन टाटा के प्रति लोगों के मन में जितना सम्मान है, उतना शायद ही किसी और भारतीय उद्योगपति को नसीब है।

''मैं समझता हूँ कि एक बुरा 'M' होता है तो दूसरा 'M' अच्छा है। हमें उस अच्छे की ओर जाना है।'' यह बात टाटा ने मीडिया के सवालों के जवाब में कही और उस समय मोदी उनके ठीक बगल में बैठे थे।[20]

निवेश माँगने से लेकर निवेश प्राप्त करने तक पिछले कुछ वर्षों में जबरदस्त बदलाव देखा गया है। साहू का कहना है कि बड़े निवेशक मुख्यमंत्री से मिलना चाहते हैं, क्योंकि वे उनके नजरिए को समझना चाहते हैं और भविष्य को लेकर उनमें एक भरोसे की आस होती है। कारोबार को बढ़ावा देना कूटनीति का भी एक महत्त्वपूर्ण पहलू बन गया है।

अक्तूबर 2012 में यू.के. के उच्चायुक्त जेम्स बेवन ने मोदी से मुलाकात की और इस प्रकार दस वर्षों का बहिष्कार समाप्त हुआ। 13 फरवरी, 2014 को अमेरिकी राजदूत नैंसी पॉवेल ने मोदी से गांधीनगर में आम चुनावों से

पहले भारत के प्रमुख राजनीतिक दलों के वरिष्ठ नेताओं तक अमेरिकी दूतावास की पहुँच बनाने के सिलसिले में मुलाकात की। ऐसा दूतावास की ओर से जारी प्रेस विज्ञप्ति में कहा गया था। इससे अमेरिका के रुख में नरमी के संकेत मिले, जिसने सन् 2005 में मोदी को वीजा देने से यह कहते हुए इनकार कर दिया था कि उनके देश का कानून ऐसे विदेशी अधिकारियों के प्रवेश की इजाजत नहीं देता, जो 'धार्मिक स्वतंत्रता के गंभीर हनन' के जिम्मेदार हैं।

एक राजनीतिक अछूत से लेकर सबसे अधिक मान्य और चर्चा में आनेवाले नेता के रूप में मोदी की यात्रा उल्लेखनीय है। विकास की राह ने उनकी स्वीकार्यता की राह को भी आसान बना दिया।

## संदर्भ—

1. सन् 2000-12 के बीच उत्तराखंड की विकास दर 11.68 प्रतिशत थी, गुजरात की 8.85 प्रतिशत और हरियाणा की 8.84 प्रतिशत। महाराष्ट्र का विकास 8.09 प्रतिशत और तमिलनाडु का 7.97 प्रतिशत की दर से हुआ, जो बिहार के 7.96 प्रतिशत से जरा सा ही ऊपर है। (*स्रोत :* योजना आयोग)
2. भारत में विकास की गति के क्षेत्रीय स्रोत, IIMA, मार्च 2009; 1993-94 के स्थिर मूल्यों पर गुजरात का विकास 1980-81 के बीच 4.16 प्रतिशत की दर से हुआ, जबकि भारत का विकास 5.29 प्रतिशत था। 1991-92 और 2003-04 के बीच, दोनों की विकास दर क्रमश: 6.61 और 5.91 प्रतिशत थी। http://www.iimahd.ernet.in/assets/snippets/workingpaperpdf/2009-03-06Dholakia. pdf.
3. हजीरा स्थित एस्सार स्टील, जो विजाग में बनाए गए और समुद्र के रास्ते आनेवाले स्टील पेलेट का इस्तेमाल करता है
4. अंजर : न्यू ग्लोबल पाइपलाइन हब, स्वामिनाथन अंकलेसरिया अय्यर, 'टाइम्स ऑफ इंडिया', 3 अगस्त, 2008, साथ ही मुंद्रा स्थित जिंदल सॉ पाइप्स के अधिकारियों से मेरी बातचीत
5. महेश्वर साहू उद्योग और खनन विभाग से अतिरिक्त मुख्य सचिव पद से 31 जनवरी, 2014 को रिटायर हुए। मेरी मुलाकात उनसे 4 फरवरी, 2014 को गांधीनगर में हुई
6. कमलेश कँवर, आईकॉन्स ऑफ गुजरात इंडस्ट्री : स्टोरीज ऑफ रेयर ग्रिट ऐंड

एंटरप्राइज, हारमनी पब्लिशर्स, 2000
7. द रैप ऑफ एंटरप्राइज, आउटलुक, 11 अक्तूबर, 2012
8. निकिता सूद, लिबरलाइजेशन, हिंदू नेशनलिज्म ऐंड द स्टेट, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2012
9. http://dipp.nic.in/English/Publications/SIA_Statistics/AnnualIssue/2012-13/chapter2.2.pdf.
10. http://www.sabrang.com/gujarat/statement/trindi.htm. फरवरी 2014 में एक्सेस किया गया
11. मोदी क्लैशेस विद गोदरेज, बजाज, 'इकोनॉमिक टाइम्स', 7 फरवरी, 2003, 18 मार्च, 2014 को एक्सेस किया गया।
12. CNBC-TV18 में 7 फरवरी, 2003 को फाइल की गई मेरी रिपोर्ट। टेप नं D 2140, VF EM 15:06:34.
13. CII ने मोदी को सॉरी बोला, 'टाइम्स ऑफ इंडिया', अहमदाबाद संस्करण, 7 मार्च, 2003; 18 मार्च, 2014 को एक्सेस किया गया।
14. राज्य के कारोबारियों ने CII को घेरा, 'टाइम्स ऑफ इंडिया', अहमदाबाद संस्करण, 20 फरवरी, 2003; 18 मार्च, 2014 को एक्सेस किया गया।
15. पंकज मुधोलकर से बातचीत पर आधारित
16. महेश्वर साहू, अप्रैल 2011
17. ए. चंद्रबाबू नायडू और सेवंती निनान, 'प्लेन स्पीकिंग', पेंग्विन, 2000
18. नायडू के आंध्र ने राज्य को पीछे छोड़ा; बिजनेस स्कूल प्रोजेक्ट पर किया कब्जा, 7 सितंबर, 1995, www.expressindia.com, 2014 को एक्सेस किया गया।
19. टाटा ने 3 सितंबर, 2008 को सिंगूर छोड़ने की घोषणा की, और 3 अक्तूबर को औपचारिक ऐलान किया कि नया स्थल साणंद ही होगा।
20. टाटा ने कहा, ''मैं समझता हूँ कि एक अच्छा 'M' और एक बुरा 'M' होता है।'' www.rediff.com/money. 8 अक्तूबर, 2008; 14 फरवरी, 2014 को एक्सेस किया गया।

□

3

# कृषि के लिए नए आकर्षण

***लीक से हटकर विचार—उनमें से कुछ एकदम आमूलचूल परिवर्तन करनेवाले, बीटी कॉटन जैसी नई तकनीक को अपनाने और उसे खेतों तक ले जाने के गैर-परंपरागत तरीकों ने किसानों में उद्यम की अलख जगा दी है। इससे गुजरात का विकास गरीबों के हित में हुआ है।***

पार्थी चौधरी एंटी-करप्शन ब्यूरो में तैनात एक पुलिस अधिकारी थे। उनसे मेरी मुलाकात अहमदाबाद के राजपथ क्लब में मई 2013 में हुई थी। उनकी पोस्टिंग तब मेहसाणा में थी। वे सुर्खियों में थे, लेकिन घोटालों का पर्दाफाश करने के लिए नहीं बल्कि रिकॉर्ड तोड़ने के लिए। तीन साल पहले मार्च 2010 में उनके आलू की फसल की पैदावार प्रति हेक्टेयर 87.188 टन हुई थी। आलू की किस्म को 'लेडी रोसेटा' कहा जाता था। यह नाम उसके हलके गुलाबी छिलके की वजह से रखा गया था। चौधरी का कहना था कि मिट्टी की जाँच और उसकी पैदावार का अंदाजा जिला कलक्टर आर.जे. पटेल की ओर से भेजी गई टीम के द्वारा लगाया गया था। उस दल में पास ही स्थित दाँतीवाड़ा यूनिवर्सिटी के कृषि मामलों के जानकार शामिल थे। मैकेन फूड के एक वरिष्ठ अधिकारी भी इस बात की पुष्टि करते हैं, जिसकी मेहसाणा में एक फैक्टरी है और जो अमेरिकी फास्ट फूड चेन मैकडॉनल्ड्स को आलू के उत्पादों की सप्लाई करती है। यह एक लिहाज से विश्व रिकॉर्ड है, लेकिन

संपूर्ण पैदावार के हिसाब से नहीं, बल्कि भारत की कम अवधि के आलू के सीजन और सूर्योदय के कम घंटों के लिहाज से।[1] भारत में सबसे अधिक औसत पैदावार गुजरात और पंजाब में होती है, जो प्रति हेक्टेयर 26 टन है।

चौधरी ने अपने नब्बे एकड़ के फॉर्म को कुदरत की निर्माणशाला बना दिया है। उनके लिए खेती एक औद्योगिक गतिविधि है, जिसे निरंतर चलनेवाली उन प्रक्रियाओं में बाँटा जा सकता है, जिनका योगदान उपज बढ़ानेवाले पहलुओं को उत्साहित करने और उसे कम करनेवाले पहलुओं को समाप्त करने में होता है। इस प्रकार यहाँ किसी भी फसल की सबसे अच्छी पैदावार प्राप्त करना ही लक्ष्य है। उनके कर्मचारी इस प्रयास में बराबर के साझीदार हैं, उन्हें आम तौर पर प्रचलित भागीदारी प्रथा के अनुसार उपज का एक हिस्सा मिलता है। उन्हें अपनी प्रबंधन शैली में ढालने के लिए चौधरी ने 100 अंकों का एक साँचा तैयार किया है। 70 से अधिक नंबर लाने पर बोनस मिलता है। 50 प्रतिशत से कम पर दंड लगता है। अब तक केवल विजेता ही सामने आए हैं। 'लेडी रोसेटा' एक ऐसी किस्म है, जिसमें ठोस हिस्सा अधिक होता है और शुगर कम होती है। चौधरी इसकी खेती राजकोट के बालाजी वेफर्स के लिए करते हैं। वह पेप्सीको को भी सप्लाई करते हैं। मैकडॉनल्ड्स की फ्रेंच फ्राई के लिए आलू की पसंदीदा किस्म गोल नहीं, लंबीवाली होती है, जिनके नाम इनोवेटर और केनेबेक हैं। हम दोनों की जब मुलाकात हुई थी, तब चौधरी के पास कोल्ड स्टोरेज में 1,400 टन आलू पड़ा था। उस साल उनकी पैदावार प्रति हेक्टेयर 67 टन की थी। उस समय की 14 रुपए प्रति किलो की कीमत के हिसाब से स्टॉक की कीमत 1.96 करोड़ थी। यह महज 120 दिन में केवल 52 लाख रुपए की लागत पर 300 प्रतिशत की अच्छी-खासी कमाई थी।

बनासकाँठा में आलू की खेती अंग्रेजों के जमाने से ही होती चली आई है, लेकिन किसानों को किसी ने उनकी खेती वैज्ञानिक तरीके से सिखाई है, तो वह है कनाडा का मैक्केन फूड्स, जो मैकडॉनल्ड्स के लिए दुनिया भर में सप्लायर की भूमिका निभाता है, और अपने ही ब्रांड के वेजेस, फ्राई और टिक्की बेचता है। मैक्केन भारत में मैकडॉनल्ड्स के आने के कुछ ही दिनों बाद सन् 1998 में आया। इसने पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में आलू की

खेती के लिए काम किया, लेकिन पाया कि वहाँ के ठंडे मौसम के कारण आलू का वजन नहीं बढ़ पाता, जबकि उसमें शुगर का स्तर (जो फ्राई को भुने हुए शक्कर के जैसा गंदा भूरा रंग देता है) बढ़ जाता है। पश्चिम बंगाल में भी गुजरात के जैसा ही मौसम है, लेकिन वहाँ जोत का आकार इतना छोटा है कि कॉण्ट्रैक्ट खेती संभव नहीं है, इस कारण उसने वहाँ भी आलू की खेती का विचार छोड़ दिया।

मैक्केन ने पाया कि गुजरात में खेतों में पानी की बाढ़ लाकर सिंचाई करने का तरीका अपनाया जा रहा था। फसल का सीजन समाप्त होने तक खेतों में बहाया गया पानी 750 मिमी के कॉलम को छू लेता था। आलू को पानी में डुबोए जाने की नहीं, केवल नमी की आवश्यकता होती है। बस इतना पानी उसमें दिया जाना चाहिए, जितना मिट्टी से वाष्प बनकर उड़ जाए और पत्तों में आवश्यक क्रिया का काम पूरा हो सके। रेतीली मिट्टी में पोषक तत्त्व डालने के लिए किसान नाइट्रोजन खाद का इस्तेमाल जबरदस्त तरीके से करते थे। बहुत अधिक नमी के कारण पौधों पर कीड़ों और फंगस का हमला होता था। मैक्केन ने किसानों को स्प्रिंकलर का प्रयोग करने पर राजी किया, जिससे पानी और नाइट्रोजन का इस्तेमाल एक-तिहाई तक कम हो गया। सरकार की मदद मिलने से अब उनका प्रयोग बड़े पैमाने पर देखा जा सकता है, साथ ही खेतों को आठ घंटे की निश्चित बिजली सप्लाई भी की जा रही है। दोपहर बाद जब बनासकाँठा के खेतों पर एक धुंध की परत छा जाती है और उनके बीच इंद्रधनुषी रंग दिखता है तो पूरा दृश्य अद्भुत नजर आता है। स्प्रिंकलर का प्रयोग कितनी देर तक होना चाहिए, यह कंपनी के दो मौसम केंद्रों द्वारा उपलब्ध कराए गए आँकड़ों के हिसाब से तय किया जाता है। एक मौसम केंद्र माउंट आबू के रास्ते में पड़ता है और दूसरा हिम्मतनगर में है, जो बनासकाँठा के पड़ोस का जिला है। फोन और मैसेज भेजकर खेतों में तैनात स्टाफ किसानों को सूचना भेजने का काम करते हैं। अन्य उपायों ने रोपण में लगनेवाले समय तथा कोल्ड स्टोरेज में खर्च होनेवाली ऊर्जा की बचत की है।

मैक्केन ने कॉण्ट्रैक्ट खेती की शुरुआत सन् 2006 में बडगाम की 16 एकड़ जमीन पर चार किसानों के साथ मिलकर की थी। मैं जब सात वर्षों

बाद वहाँ गया, तब तक ऐसे 900 किसान कंपनी के लिए 4,500 एकड़ में खेती का काम कर रहे थे। बनासकाँठा के खेत काफी बड़े हैं। आधे से अधिक किसान दस एकड़ से अधिक जमीन के मालिक हैं। लेकिन बड़ा हो या छोटा, सभी को एक सप्लायर बनने का न्योता दिया जाता है। ऐसा कहना है गोपाल शर्मा का, जो खरीद अधिकारी हैं और उन किसानों को भी एक कृषि वैज्ञानिक जैसी सलाह देते हैं, जो अनुबंध में शामिल नहीं हैं। कंपनी के कारखाने की क्षमता प्रति वर्ष 50,000 टन आलू की है, जिसमें से अधिकांश आस-पड़ोस के इलाके से ही मिल जाता है। नवंबर में जब आलू के सीजन की शुरुआत होती है, तब किसान एक वचन देते हैं कि वे कंपनी से मिलनेवाले बीज के बदले मार्च के तीसरे सप्ताह तक दस गुना आलू उगाकर देंगे। मार्च के तीसरे सप्ताह के बाद खरीद बंद कर दी जाती है। मात्रा के मापदंड स्पष्ट कर दिए जाते हैं और प्रत्येक किस्म के आलू की खेती के तौर-तरीकों से जुड़ी जानकारी गुजराती में उपलब्ध करा दी जाती है। किसानों को सलाह दी जाती है कि वे केमिकल के छिड़काव के समय पर्याप्त सावधानी बरतें। उन्हें बताया जाता है कि वे इस बात का ध्यान रखें कि आलू में नाले का पानी न जाए। फोन पर कृषि वैज्ञानिकों की सलाह भी उपलब्ध रहती है। किसानों को अंकुरित बीज आधे दाम पर मिलते हैं, बाकी की कीमत बिक्री मूल्य से कम करके ली जाती है। यदि किसान वादा नहीं निभा पाता तो पोस्ट-डेटेड चेक भुना लिये जाते हैं।

किसान मैक्केन के साथ आलू उगाने की शुरुआत करते हैं और पार्थी चौधरी के समान ही कुछ वर्षों बाद उसे छोड़कर चले जाते हैं। एक बार उन्हें इस कला में महारत हासिल हो जाती है, फिर दूसरे खरीददारों के लिए भी आलू उपजाने लगते हैं। मैक्केन की अपेक्षा पेप्सीको और बालाजी वेफर्स बिचौलियों के जरिए खरीददारी करते हैं, जिन्हें बीजों की सप्लाई और इकट्ठा किए गए आलू के बदले एक निश्चित रकम दी जाती है, जो सीजन की शुरुआत में तय होती है। यदि अनुबंध की शर्तों के मुताबिक आलू पूरा नहीं पड़ता, तब यही लोग बाजार में कहीं से भी आलू की खरीद कर उसकी कमी पूरी कर देते हैं।

कई कारकों ने एक साथ किसानों को अच्छे दाम और अपने जीवन को खुशहाल बनाने में अहम भूमिका निभाई है। इनमें ऐसा कानून शामिल है, जो किसानों को मंडियों की बजाय सीधे कंपनियों को बेचने की छूट देता है, खरीददारों को चुनने का विकल्प, अनेक कोल्ड स्टोरेज तथा सब्सिडी और नियमित बिजली आपूर्ति, अच्छी ग्रामीण सड़कों का जाल एवं इंटरनेट तथा मोबाइल फोन पर सूचना की उपलब्धता।

देश भर में कृषि-जगत् की व्यथाएँ, जैसे लालची भारतीय और विदेशी पूँजीवादियों द्वारा किसानों का भारी शोषण, वैश्वीकरण के कारण खेती पर संकट और देश भर में किसानों द्वारा खुदकुशी की घटनाएँ, ये सब गुजरात के आलू के फार्मों में आकर समाप्त हो जाती हैं। मंजीभाई चौधरी जैसे छोटे किसान अब पूरी तरह कारोबारी हो गए हैं। वे खुद गेहूँ उपजाने की बजाय उसे बाजार से खरीदते हैं। डेढ़ एकड़ जमीन पर आलू की खेती की शुरुआत करने के बाद अब वे तेरह एकड़ जमीन के मालिक बन गए हैं। उनके पड़ोसी मेघराजभाई चौधरी को आलू की खेती मजेदार लगती है, इस कारण ही वे अपनी पैंतीस एकड़ में से तीस एकड़ जमीन पर केवल आलू उपजाते हैं। समृद्धि की वजह से उन्होंने अपनी सनक को साकार करते हुए तीस फीट ऊँचे गोदाम पर एक फॉर्महाउस बनाया, जहाँ से वे अपने खेतों पर नजर रखते हैं।

कांतिभाई बेचारभाई पटेल जैसे किसान अधिक-से-अधिक आमदनी के लिए दो-दो कंपनियों के लिए आलू उगाते हैं : एक निश्चित आय के लिए और दूसरा उस समय के लिए, जब कीमतों में उछाल आता है और मोटा मुनाफा कमाया जा सकता है। रबड़ और प्लास्टिक तकनीक में पीजी की शिक्षा प्राप्त कर चुके पटेल का मानना है कि कृषि तकनीक को बढ़ावा देने में बड़ी कंपनियों की भूमिका सरकार से बेहतर है, क्योंकि कंपनियाँ सीधे तौर पर खेती से जुड़ी होती हैं। उनकी तरह वे भी पैदावार को बढ़ाने में दिलचस्पी लेती हैं। उनकी सलाह से ही उनकी पैदावार एक-तिहाई बढ़कर प्रति हेक्टेयर पैंतालीस टन तक पहुँच गई है। इस कारण ही वे निजीकरण और खुदरा व्यापार में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के पक्षधर हो गए हैं।

खेती में मुनाफा मिलने के कारण युवाओं का रुझान भी इसकी ओर बढ़ा

है। निरमा इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी से केमिकल इंजीनियरिंग की पढ़ाई करनेवाले भावेश सैनी नौकरी करने की बजाय खेती करना पसंद करते हैं। मूलत: हरियाणा के रहनेवाले सैनी को लगता है कि अपने परिवार की साठ एकड़ जमीन पर खेती करना सर्जनात्मक कार्य है। वे वाणिज्यिक तौर पर एक ही कंपनी से बँधे हैं। उनका अनुबंध मैक्केन के साथ है, जिससे कि वे उत्पादन पर ध्यान दे सकें, हालाँकि उन्हें कंपनी का बीज महँगा लगता है। सैनी को तब तक सब्सिडी की आवश्यकता महसूस नहीं होती जब तक कि सरकार पानी का स्तर बनाए रखेगी।

दानिया गाँव के सुमित जोशी भी ऐसे ही नौजवान हैं, जो खेती करनेवाले परिवार से हैं। दो साल पहले खेती के लिए आवश्यक सामग्री बेचने का कारोबार बंद कर जोशी ने व्यवस्थित खेती की शुरुआत की। उनके पास पाँच एकड़ से भी कम जमीन है, लेकिन अपने दर्जन भर दोस्तों की मदद से उनकी पहुँच बाजार तक है और खरीदारों से वे अपने उत्पाद पर मोल-भाव कर अच्छा-खासा मुनाफा कमा लेते हैं। इस कारण उन्हें सहकारी समितियों या किसान उत्पादक कंपनियों की भी आवश्यकता महसूस नहीं होती है।

अशोक गुलाटी, जो एक अर्थशास्त्री हैं और पहले केंद्र सरकार में उस आयोग के अध्यक्ष रह चुके हैं, जो कृषि समर्थन मूल्य निर्धारित करता है, उनका कहना है कि गरीबी कम करने में उद्योग या सेवा क्षेत्र की तुलना में कृषि की भूमिका अधिक असरदार है। चीन में सन् 1978 में 33 प्रतिशत गरीबी थी, जो सन् 1984 में कम होकर 15 प्रतिशत पर आ गई। यह सुधारों का शुरुआती दौर था, जब कृषि का विकास प्रतिवर्ष 7.1 प्रतिशत की दर से हो रहा था। भारत में सन् 1960 से 1980 के बीच हरित क्रांति के दौरान भी गरीबी के स्तर में तेजी से गिरावट दर्ज की गई थी।[2]

यूपीए के दस वर्षों के शासन में 140 मिलियन लोगों के गरीबी से बाहर निकलने का एक बड़ा कारण प्रति श्रमिक कृषि सकल घरेलू उत्पाद में आई 51 फीसदी की बढ़ोतरी थी, जिससे खेती में शामिल लोगों की संख्या में कमी आई।[3] इसमें निजी निवेश की भी एक अहम भूमिका है।

गुजरात में किसानों और कंपनियों के बीच जिस प्रकार का गठबंधन है

और जिसमें सरकार एक सहायक की भूमिका निभाती है, उसने कई प्रकार से ग्रामीण समृद्धि को बढ़ाया है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार अमूल कोऑपरेटिव मॉडल ने किया है। गुलाटी के अनुसार—किसी मॉडल की सफलता इस पर निर्भर है कि वह CISS योग्य है या नहीं। बनासकाँठा में होनेवाली आलू की खेती इस कसौटी पर खरी उतरती है। यह प्रतिस्पर्धात्मक है, उच्च पैदावार के कारण कंपनियों द्वारा प्रति यूनिट कम कीमत की माँग के बावजूद किसानों की प्रति एकड़ आमदनी अच्छी होती है। यह समावेशी है, क्योंकि छोटे किसानों को इससे बाहर नहीं रखा जाता है। जहाँ जोत का आकार ऐसा है कि मशीन का इस्तेमाल नहीं हो सकता, वहाँ सरकार पट्टा के नियमों को आसान बनाकर सहायता कर सकती है।

यह मॉडल संभव है, क्योंकि फ्राई और वेफर्स की बढ़ती खपत के कारण आलू की माँग बढ़ती जाती है। साथ ही इसे लागू करना भी आसान है, क्योंकि पानी की बचत की तकनीक का इस्तेमाल होता है, कोल्ड स्टोरेज शून्य डिग्री की बजाय आठ डिग्री का तापमान निर्धारित कर ऊर्जा की बचत करते हैं तथा कंपनियों से मिलनेवाली वैज्ञानिक सलाह के अनुसार पौधों को वही पोषक तत्त्व देते हैं, जिनकी उन्हें आवश्यकता है। इससे सीमित लागत में अच्छी पैदावार सुनिश्चित की जाती है।

भारत की पहली हरित क्रांति का लक्ष्य था—'बीज से अनाज'। दूसरी का 'मिट्टी से बाजार'। कृषि अब केवल गुजारे का माध्यम नहीं रह सकती है। इसे कारोबार की तरह चलाना होगा, जिसमें किसान वही उपजाएँगे, जिनकी माँग ग्राहक करेंगे और उनका सीधा संपर्क खुदरा व्यापारियों से होगा। पूरा जोर पैदावार पर देना होगा, जिससे कि किसानों को प्रति एकड़ अधिक आमदनी हो, जबकि वही उत्पाद ग्राहकों के लिए प्रति किलोग्राम कम कीमत पर उपलब्ध हो। इसका मतलब हुआ—उच्च तकनीकवाले बीजों का रोपण। खाद, पानी और कीटनाशकों का उचित मात्रा में प्रयोग। कठिन परिश्रम और मजदूरी की लागत कम करने के लिए मशीनों का प्रयोग और जोखिम से बचानेवाले उपाय, जैसे फसल बीमा को सुनिश्चित करना।

गुजरात उन चुनिंदा राज्यों में शामिल है, जिसने कारोबारियों, प्रसंस्करण

करनेवालों और संगठित खुदरा व्यापारियों को यह अनुमति दी (सन् 2005 में), कि वे आढ़तियों या कमीशन लेनेवाले बिचौलियों की बजाय सीधे किसानों से कृषि उत्पाद की खरीददारी कर सकें। इसने मौके पर ही आदान-प्रदान केंद्रों की इजाजत दी है।

कंपनियाँ चाहें तो फसल को एक साल पहले ही खरीद सकती हैं। यह प्रावधान भी है कि यदि फसल कटाई के समय कीमतें बढ़ती हैं तो अतिरिक्त कीमत चुकानी होगी। इसकी वजह से कॉण्ट्रैक्ट खेती के क्षेत्र में विस्तार हुआ है। हालाँकि केंद्र सरकार द्वारा सन् 2012 में बीजेपी की राष्ट्रीय नीति को बदलते हुए (जो पहले की विचारधारा में एक यूटर्न है) खुदरा व्यापार में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की इजाजत दिए जाने के बावजूद गुजरात सरकार ने संगठित विदेश खुदरा व्यापारियों को राज्य में स्टोर खोलने की अनुमति नहीं दी।

विकास की कहानी में गुजरात की कृषि का योगदान आश्चर्यचकित करनेवाला है। सन् 2011-12 तक के बारह वर्षों में इसका विकास प्रतिवर्ष 8 प्रतिशत की दर से हुआ है, जबकि राष्ट्रीय दर केवल 3.1 प्रतिशत है। यह पड़ोसी राज्य राजस्थान के बराबर है, लेकिन पड़ोसी राज्य महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश की तुलना में काफी तेज है। बिहार और छत्तीसगढ़ का कृषि विकास दो अंकों में है, हालाँकि गुजरात में पानी की कमी है और वर्षा भी अलग-अलग इलाकों में असमान रूप से होती है।[4] बादल दक्षिण के जिलों पर जितने मेहरबान हैं, उसके मुकाबले उत्तर में स्थित कच्छ में उनकी दरियादिली एक चौथाई भी नहीं है। बीते समय में कई बार सूखे का सामना करना पड़ा, जिसके चलते राज्य की विकास दर में भारी उथल-पुथल देखी गई। अलग राज्य बनने के बाद चालीस वर्षों में से सत्रह वर्ष ऐसे रहे, जब विकास की दर ऋणात्मक हो गई।

आखिर यह कैसे हुआ? इसमें कई अप्रत्याशित परिस्थितियों का योगदान है, जैसे एक बाँध पर निर्माण को कोर्ट की मंजूरी; वाणिज्यिक तौर पर आनुवंशिक रूप से संशोधित कपास के बीजों को स्वीकृति, सड़कों, बिजली और नहर से सिंचाई में सार्वजनिक निवेश; चेक डैम और माइक्रो-सिंचाई के जरिए पानी के संरक्षण में लोगों की भागीदारी तथा बाजारोन्मुखी नीतियों के साथ-साथ

गुजरात के किसानों की जन्मजात उद्यमिता के गुण ने इस सुखद स्थिति को संभव बनाया है।

इनमें से कुछ कार्य पहले से ही प्रगति पर थे, जब मोदी ने सत्ता सँभाली, बाकी में उनकी पहल का बड़ा योगदान है। सिंचाई निश्चित रूप से एक अहम कारक है। नर्मदा बाँध ने बाजी पलट देनेवाली भूमिका निभाई है। यह परियोजना कई वर्षों तक रुकी पड़ी थी, क्योंकि आंदोलनकारी पहले विस्थापित आदिवासियों के पुनर्वास और बाँध की ऊँचाई सीमित रखने की माँग कर रहे थे, जिससे कि कम-से-कम लोग डूब क्षेत्र में आएँ। लेकिन सन् 1980 के दशक में भयंकर सूखा पड़ा, जिसके बाद डैम के पक्ष में एक आंदोलन छिड़ गया। मुख्यमंत्री चिमनभाई पटेल ने इस मौके का फायदा उठाया और केंद्र को पर्यावरण संबंधी मंजूरी देने पर राजी कर लिया। सन् 1999 में यानी मोदी के मुख्यमंत्री बनने से दो वर्ष पहले सुप्रीम कोर्ट ने इस शर्त पर काम शुरू करने की अनुमति दी कि परियोजना से विस्थापित लोगों का ध्यान रखा जाएगा। यह बाँध अपने तय लक्ष्य से सोलह मीटर कम ऊँचा है। इसका निर्माण पूरी ऊँचाई तक किया जा सकता है, बशर्ते बाँध पर नियंत्रण रखनेवाले अधिकारी यह आश्वसान दें कि पड़ोस के मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में विस्थापित होनेवाले लोगों का पुनर्वास उचित स्थल पर कर दिया जाएगा।[5] यदि ऐसा होता है तो सौराष्ट्र के प्यासे किसानों को इतना पानी मिल जाएगा कि वे एक की बजाय दो फसल उगाने लगेंगे। इस बाँध से उन पंद्रह जिलों के 3,100 गाँवों तक पानी पहुँचेगा, जिनमें से तीन चौथाई सूखाग्रस्त हैं। इसका अधिकांश पानी अब भी समुद्र में बह जाता है। मुख्य बाँध का काम पूरा हो चुका है, शाखाओं में भी काफी हद तक काम हो गया है। लेकिन खेतों तक पानी ले जाने के लिए एक तिहाई नहर नहीं बन पाई हैं। पिछले दशक में काम कछुए की चाल से चला, क्योंकि जमीन के अधिग्रहण में समस्या आ रही थी।[6] गुजरात में नर्मदा 1.8 मिलियन हेक्टेयर जमीन की सिंचाई कर सकती है, लेकिन इसका पूरा-पूरा फायदा केवल बीस प्रतिशत क्षेत्र को ही मिल पा रहा है।[7]

तुषार शाह एक अर्थशास्त्री और पानी के मामलों के जानकार हैं, उनका कहना है कि किसानों को खेतों तक पानी ले जाने के लिए भूमिगत पाइप

बिछाने की इजाजत दी जानी चाहिए। उनके सर्वे के अनुसार, नहर के इलाकों में पंपों की खरीद में भारी बढ़ोतरी हुई है, जबकि पानी की चोरी को अपराध करार देनेवाला एक कानून भी बना दिया गया है। उनकी सलाह है—'इसका विरोध करने की बजाय इसके साथ चलते रहो।'

इसके अलावा दो दशकों से वर्षा के जल के संरक्षित करने की जबरदस्त मुहिम चलाई जा रही है। यह आंदोलन सन् 1985-1988 के बीच तीन वर्षों तक पड़े भयंकर सूखे के बाद तब शुरू किया गया, जब राजकोट तक ट्रेन से पानी लाना पड़ता था। इस मुहिम में सामाजिक कार्यकर्ताओं ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। एक हीरा व्यापारी ने सौराष्ट्र में एक ट्रस्ट बनाया और वर्षा जल संरक्षण के प्रति जागरूकता पैदा करने के लिए सन् 1999 में 325 किलोमीटर लंबी पदयात्रा की। इसके बाद मोदी से पहले की सरकारों के साथ-साथ मोदी की सरकार ने भी गैर- सरकारी संगठनों और समुदायों को प्रोत्साहित किया। उन्होंने वित्तीय अनुदान और तकनीकी मदद दी, जैसे चेक डैम स्थापित करने के लिए सही जगह के चुनाव के लिए उपग्रहीय नक्शे दिए और विभिन्न प्रकार के डिजाइन मुहैया कराए, जिनमें से आवश्यकतानुसार चयन किया जा सकता था। पूरे राज्य में लगभग 1.5 लाख चेक डैम बनाए गए हैं।[8]

न केवल पानी की उपलब्धता बढ़ी है बल्कि ड्रिप और स्प्रिंकलर से सिंचाई के कारण गुजरात के किसानों को हर बूँद से अधिक-से-अधिक फसल उगाने की क्षमता प्राप्त हुई है। गुजरात ग्रीन रेवॉल्यूशन कंपनी (GGRC) जैसा यादें ताजा करनेवाला नाम देकर पानी की बचत करनेवाली इन तकनीकों को बढ़ावा दिया गया है। हालाँकि यह कोई पहला प्रयोग नहीं है। बहुत पहले 1991 में, केंद्र सरकार ने एक योजना शुरू की थी। इसे अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार ने जबरदस्त बढ़ावा दिया, जिसमें आंध्र प्रदेश के प्रगतिशील मुख्यमंत्री चंद्रबाबू नायडू का भी योगदान कम नहीं था, जो सरकार के सहयोगी थे और जिन्होंने इजरायल का दौरा करने के बाद इस योजना को अपने राज्य में लागू किया। किसानों को मनाने के लिए सब्सिडी भी दी गई, लेकिन बात आगे नहीं बढ़ सकी, केवल महाराष्ट्र में यह चलता रहा। गलती फायदे बताने में नहीं हुई बल्कि उपकरण बेचने में हुई। किसान सब्सिडी लेने के बाद उपकरण

को खराब कर देते थे। दरअसल अल्युमिनियम से बना होने के कारण बेचने पर इसकी अच्छी कीमत मिल जाती थी।[9]

इजरायल का दौरा करने के बाद मोदी भी प्रभावित हुए, लेकिन उन्होंने माइक्रो सिंचाई की योजना को एक सरकारी विभाग की बजाय राज्य के स्वामित्ववाली कंपनी के जरिए लागू करने की योजना बनाई। किसानों को अपनी सब्सिडी के लिए फसल का हिस्सा कंपनी के साथ बाँटना पड़ता था। उपकरण की डिजाइन और गुणवत्ता सरकार द्वारा प्रमाणित की जाती थी। उसे फसल के अनुसार बनाया जाता है। सप्लाई करनेवालों की एक बड़ी संख्या होने के कारण कीमतों को कम रखने का दबाव भी होता है। भ्रष्टाचार पर लगाम लागने के लिए सरकार अपना हिस्सा इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से देती है। किसी प्रकार का नकदी लेन-देन नहीं होता है। तीसरे पक्ष के ऑडिटर खेतों में जाकर देखते हैं कि उपकरण वास्तव में लगाए गए हैं या नहीं और किसान संतुष्ट हैं या नहीं। उपकरण के आपूर्तिकर्ताओं के लिए एक कृषि वैज्ञानिक की नियुक्ति अनिवार्य है, जिससे कि वे किसानों को सर्वोत्तम लाभ उठाने के विषय में जानकारी दे सकें। इसका लक्ष्य अधिक-से-अधिक पैदावार प्राप्त करना है। लक्ष्यों की देखरेख स्वयं मुख्यमंत्री द्वारा की जाती है।

"मैं जब किसानों को फलता-फूलता देखता हूँ, तब मुझे कुछ और भी करने की प्रेरणा मिलती है।" ऐसा कहना है श्यामल टिकादार का, जो कभी GGRC के प्रमुख थे।

भूमिगत जल की उपलब्धता के अनुसार किसानों को खेतों में पंप चलाने के लिए तय मात्रा में बिजली मिलती है। सन् 1980 के दशक में गुजरात के किसानों को प्रतिदिन बीस घंटे बिजली मिलती थी। उस दौरान एक समान दर लागू करने के कारण राज्य की इस उपयोगी सुविधा की हालत खस्ता हो गई। सन् 1999-2000 के दौरान इसका घाटा 2,200 करोड़ रुपए था। ग्रामीण इलाकों में बिजली की सप्लाई घटकर प्रतिदिन बारह घंटे हो गई। इसमें भी निरंतरता नहीं थी। बार-बार बिजली आती और जाती रहती थी और वोल्टेज कम रहता था, जिससे पंप खराब हो जाते थे। इस समस्या के लिए किसानों ने कैपेसिटर का इस्तेमाल शुरू कर दिया, जिसे 'टोटा' कहा जाता था। इससे बिजली सप्लाई

पर दबाव और बढ़ गया। मोदी से पहले की सरकार ने राज्य की विद्युत् व्यवस्था को दुरुस्त करने का प्रयास नहीं किया। विदेश से कर्ज लेने के लिए अनुबंध तैयार हो गया था, लेकिन किसानों द्वारा मीटर लगाए जाने के विरोध से समस्या खड़ी हो गई।

मोदी ने ग्रामीण ग्रिड को दो भागों में बाँटकर मास्टरस्ट्रोक लगा दिया। उनमें से एक सब्सिडीवाला था, जो केवल पंप के लिए था और दूसरा घरों और संस्थानों के लिए। इस काम में लगभग 1200 करोड़ रुपए खर्च हुए। पंप ग्रिड में प्रतिदिन पीक आवर को छोड़कर बाकी समय में आठ घंटे की निर्बाध बिजली सप्लाई की जाती है, जिसमें हर दूसरे हफ्ते रात में बिजली दी जाती है। पंप की क्षमता के अनुसार एक समान कीमत वसूली जाती थी। मीटर लगाने और वास्तविक इस्तेमाल के अनुसार पैसे वसूलने का इंतजाम करना संभव नहीं था, बल्कि इसका जबरदस्त विरोध भी होता, क्योंकि किसानों का मानना है कि मीटर-रीडर भ्रष्ट होते हैं। बदली हुई व्यवस्था का यह कहकर प्रचार किया गया कि इससे किसानों की मदद की जा रही है, न कि उन्हें परेशान किया जा रहा है। महिलाओं और स्कूली बच्चों ने दोहरी बिजली की व्यवस्था का समर्थन किया, क्योंकि इससे उन्हें घरों में चौबीसों घंटे बिजली मिलनेवाली थी।

इस प्रयोग को सन् 2003 में आठ जिलों में लागू किया गया था, जिसमें गरीब क्षेत्र डाँग और समृद्ध आणंद भी शामिल था, जहाँ जलस्तर ऊँचा है। अगले साल नवंबर तक सारे गाँवों को इसके तहत लाया गया। आणंद स्थित अंतरराष्ट्रीय जल प्रबंधन संस्थान (IWMI) का दावा है कि यह अवधारणा उसकी है। इसका कहना है कि इसने 2001-02 के दौरान राज्य विद्युत् सुविधा के अधिकारियों, ऊर्जा मंत्री और विद्युत् नियामक के सामने कई प्रेजेंटेशन दिए थे।[10]

किंतु मोदी ने नीलांजन मुखोपाध्याय को बताया, ''ग्रामीण ग्रिड को बाँटने का अधिकार उनके मन में अचानक ही आया। मैं समझता हूँ कि यह ईश्वर द्वारा दिया गया तोहफा है...जैसे नहर के ऊपर सोलर पैनल (जिसे सन् 2012 में लॉञ्च किया गया)...यहाँ तक कि 'ज्योतिग्राम योजना' भी, जिसके तहत

कृषि फीडर और घरेलू फीडर को अलग-अलग करने के निर्देश दिए गए। मैं कोई तकनीकी जानकार नहीं हूँ और मुझे किसी ने भी यह सुझाव नहीं दिया, यह बस मेरे दिमाग में आ गया कि हम ऐसा क्यों नहीं कर सकते हैं। अगर आप फाइल पर नजर डालें तो उस फाइल पर कुछ और नहीं बल्कि सारे विभागों की ओर से प्रस्ताव को खारिज किए जाने की टिप्पणियाँ थीं। सब मिलाकर उसका वजन दस किलो हो गया (हँसते हैं)। कोई भी मुझसे सहमत होने को तैयार नहीं था···और अब हमें इसके लिए पूरे देश से शाबाशी मिल रही है।''[11]

आई.पी. गौतम, जो राजकोट के कलक्टर थे और राजकोट वह विधानसभा क्षेत्र है, जहाँ से फरवरी 2002 में मोदी चुनाव जीते थे, ने ज्योतिग्राम योजना लॉञ्च की, लेकिन उन्हें IWMI के प्रस्ताव के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। उनका कहना है कि यह मूलत: मोदी का आइडिया था। IWMI के तुषार शाह कहते हैं कि उन्होंने मोदी के सामने कोई प्रजेंटेशन नहीं दिया। ऐसा संभव है कि मोदी ने सतही तौर पर किसी ऐसे अधिकारी से इसके बारे में सुना हो, जिसे IWMI ने ब्रीफ किया हो और मोदी भूल गए हों।

शाह का यह भी कहना है कि किसी अनिवासी भारतीय, जिसने आणंद में एक आवासीय कॉलोनी बसाई थी, ने किसानों से कहा था कि वे अपने खर्च पर पंपों के लिए फीडर लाइन लगवा लें, जिससे कि एक ही लाइन से बिजली लेने के चलते घरों को कम वॉल्टेज की समस्या से जूझना नहीं पड़ेगा। हो सकता है कि मोदी ने उस चर्चा से भी विचार बनाया हो। यह भी काफी हद तक संभव है कि मोदी और IWMI और एक ही साथ एक ही हल पर पहुँचे हों। नए विचारों की पहल और वैज्ञानिक आविष्कारों के इतिहास ऐसे संयोग अकसर देखे गए हैं।

इस व्यवस्था को लागू करना आसान नहीं था। प्रति हॉर्स पावर 800 रुपए की रकम प्रति पंप वसूले जाने का किसानों के साथ-साथ संघ ने भी इसका विरोध किया, हालाँकि यह कीमत लागत से काफी कम थी। लेकिन मोदी ने हार नहीं मानी। बिजली चोरी रोकने का कानून पास किया गया और बिजली चोरी करनेवाले अनेक लोगों को जेल भेजा गया।

इस योजना से एक साथ कई तबकों को फायदा पहुँचा। मोदी का

कहना है कि बच्चों की पढ़ाई अच्छी हुई, क्योंकि अब बिजली गुल नहीं होती थी। स्कूलों के नतीजों में भी सुधार हुआ। शोध बताते हैं कि ग्रामीण जीवन अब पहले के मुकाबले अधिक सुविधाजनक हो गया है। इससे अब शहरों की ओर पलायन में भी कमी आई है। दुकानों, स्कूलों और अस्पतालों में कामकाज बिना किसी रुकावट के चल निकला है। गैर-कृषि कार्यों, जैसे गैराजों, वेल्डिंग करनेवालों, चक्कियों और तेल पिराई करनेवालों को अब बिजली की चिंता नहीं सताती। चक्की चलाने या पानी निकालने जैसे घरेलू काम कम समय में होने लगे, जिससे महिलाएँ कमाई करने घर से बाहर निकलने लगीं और हीरे की पॉलिश जैसे काम शुरू कर दिए, जो बिजली की उपलब्धता के कारण अब गाँवों में भी होने लगे।[12] पंप चलाने के लिए सीमित समय के लिए बिजली दिए जाने से सरकार का जमीन के अंदर से पानी निकालने की गतिविधि पर भी नियंत्रण हुआ है। सन् 2001 से 2006 के बीच पंपों में बिजली की खपत में 37 प्रतिशत की कमी आई है। सरकार की ओर से खेती में दी जानेवाली सब्सिडी में कमी आई है और बिजली-पानी आपूर्ति से आमदनी होने लगी है।

किसान संतुष्ट हैं, लेकिन पूरी तरह खुश नहीं हैं। उनके पंप अब अधिक भरोसेमंद हैं। बिजली ठप होना काफी हद तक कम हो गया है। लेकिन इस बात को लेकर गुस्सा है कि आठ घंटों का जो वादा है, उससे भी कम देर के लिए बिजली दी जाती है। रात के समय बिजली देने की व्यवस्था न केवल क्लेश पहुँचानेवाली है, बल्कि असुरक्षित भी है। भूमिहीन किसान, जिन्होंने पट्टे पर ली गई जमीन पर खरीदे गए पानी से जुताई की, वे सबसे अधिक कष्ट में हैं, क्योंकि या तो पानी की माँग पूरी करनेवाले अनौपचारिक साधन खत्म हो गए हैं या उन इलाकों में पानी की कीमत विशेष तौर पर बहुत अधिक बढ़ गई है, जहाँ पानी का स्तर कम है और कुओं में पानी जमा होने में समय लगता है।

उन्हें एक और शिकायत है कि सिंचाई की आवश्यकता के अनुसार सप्लाई की अवधि में फेरबदल के बजाय पूरे साल एक समान बिजली की सप्लाई की जाती है। साल के चार से छह हफ्ते ऐसे होते हैं, जब फसलों को सबसे अधिक

पानी की आवश्यकता होती है और किसानों को अधिक देर तक बिजली चाहिए होती है। नए ट्यूबवेल पर मीटर लगाए जाने का भी विरोध हो रहा है, जबकि ऐसा करना अनिवार्य है। दो साल पहले 'इकोनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली' में जबरदस्त बहस छिड़ गई थी, जिसमें शिक्षाविदों का एक समूह गुजरात के कृषि के करिश्मे की प्रशंसा कर रहा था, जबकि दूसरा समूह विरोध कर रहा था। सन् 2005-06 तक छह साल के फसलों के आँकड़े की तुलना उसके सात साल पहले के आँकड़ों से करने के बाद तुषार शाह और उनकी टीम ने सूखाग्रस्त सौराष्ट्र, कच्छ और उत्तर गुजरात में भूजल पुनर्भरण आंदोलन चलाया, क्योंकि इन्हीं इलाकों के कारण राज्य की कृषि पैदावार ऊँची थी।

उनका कहना है कि उस अवधि में, जहाँ हर अगले वर्ष मानसून अच्छा रहा, फिर भी वर्षा पर निर्भर खरीफ की फसल की पैदावार में खास बढ़ोतरी नहीं हुई। दक्षिण और मध्य गुजरात में, जहाँ सबसे अधिक वर्षा होती है, वहाँ फसल क्षेत्र, पैदावार और मुनाफे में विशेष अंतर नहीं दिखा। राज्य में गेहूँ की दोगुनी और कपास की साढ़े तीन गुना पैदावार का कारण सिंचित इलाके में विस्तार था, साथ ही पैदावार बढ़ाने में ट्यूबवेल से अतिरिक्त सिंचाई का भी योगदान था।[13]

लेकिन इन नतीजों की जाँच करनेवाली टीम ने, जिसका नेतृत्व हैदराबाद स्थित संस्थान के दिनेश कुमार कर रहे थे, उनका कहना था कि गुजरात की खेती के बारे में कोई भी राय कायम करने के लिए छह वर्षों का समय बहुत कम है। यह 'करिश्मा' इस कारण हुआ, क्योंकि आधार के रूप में एक ऐसे साल को चुना गया था, जब सूखा पड़ा था, और इस वजह से विकास के आँकड़े हवा-हवाई दिख रहे थे। लेकिन वह इस बात से सहमत था कि गुजरात की कृषि ने सन् 2000 के दशक में 'महत्त्वपूर्ण छलाँग' लगाई है।

हैदराबाद के शोधकर्ताओं का कहना था कि फसल का उत्पादन मुख्य रूप से नर्मदा बाँध के कारण बढ़ा, जिसने अपने रास्ते में आनेवाली सूखी नदियों को पानी से भर दिया था और उनके किनारे बसे इलाकों में भूजल का स्तर भी ऊँचा हो गया। इसी कारण नहर के किनारे के इलाकों में फसल का उत्पादन बढ़ गया। हालाँकि दूर तक जानेवाली नहरें अब भी नहीं बनाई गई थीं, फिर

भी किसान पानी को पंप से टैंकरों में भरकर खेतों तक ले जाने लगे थे।

सौराष्ट्र, कच्छ और उत्तर गुजरात नहरों से दूर थे, फिर भी अच्छे मानसून की वजह से उनका जलदायी स्तर बढ़ गया। मिट्टी में नमी की अधिक मात्रा ने पंप के पानी पर निर्भरता को कम कर दिया।[14]

लेकिन दोनों ही टीमें इस बात से सहमत थीं कि भूजल पर निर्भरता अविवेकपूर्ण है। भूजल स्तर तेजी से नीचे जा रहा था और पंप से निकालने का खर्च भी राज्य पर बढ़ रहा था। बाँधों में पाँच क्यूबिक मिलियन पानी था, लेकिन उससे केवल 6.5 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में सिंचाई हो रही थी, जबकि किसान 11.5 बीसीएम भूजल से 27.5 लाख हेक्टेयर जमीन को सींच रहे थे। शाह की टीम ने कहा था कि गुजरात को पानी की अपनी रणनीति पर विचार करना चाहिए। उसे हर हाल में अपने बाँध के पानी का एक हिस्सा कड़ी चट्टानों के नीचे भूजल के रूप में जमा करना चाहिए, जैसा कि ऑस्ट्रेलिया ने सफलतापूर्वक किया है।

हैदराबाद की टीम ने प्रश्न उठाया कि क्या जल विज्ञान संबंधी अध्ययनों के बिना जलदायी क्षेत्र में वर्षा जल के संचय से पानी की उपलब्धता बढ़ी है? इसने कहा कि पानी की बचत अनिवार्य है, लेकिन राज्य को बाँध के पानी के इस्तेमाल के लिए तुरंत कदम उठाने चाहिए, जिससे सूखे क्षेत्र दक्षिण और मध्य गुजरात की नहरों द्वारा सींचे जा रहे क्षेत्रों की तरह ही समृद्ध हो सकें। इस विवाद में विचारधारा संबंधी रंग हावी हो गया और मोदी समर्थक तथा मोदी विरोधी समूहों ने अध्ययन के निष्कर्षों को अपनी सुविधा के हिसाब से देखना शुरू कर दिया।

इस विषयांतर से आगे बढ़ते हुए एक बार फिर इस अध्याय के मुख्य विषय की ओर लौटते हैं। पानी और बिजली की सुविधा से उतना लाभ नहीं मिला होता, यदि गुजरात ने सड़कें बनाने पर निवेश नहीं किया होता। विदित हो कि बिजली, पानी, सड़क पर ध्यान न देनेवाले नेताओं का वजूद खत्म हो गया है। सन् 2003 में सामाजिक बुनियादी ढाँचे में निवेश के बावजूद कांग्रेस के मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह मध्य प्रदेश में बुरी तरह हार गए, क्योंकि वहाँ सड़कों की हालत दयनीय थी। सन् 2005 में बिहार का मुख्यमंत्री बनते ही

नीतीश कुमार ने सबसे पहले कानून और व्यवस्था की स्थिति बहाल करने के अलावा सड़क-निर्माण का काम शुरू किया।

गुजरात में हमेशा से ही सड़कों का एक अच्छा जाल था, लेकिन पिछले कुछ दशकों में पक्की सड़कों में काफी बढ़ोतरी हुई। इनमें से अधिकांश गाँवों तक जानेवाली सड़कें थीं, जैसा कि शहरी इलाकों में शुरुआत में पत्थरवाली सड़कें बनी थीं। गाँवों तक जानेवाली सड़कों का जाल तीसरा सबसे बड़ा नेटवर्क है। असल में यह पूरा नेटवर्क ही पत्थरवाली सड़कों का है।[15] गुजरात कई राज्यों से लंबाई और सघनता के मामले में आगे है। यही कारण है कि गुजरात सहकारी दूध उत्पादन में अग्रणी राज्य बन सका। अध्ययनों से यह बात सामने आई है कि सड़क-निर्माण में खर्च होनेवाला एक रुपया कृषि सकल घरेलू उत्पाद में 7.66 (कृषि में अनुसंधान के बाद इसे दूसरा सबसे बड़ा निवेश माना जाता है) की बढ़ोतरी कर देता है और इसे ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी मिटाने का सबसे अच्छा साधन माना जाता है।[16]

हर मुख्यमंत्री के लिए सड़क एक प्राथमिकता रही है। सन् 1981 में गुजरात ने विश्व बैंक के कोष की मदद से गाँवों में सड़कों के विकास की बीस वर्षीय योजना का ऐलान किया। सन् 2001 में इसने राज्य भर में सड़कें बनाने की एक महत्त्वाकांक्षी योजना शुरू की, जिसके तहत शहरों में ढुलाई के रास्ते, खेतों से उत्पाद को बाजार तक पहुँचानेवाले रास्ते और पर्यटक स्थलों तक तुरंत ले जानेवाले रास्तों का चयन किया गया। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने भी सड़क-निर्माण में बहुत पहल की। सन् 1999 में उन्होंने स्वर्णिम चतुर्भुज योजना की नींव रखी, जिसके अंतर्गत मेट्रो शहरों को चौड़े हाईवे से जोड़ा जाना था और अगले ही साल उन्होंने गाँवों को जोड़नेवाली देशव्यापी सड़क योजना की शुरुआत की, जिसके तहत बनी सड़कों से किसी भी समय गाँवों तक पहुँचना संभव था। इसने राज्य का बोझ कम कर दिया, पर इसके राष्ट्रीय राजमार्ग की लंबाई तीन गुना बढ़ गई।

गुजरात में सड़क विकास को संस्थागत सुधारों का भी लाभ मिला। अधिकांश काम ठेके पर दिए गए हैं। खरीद का काम ऑनलाइन होता है। यदि पता चल जाए कि ठेका दबंगई से लिया गया है तो फिर से बोली लगाई जाती

है। कंप्यूटरीकृत सड़क प्रबंधन प्रणाली से मिली सूचना के आधार पर वार्षिक योजना तैयार की जाती है। रखरखाव में 80/20 का प्रावधान है, जिसका अर्थ है कि नेटवर्क का 20 प्रतिशत, जिस पर 80 प्रतिशत आवाजाही हो रही है, उसे सुधार कार्य में प्राथमिकता दी जाती है। निर्माण अंतरराष्ट्रीय मापदंड के अनुसार किए जाते हैं। जमीन के दस्तावेजों को कंप्यूटरीकृत किए जाने से भूमि अधिग्रहण (सुनिश्चित किया जाता है कि राहत और पुनर्वास की सुविधा सही लोगों तक पहुँचे) आसान हो गया है। विश्व बैंक ने भी इस योजना की प्रशंसा की है और दूसरे राज्यों की मदद के लिए अपने अनुभवों को दस्तावेजों में ढाल दिया है।[17]

भौतिक बुनियादी ढाँचे में सुधार के अतिरिक्त गुजरात की कृषि को वैज्ञानिक जानकारी जुटाकर उस पर कड़ी मेहनत करने से भी लाभ मिला है। 2004 में गुजरात कृषि विश्वविद्यालय के चार कैंपस को अलग-अलग स्वतंत्र विश्वविद्यालयों का रूप दे दिया गया है। अधिक स्वायत्तता के साथ शोध और खेतों तक पहुँच के लिए अधिक धन मिलने लगा। अगले ही साल कृषि-क्षेत्र के विस्तार की प्रणाली में नया जोश भरने के लिए 'वार्षिक कृषि महोत्सव' की शुरुआत की गई, क्योंकि विश्व बैंक की पहल पर शुरू हुआ हरित क्रांति के जमाने का ट्रेनिंग और विजिट मॉडल बेकार हो गया था। तब से ही हर साल, मानसून के आने से पहले, पूरे प्रशासन को प्रेरित किया जाता है। मंत्रियों, अठारह विभागों के अफसरों, वैज्ञानिकों और खेतिहर मजदूरों को एक महीने तक खेतों से संबंध स्थापित करनेवाले कार्यक्रम में शामिल किया जाता है। तेज गरमी की धूप को सहते हुए वे राज्य के सभी 18,000 गाँवों में जाते हैं। इसके लिए लगभग 200 कृषि-रथ निकलते हैं, जो सुनने और दिखाई पड़नेवाले साधनों, पोस्टरों तथा मिट्टी की जाँच करनेवाले उपकरणों से लैस होते हैं।

किसानों को मिट्टी के स्वास्थ्य का कार्ड दिया जाता है और उन्हें सलाह दी जाती है कि किस प्रकार मिट्टी की उर्वर क्षमता को बढ़ाना है, उनके लिए सबसे मुफीद फसल कौन सी होगी और उनके साथ-साथ किस प्रकार का पशुपालन करना है। खेती के लिए ऋण दिए जाते हैं तथा पशुओं का टीकाकरण किया जाता है। इसके अतिरिक्त कृषि कॉलेजों और कृषि विज्ञान केंद्रों द्वारा

मेले लगाए जाते हैं, जो जानकारी की कमी को पूरा करते हैं और जिनमें सैकड़ों किसान हिस्सा लेते हैं।

अंत में यह गुजरात के किसानों में उद्यमिता का जन्मजात गुण और फलने-फूलने की इच्छाशक्ति है, जो ऊपर दिए गए उपायों को पूरे जोश से अपनाते हैं और अपनी आमदनी को कई गुना बढ़ाते हैं। इस अध्याय के आरंभ में आलू पर जिस केस स्टडी का वर्णन किया गया, वह भी किसी एक विशेष इलाके या व्यक्ति की बात नहीं है। नई-नई चीजों को करने की इच्छा गुजरातियों के चित्त में जन्मजात होती है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण बीटी कॉटन का है, यह एक ऐसी प्रजाति है, जो कीट निरोधी है, क्योंकि इसमें मिट्टी के एक बैक्टीरियम से विषाक्त जीन निकलता है, और उसे आनुवंशिक हेर-फेर के साथ कलम के रूप में लगाया जाता है।

बीटी कॉटन एकमात्र आनुवंशिक रूप से संशोधित बीज है, जिसे भारत में बेचने की अनुमति है। अप्रैल 2002 में एक अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कंपनी मोनसांटो को केंद्रीय नियामकों द्वारा भारत में रोपे गए अपने बीटी कॉटन के बीज को बेचने की इजाजत मिली। अनुमति मिलने की प्रक्रिया को केवल इस कारण लंबा नहीं खींचा गया, क्योंकि यह अपनी तरह का पहला बीज था, बल्कि पर्यावरण से जुड़े समूह भी इसका विरोध कर रहे थे। उनमें से कुछ तो ऐसे थे, जिन्हें हर अमेरिकी चीज से नफरत थी, जबकि अन्य का यह मानना था कि कुदरत से कृत्रिम छेड़-छाड़ नहीं की जानी चाहिए। लेकिन किसानों की बात करें तो उन्होंने लंबे समय से कपास की फसल पर कीड़ों के हमले से नुकसान उठाया था और इस कारण वे इंतजार करने के मूड में नहीं थे। देश में इस्तेमाल होनेवाले कीटनाशकों का आधा हिस्सा तो कपास के पौधों पर ही खर्च हो रहा था। खर्च कम करने के लिए किसान सस्ते स्प्रे खरीद लेते थे, जो अकसर या तो खतरनाक होते थे या बेअसर, और इससे किसान खुद भी अपना नुकसान कर बैठते थे।

आठ साल तक अनुमति मिलने की बाट जोह रहे बीटी कॉटन पर जब फैसले की घड़ी आई, तब तक किसान उसे अपनाने के लिए मचल उठे थे। उन्हें अहमदाबाद की नवभारत सीड्स ने राहत दी, जो एक ऐसी कंपनी है,

जिसकी स्थापना वैज्ञानिकों ने की है, जिन्हें कोई भला करनेवाला कहता है तो कोई बौद्धिक संपत्ति के डाकू। केवल गुजरात से ही नहीं बल्कि पंजाब और आंध्र प्रदेश जैसे दूर के राज्यों के किसानों ने भी बिना इजाजत बीजों का इस्तेमाल कर लिया। नियामक ने अनधिकृत फसलों को नष्ट करने का आदेश दिया, लेकिन मोदी की सरकार ने कह दिया कि वह ऐसा करने में असहाय है। इसका अपना भी हित था, जिसके चलते इसने प्रतिस्पर्धा होने दी, क्योंकि मोनसांटो के बीजों का एक पैकेट 1650 रुपए में बिक रहा था, और इसने कीमतों की एक उच्चतम सीमा भी तय कर दी थी। नकली बीजों की बिक्री खतरनाक थी, लेकिन अनेक स्रोतों के उपलब्ध होने से एक पैकेट की कीमत गिरकर 450 रुपए प्रति पैकेट पर आ गई।

पिछले दशक के मध्य में कपड़ों और वस्त्रों पर हुआ विश्वव्यापी समझौता इसके कारण सही समय पर नहीं हो सकता था। अमेरिका और यूरोप द्वारा कपड़ों के आयात पर लगी सीमा को हटा लिये जाने के बाद चीनी उत्पादन में तेजी आई और उसके साथ ही भारतीय कपास की माँग बढ़ गई।

एक आयातक रहने के बाद भारत अब कपास का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक और निर्यातक देश बन चुका था। गुजरात इसमें सबसे आगे है। पिछले बारह वर्षों में इसकी उत्पादन क्षमता प्रति हेक्टेयर 226 किलो से बढ़कर 587 किलो प्रति हेक्टेयर हो चुकी है। कपास की खेती का क्षेत्र भी 6.6 लाख हेक्टेयर से बढ़कर दोगुने से भी अधिक, यानी 14.2 लाख हेक्टेयर हो गया है। यह 1870 के दशक की स्थिति का फिर से लौटकर आने के समान था, जब चीन में फसलों के बार-बार खराब होने से गुजरात के व्यापारियों की चाँदी हो गई थी और उसी दौरान यहाँ औद्योगिकीकरण की नींव पड़ी थी।

अक्तूबर 2013 में मुझे पहली बार यह देखने का मौका मिला कि जब राजनीति और विचारधारा वैज्ञानिक फैसलों को प्रभावित करते हैं, तब लोग नियामकों को अँगूठा दिखाते हैं और अपनी मरजी से काररवाई करते हैं, जिसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं।

सुप्रीम कोर्ट द्वारा गठित वैज्ञानिकों की समिति ने जहाँ अनिश्चित काल तक के लिए आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलों के क्षेत्र-परीक्षण पर रोक

की माँग की थी, फिर भी विदर्भ के किसानों ने ऐसी कपास बोई थी, जिस पर कीटनाशकों का कोई असर नहीं होता था, जबकि नियामकों ने तब तक उसके वाणिज्यिक प्रयोग की मंजूरी भी नहीं दी थी। तीन वर्षों तक सुरक्षा संबंधी परीक्षणों के बाद अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कंपनी मोनसांटो की भारतीय संस्था ने मार्च 2013 में अपने शाक प्रतिरोधी जीएम बीज को बेचने के लिए लाइसेंस के लिए आवेदन दिया। लेकिन जेनेटिक इंजीनियरिंग मूल्यांकन समिति ने उस महीने हुई बैठक में उस आवेदन पर विचार नहीं किया।

मैंने उस तृणनाशक को यवतमाल के एक संपन्न किसान के खेतों में लगा देखा था। खर-पतवार खेतों में मुरझाते जा रहे थे, जबकि संश्लेषण के उल्लास से झूम रहे कपास के पौधे अपने उत्पीड़कों पर प्रसन्न दिख रहे थे। किसान ने बताया कि उसने अपनी पचास एकड़ जमीन में से छह एकड़ में वही बीज बोया है, जिसे अमेरिका और अर्जेंटीना से गुजराती व्यापारी चोरी-चुपके देश में ले आए थे। 650 ग्राम का एक पैकेट 800 रुपए का था और वह एक एकड़ जमीन के लिए पर्याप्त था। इस लिहाज से उसकी कीमत वैध तरीके से बिक रहे बीटी कॉटन से 543 रुपए कम थी। वैध तरीके से बिकनेवाले बीज में खर-पतवार को नष्ट करनेवाला गुण भी नहीं था। गूलर के कीड़ों के लिए विषाक्त दो जीनों से संपन्न होने के साथ-साथ, शाक प्रतिरोधी संस्करण में एक और कृषि जीवाणु जीन डाला गया है, जो ग्लाइफोसेट प्रतिरोधी होता है, जो आम तौर पर इस्तेमाल की जानेवाली कीड़ों की दवा है।

किसानों द्वारा चोरी-छिपे की गई कारवाई के पीछे मेहनत बचाने और मुनाफा बढ़ाने की लालसा साफ दिखती है, लेकिन इसमें खतरे भी कम नहीं हैं। जीएम फसलों को हालाँकि सुरक्षित माना जाता है, फिर भी उन्हें सुरक्षित बनाए रखने के लिए कुछ कायदे अपनाने पड़ते हैं। यदि सरकार नई तकनीक की इजाजत नहीं देती, तो हमें इसे चोरी से या सीनाजोरी से इस्तेमाल कर एक संदेश देना होगा, ऐसा एक किसान का कहना था, जिसने नाम न छापने की शर्त पर यह बात कही। उसके अनुसार, महाराष्ट्र के वर्धा, चंद्रपुर और यवतमाल जिले के हिंगनघाट, वरोरा, वानी और राजुरा तालुका में 60,000 पैकेट बिक चुके हैं, जिनसे साठ हजार एकड़ जमीन पर फसल उगाई जा सकती है। उसने

उनका इस्तेमाल पहली बार सन् 2012 में किया था। मेरे पास इस बात के प्रमाण नहीं हैं कि गुजरात के किसानों ने इस तकनीक का इस्तेमाल किया है, लेकिन मुझे इतना विश्वास है कि वहाँ के बीज विक्रेताओं ने पहले घरेलू माँग पूरी की होगी और फिर बाहर का रुख किया होगा।

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि गुजरात की खेती जोशपूर्ण है। इसने गुजरात के विकास को गरीब समर्थक बनाया है। यह लोगों के द्वारा किए गए प्रयासों और सरकारी नीतियों से मिले उत्साह का शानदार तालमेल है, जिसमें कॉरपोरेट या सहकारी कारखाई का भी अपना योगदान है। आनेवाले कुछ एक वर्षों में जब नर्मदा का पानी अन्य इलाकों तक पहुँचेगा, तब गुजरात की खेती जीत हासिल करनेवाली एक और दौड़ लगाएगी।

## संदर्भ—

1. मैकेन फूड्स (इंडिया) के सीनियर प्रोक्योरमेंट ऑफिसर, गोपाल दास शर्मा के अनुसार, यूरोप का आलू सीजन 120–140 दिन का होता है, जबकि भारत में केवल 90 दिनों का। यूरोप में प्रतिदिन 12–14 घंटे तक धूप मिलती है, जबकि भारत में धूप हर दिन केवल 9 घंटे ही रहती है। इसलिए यूरोप के खेतों में 120 टन प्रति हेक्टेयर की पैदावार के मुकाबले पार्थी चौधरी के खेत की पैदावार को एक रिकॉर्ड माना जा सकता है। उन्होंने इतनी पैदावार कम देर तक धूप के बावजूद प्राप्त कर ली। गूगल सर्च के दौरान बिहार से एक और दावेदार का पता चलता है, जिनका कहना है कि उन्होंने सन् 2013 में बिना अजैविक खाद के प्रति हेक्टेयर 108.8 हेक्टेयर की पैदावार को संभव बनाया, जिस पर विश्वास करना कठिन है। यह लेख 'फोर्ब्स इंडिया' में 2 अगस्त, 2013 में छपा।
2. अशोक गुलाटी और शेंगेन फेन, संपादक, 'द ड्रैगन ऐंड द एलिफैंट, एग्रीकल्चरल ऐंड रूरल रिफॉर्म्स इन चाइना ऐंड इंडिया', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2007
3. भारत की दूसरी हरित क्रांति, 'फाइनेंशियल एक्सप्रेस', 11 फरवरी, 2014
4. सन् 2001 से 2012 के बीज गुजरात की औसत वार्षिक कृषि विकास दर 7.99 प्रतिशत थी, राजस्थान की 8.27 प्रतिशत, मध्य प्रदेश की 4.56 प्रतिशत और महाराष्ट्र की 4.39 प्रतिशत। बिहार 12.37 प्रतिशत के साथ सबसे आगे है और छत्तीसगढ़ 11.43 प्रतिशत के साथ दूसरे नंबर पर है। (योजना आयोग के आँकड़े)
5. 6 फरवरी, 2014 को लोकसभा में दिया गया उत्तर : पर्यावरण उप-समिति से अनुमोदन मिल गया, लेकिन R&R उप-समूह से नहीं मिली है।

6. डूम्ड डैम ऑफ गुजरात, 'हिंदुस्तान टाइम्स', मई 2013; 75,000 किमी. के नहर के जाल में केवल 26,000 किमी. की कीमत चुकाई जा चुकी है, इसमें से 10,000 किमी. का खर्च पिछले दशक में चुकाया गया है।
7. www.sardarsarovardam.org
8. सोश्यो इकोनॉमिक रिव्यू-2012-13
9. श्यामल टिकादार, पूर्व एमडी, गुजरात ग्रीन रिवॉल्यूशन कंपनी से अप्रैल 2011 में हुई बातचीत
10 'रीयल टाइम को-मैनेजमेंट ऑफ इलेक्ट्रीसिटी ऐंड ग्राउंडवाटर : एन एसेसमेंट ऑफ गुजरात्स पायनियरिंग ज्योतिग्राम स्कीम', बाई तुषार शाह और शिल्पा वर्मा, इंटरनेशनल वाटर मैनेजमेंट इंस्टीट्यूट, आणंद
http://publications.iwmi.org/pdf/H041811.pdf
11. 'नरेंद्र मोदी : द मैन', द टाइम्स, ट्रंक्यूबार, 2013
12. 'रीयल लाइम को-मैनेजमेंट ऑफ इलेक्ट्रीसिटी ऐंड ग्राउंडवाटर : एन एसेसमेंट ऑफ गुजरात पायनियरिंग ज्योतिग्राम स्कीम', तुषार शाह और शिल्पा वर्मा, इंटरनेशनल वाटर मैनेजमेंट इंस्टीट्यूट, आणंद
http://publications.iwmi.org/pdf/H041811.pdf
13. तुषार शाह एट आल, 'सीक्रेट ऑफ गुजरात एग्रेरियन मिरेकल आफ्टर 2000', 'इकोनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,' 26 दिसंबर, 2009
14. इंस्टीट्यूट फॉर रिसोर्स एनालिसिस ऐंड पॉलिसी एम. दिनेश कुमार, ए. नारायणमूर्ति, ओ.पी. सिंह, एम.वी.के. शिवमोहन, मनोज शर्मा और नितिन बस्सी की 'गुजरात'स एग्रीकल्चरल ग्रोथ स्टोरी : एक्सप्लोडिंग सम मिथ्स', मार्च 2010
15. राज्य के 2012-13 की समीक्षा के अनुसार, गाँवों में 25,000 किमी. का सड़क नेटवर्क देश में तीसरा सबसे लंबा नेटवर्क है। नेशनल हाईवे की लंबाई जहाँ 1,200 किमी. अधिक हुई, वहीं राज्य हाईवे उतना ही कम हो गया।
16. शेंगेन फेन, अशोक गुलाटी और सुखदेव थोराट द्वारा सेमिनार में रिफॉर्मिंग एग्रीकल्चर लेख से उद्धृत
17. इंस्टीट्यूशनल डेवलपमेंट ऐंड गुड गवर्नेंस इन द हाईवे सेक्टर लर्निंग फ्रॉम गुजरात, वर्ल्ड बैंक, 2011

□

4

# आदिवासी जीवन का पुनर्निर्धारण

*गुजरात में उच्च पैदावारवाली खेती, दुग्ध उत्पादन, कौशल एवं विकास के जरिए आदिवासियों के उत्थान का मंत्र है 'अधीनता नहीं, मर्यादा'। इसने अपनी उच्च महत्त्वाकांक्षा को पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं किया है, लेकिज ये ऐसे विषय हैं, जिन्हें समस्या को सुलझानेवाली सोच से हल किया जा सकता है।*

शुग्रीबेन राठवा जब मिट्टी के चूल्हे पर लकड़ी की दहकती आग में मक्की की पीली रोटियाँ पकाती हैं, तब धुएँ के साथ-साथ एक परंपरा भी विलीन होती दिखती है। रोटी को झाड़कर एक पॉलिथीन में रखते हुए वे कहती हैं, ''यह ठीक है कि पीली मक्का की रोटी पारंपरिक किस्म की रोटी से अधिक मीठी होती है। पैदावार अच्छी होती है और कीमत भी अच्छी मिल जाती है। इस कारण हम उसे बाजार के लिए उपजाते हैं और कुछ अपने खाने के लिए बचा लेते हैं।'' वे स्वाद पर जेब की विजय को उचित ठहराते हुए कहती हैं।[1]

सफेद देसी मक्का गुजराती आदिवासियों का मुख्य आहार रहा है। उन्हें यह अधिक स्वादिष्ट लगती है। लेकिन पीली संकर प्रजाति अधिक पैदावार देती है और उसमें स्टार्च की मात्रा अधिक होने के कारण औद्योगिक माँग भी ज्यादा है। इसलिए राठवा ने जब श्रीराम बायोसीड्स के संकर मक्के की

बुआई की, तो न केवल पैसे कमाने का हिसाब-किताब बड़ौदा के पास छोटा उदयपुर स्थित उनके कालिख पुते घर में घुस गया, बल्कि उनके अपने प्रयासों से उन्होंने सांस्कृतिक पाला बदलने का काम भी किया।

गुजरात में आदिवासियों के उत्थान के कार्यक्रम में उन्हें कम पैदावार और कम कमाईवाली मक्के की खेती की बजाय अधिक उत्पादक खेती की ओर ले जाने का प्रयास किया जा रहा है। यह फॉर्मूला क्रांतिकारी परिवर्तन लानेवाला नहीं है। दरअसल, यह मैदानी इलाकों में 1960 के दशक में लागू की गई हरित क्रांति का ही खाका है। इसमें नई बात यह है कि सिंचाई की व्यवस्था से वंचित पहाड़ी आदिवासी इलाकों में इसका प्रयोग पहली बार किया गया है, जबकि वहाँ का मौसम अनिश्चित है और मिट्टी भी उतनी उपजाऊ नहीं है।

गरीबी हटाने के मामले में मोदी का विकास मॉडल थोड़ा अलग है। मोदी सब्सिडी देने में विश्वास नहीं रखते हैं। उनका मानना है कि राज्य को ऐसी परिस्थिति का निर्माण करना चाहिए कि लोग अपनी मदद स्वयं कर सकें। "मुझे पावर दो, ताकि मैं तुम्हें एमपावर कर सकूँ," एक रैली में उन्होंने कहा था। 'ज्योतिग्राम योजना' के तहत जब गाँवों में घरों और खेतों के लिए अलग-अलग फीडर के उद्घाटन के लिए मेले लगे, तब सरकार के पब्लिसिटी अफसरों ने लोगों को बताया कि बिजली की अधिक उपलब्धता का इस्तेमाल आर्थिक गतिविधियों के लिए होना चाहिए, न कि अधिक-से-अधिक टीवी देखने के लिए। "यह कुम्हार और धोबी के लिए दी गई एक तकनीकी सहायता है।" मोदी ने कहा था।[2]

मोदी का तरीका तमिलनाडु मॉडल से अलग है, जिसमें राज्य के द्वारा आमदनी में सीधी सहायता की परंपरा है। उस मॉडल के तहत सस्ती दरों पर अनाज, दाल और खाद्य तेल, स्कूलों में पका भोजन और मुख्यमंत्री जे. जयललिता के शासन में सार्वजनिक कैंटीनों में सस्ता खाना दिया जाता है। राज्य के समाज का ढाँचा द्रविड़ सशक्तीकरण आंदोलनों द्वारा इस प्रकार का बन चुका है कि सार्वजनिक सेवाओं में कमी को बरदाश्त नहीं किया जाता है। राजनैतिक नेतृत्व और नौकरशाह, दोनों ही लोगों की इच्छाओं के प्रति

संवेदनशील हैं। तमिलनाडु में देश भर में सबसे अच्छी सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा है तथा भ्रष्टाचार के लिए सरकार के बदनाम होने के बाद भी पंचायती संस्थान अच्छी तरह काम करते हैं। इन कारणों से ही तमिलनाडु सामाजिक संकेतकों के मामले में बहुत आगे है। तमिलनाडु पर अर्थशास्त्री प्रणब वर्धन की यह टिप्पणी सटीक बैठती है कि चीनी अच्छे पूँजीवादी होते हैं, क्योंकि वे अच्छे समाजवादी थे। लेकिन हर क्षेत्र का समाज एक जैसा नहीं होता। मोदी ने अपनी शैली गुजरात के लोकाचार के अनुसार बनाई है। सन् 2006 में मोदी ने आनंद मोहन तिवारी नाम के अधिकारी का समर्थन किया था, जिनके पास आदिवासियों के कल्याण के लिए नए-नए उपाय थे। तिवारी एक जोशीले और उद्यमी अफसर थे। जनजातीय विकास विभाग की पोस्टिंग उनके पसंद के मुताबिक नहीं थी, फिर भी तिवारी ने उसमें एक नया जोश भर दिया।

गुजरात की कुल आबादी में जनजातियों का हिस्सा 7.5 प्रतिशत है। वे पड़ोसी राज्यों के अदिवासियों से बेहतर स्थिति में हैं, लेकिन गुजरात में उनकी स्थिति सबसे कमजोर है। गुजरात विकास शोध संस्थान की अमिता शाह द्वारा किए गए एक अध्ययन से यह बात सामने आई कि उनमें से अधिकांश के पास खेत हैं, भले ही छोटे हों, फिर भी वे भोजन, शिक्षा और स्वास्थ्य पर अन्य गुजरातियों की तुलना में कम खर्च करते हैं। पिछले दशक के मध्य में ग्रामीण गुजरात में गरीबी कम हुई, लेकिन उनके बीच बढ़ गई।

आदिवासियों के कल्याण पर खर्च में कोई कमी नहीं की गई है। सन् 1974 से ही जनजातीय सब-प्लान के अंतर्गत राज्य में आदिवासियों के प्रतिशत के बराबर हिस्सा बजट में रखा जाता है। सन् 1990 के दशक के बाद से ही गुजरात के आदिवासी नागरिक निकायों को छोटे बुनियादी ढाँचों, जैसे पुलिया आदि के लिए मदद का एक बड़ा हिस्सा मिलता रहा है। जब इनमें से किसी भी प्रयास के सकारात्मक परिणाम नहीं मिले, तब गुजराती आदिवासियों का भी सरकार से विश्वास उठने लगा। तिवारी ने पाया कि उनके विभाग के पास भी कोई महत्त्वाकांक्षी योजना नहीं है। आदिवासियों के लिए विज्ञान महाविद्यालयों को आवश्यक नहीं माना जाता था। उनके घरों

में नलों का कनेक्शन देना अव्यावहारिक माना जाता था, जबकि हिमाचल प्रदेश ने अपने यहाँ उसे लागू कर दिया था। हरित क्रांति की तकनीकों को आदिवासियों ने नहीं अपनाया था, जबकि जिन बाँधों ने उन्हें विस्थापित किया था, उनके पानी से मैदानी इलाकों में बंपर फसल उगाई जा रही थी। यह मान लिया गया था कि आदिवासी थोड़े-बहुत से काम चला लेते हैं। गुजराती आदिवासियों को दूसरे नागरिकों के समान स्तर पर लाने के लिए पहले उन्हें गरीबी से निकालना जरूरी था। गरीबी का प्रमुख कारण कम पैदावारवाली खेती से होनेवाली कम आमदनी थी। इसलिए गुजरात के मुख्यमंत्री द्वारा लागू की गई पंचवर्षीय, दस सूत्री उत्थान योजना, वन बंधु कल्याण योजना के तहत अधिक कीमतवाली सब्जियों को उपजाने की प्रेरणा दी जाती है। साथ ही दूध उत्पादन, रोजगार देनेवाले कौशल का विकास, और कम पैदावारवाली देसी मक्का की बजाय बेहतरीन और संकर बीजों को अपनाने का प्रोत्साहन दिया जाता है।

लेकिन उनमें यह बदलाव लाना इतना आसान नहीं था। यह बात मेरी समझ में तब आई जब मैंने इस स्कीम का अध्ययन, दिल्ली के सेंटर फॉर स्टडी ऑफ डेवलपमेंट सोसाइटीज से फेलोशिप के दौरान किया। आदिवासी अपना ही देसी बीज पैदा करते हैं। संकर बीजों को खरीदना पड़ता है, जो महँगे हैं और उन पर हर बार पैसे खर्च करने पड़ते हैं, क्योंकि उनका दोबारा इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। निजी संकर बीजों की कंपनियों का वितरण नेटवर्क नहीं है, जबकि राज्य की बीज मुहैया करानेवाली संस्थाएँ उनकी सप्लाई नहीं करती हैं। संकर बीजों के लिए अधिक खाद की आवश्यकता पड़ती है और मुश्किल यह है कि जरूरत के समय शायद ही कभी मिल पाते हैं। अधिकतर किसान चूँकि अशिक्षित हैं, इस कारण उन्हें यह बताना पड़ा कि वे पौधों को उचित दूरी पर लगाएँ, ताकि अच्छे किस्म के संकर बीज अपनी पूरी क्षमता से बढ़ सकें। ऊँची कीमतवाली संकर खेती के लिए यदि अविश्वसनीय मानसून पर भरोसा किया जाए तो किसान बरबाद हो सकते हैं। यही नहीं एक सांस्कृतिक बाधा भी थी, जिसे पार करना था—आदिवासियों को अधिक स्टार्चवाली औद्योगिक प्रयोग में आनेवाली संकर

मक्का के बनिस्बत सफेद देसी मक्का का स्वाद अधिक पसंद है।

अधिकारियों में जोश लाने के लिए जनजातीय विभाग ने लक्ष्य रखा कि पाँच वर्षों में आदिवासियों की आमदनी दोगुनी कर दी जाएगी। इसके लिए संकर प्रजाति के प्रयोग की आदत को तेजी से फैलाना था। यह लक्ष्य परंपरागत तरीके से काम करके हासिल नहीं किया जा सकता था। बाबुओं की काम की रफ्तार पर भरोसा करने के बजाय तिवारी ने निजी उपक्रमों की मुनाफा कमाने की इच्छा का इस्तेमाल करने का मन बनाया। 'यदि निजी क्षेत्र गैर-आदिवासी क्षेत्रों में संपत्ति का सृजन कर सकते हैं तो आदिवासी इलाकों में उनकी अनदेखी क्यों की जाए,' तिवारी को यह बात जँच गई।

गुजरात सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों की साझेदारी में विश्वास करता है। 1990 के दशक में चिमनभाई पटेल के अधीन, राज्य के समुद्री बोर्ड ने निखिल गांधी जैसे उद्यमियों को उत्साहित किया कि वे निजी बंदरगाह (पीपावाव में) बनाएँ। राज्य के अस्पतालों में स्त्री रोग और प्रसूति विशेषज्ञों की कमी को पूरा करने के लिए मोदी सरकार ने 'चिरंजीवी योजना' के अंतर्गत निजी डॉक्टरों से अनुबंध किया। सार्वजनिक क्षेत्र की गुजरात ग्रीन रिवॉल्यूशन कंपनी ने पानी बचानेवाली ड्रिपों और स्प्रिंकलरों के प्रयोग को जैन इरिगेशन और प्लास्ट्रो जैसी निजी कंपनियों के जरिए बढ़ावा दिया।

अमरीकी बहुराष्ट्रीय कंपनी मोनसांटो ने तिवारी को राजी किया। इस कंपनी के आनुवंशिक रूप से संशोधित बीटी कपास को सन् 2002 में वाणिज्यिक इस्तेमाल की मंजूरी मिली थी और जो अब कुल फसल-क्षेत्र के 93 प्रतिशत हिस्से में इस्तेमाल किया जा रहा है। उसने भारत को दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक (और निर्यातक) बना दिया है। पिछले दशक में संकर प्रजातियों के कारण एक मक्का क्रांति हुई है, जिसे निजी कंपनियों और सरकारी शोध संस्थानों ने संकर बीजों को किसानों तक पहुँचाकर संभव किया है। सालाना उत्पादन 66 प्रतिशत से बढ़कर बीस मिलियन टन पर जा पहुँचा है तथा उत्पादकता 33 प्रतिशत बढ़ी है। मोनसांटो की भूमिका सबसे अहम रही है। गुजरात की जनजातियों में इसके प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए इसने सन् 2006 में 15,000 आदिवासियों को बीज, खाद और मुफ्त में कृषि संबंधी

कोचिंग दी, जो देश में अपनी तरह का पहला प्रयोग था। जनजातीय विभाग ने इस पहले प्रयोग को समर्थन दिया और इसे प्रोजेक्ट 'रेनबो' नाम दिया गया। पैदावार दोगुनी करने के लिए इसने पूरी ताकत लगा दी।

इसके बाद प्रोजेक्ट 'सनशाइन' के नाम से शुरू की गई परियोजना में सरकार ने बीज कंपनियों के प्रवेश को सुगम बनाने के लिए गरीबी रेखा से नीचे के प्रत्येक आदिवासी को आठ किलोग्राम उन्नत मक्के का बीज और 150 किलोग्राम खाद देने का फैसला किया। यह एक एकड़ जमीन के लिए पर्याप्त मात्रा थी। यह पैकेज, जिसकी कीमत 2600 रुपए थी, उसे मुफ्त में नहीं, बल्कि भारी छूट पर दिया जा रहा था। किसानों को श्रेणी के अनुसार कीमत चुकानी पड़ती थी। सन् 2008 में इसकी कीमत 500 रुपए थी, जो सन् 2013 में 1,100 हो गई। अंत में सब्सिडी पूरी तरह हटा ली जाएगी। तब तक इतने आदिवासी इसकी खेती करने लगेंगे कि इसे बीज कंपनियों के हवाले किया जा सकेगा। यूनाइटेड फॉस्फोरस और श्रीराम बायोसीड्स के अलावा अमेरिका की बहुराष्ट्रीय कंपनी पॉयनियर हाईब्रेड इंटरनेशनल (ड्यूपॉण्ट की सहयोगी) और मोनसांटो को इसके उपयुक्त पाया गया है।

निजी बीज कंपनियों में मुनाफे की आस से ही उत्साह भरा जा सकता है। सरकार उनके लिए अब तक अनछुए बाजार को इस शर्त पर खोलेगी कि एक बार उनके स्मार्ट बीज की माँग न्यूनतम सीमा को पार कर ले तो उन्हें अपना वितरण नेटवर्क फैलाना होगा। लेकिन पर्यावरणवादी और अन्य लोगों को उस पर गहरा संदेह था। उनको डर था कि आदिवासियों को पीले संकर बीज के प्रयोग के लिए राजी करने का मकसद असल में उनके बीच आनुवंशिक रूप से संशोधित मक्का की बिक्री को बढ़ाना है। किंतु इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि जीएम फसलों से मनुष्य के स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचता है। अमेरिका में जीएम मक्का की शुरुआत सन् 1997 में हुई थी। अब वहाँ की अस्सी फीसदी पैदावार उसी की है।

"हमारा तर्क था कि जब तक हमारे लक्ष्य की प्राप्ति होती रहती है, तब तक इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आमदनी दोगुनी कौन करता है, चाहे वह एमएनसी हों या एक अमेरिकी कंपनी या एक भारतीय कंपनी," भरूच

में अपने घर के बड़े लॉन में टहलते हुए तिवारी ने बताया,[3] "उस प्रक्रिया में हम सार्वजनिक टेंडर जारी किया करते थे। चयन की प्रक्रिया बहुत सख्त थी और टेंडर यदि एमएनसी को मिल गया तो भी कोई बात नहीं थी, हम नैतिक मूल्यों पर निर्णय करने के लिए नहीं बैठे थे।"

इस प्रक्रिया में एक और नए विचार का समावेश किया गया, वह था ग्रामीण सेवा में खुद को साबित कर चुके गैर-सरकारी संगठनों, जैसे सद्‌गुरु फाउंडेशन का प्रवेश, जिन्हें बीजों और खाद के वितरण के साथ-साथ आदिवासियों को संकर फसलों की देखरेख की जानकारी देने का काम सौंपा गया। इसमें राज्य की कृषि विस्तार प्रणाली का सहारा नहीं लिया गया, क्योंकि उस पर पहले से ही काफी बोझ था। उद्योग घराने से परोपकार के कार्य में अभिरुचि रखनेवाली महिलाओं, जैसे श्रुति श्रॉफ को यह मानकर अभियान का हिस्सा बनाया गया कि उन्हें पैसों से अधिक ख्याति प्राप्त करने की लालसा होगी। गुजरात इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेंट रिसर्च (GIDR) के अध्ययन ने इस प्रयोग की सफलता की पुष्टि की है, चूँकि लगभग सारे आदिवासी, जिन्हें आधिकारिक तौर पर गरीब बताया गया था, ने अपने हक के अनुसार सही समय पर बीज और खाद ले लिया। देश भर में सरकारी योजनाओं में भ्रष्टाचार को देखते हुए इस उपलब्धि को सामान्य नहीं माना जा सकता है। कुछ आदिवासियों ने यह शिकायत की थी कि उन्हें तालुका वितरण केंद्रों पर दो-तीन दिन तक इंतजार करना पड़ा, लेकिन ऐसी शिकायतें कम ही थीं।

तीसरा नया प्रयोग पेशेवर लोगों का एक सुगठित समूह तैयार करना था, जिन्हें वन बंधु की विभिन्न परियोजनाओं के लिए काम पर रखा गया था। इनका काम विभिन्न जनजातीय योजनाओं में बिखरे पड़े फंड को समेटना, अलग-अलग खाके में बँटी सरकारी एजेंसियों को साथ लाकर प्रमुख परियोजनाओं को आगे बढ़ाना था। इन्हें डेवलपमेंट सपोर्ट एजेंसी ऑफ गुजरात या डी-सैग नाम दिया गया था।

आँखों में एक चमक के साथ जब प्रेमसिंहभाई राठवा स्वीकार करते हैं कि उन्होंने लगभग एक लाख रुपए कमाए, जो उनके जीवन की संभवतः

पहली घटना है—वह भी एक गरमी के सीजन में चार एकड़ जमीन पर संकर मक्का की फसल उगाकर, तो गुजरात के आदिवासी उत्थान योजना की सफलता का प्रमाण मिल जाता है। छोटा उदयपुर के पिलपुर गाँव के एक पूर्व सरपंच का कहना है कि देसी को छोड़कर संकर बीजों को चुनने का अर्थ था गुजारे के लिए की जानेवाली खेती के बदले बाजार के लिए खेती करना। उनका दावा है कि उनकी एक एकड़ जमीन पर तीस क्विंटल की पैदावर हुई है, जबकि इन इलाकों में पहले औसतन आठ क्विंटल की उपज हुआ करती थी। पीले मक्का में फायदा है, उन्होंने इस बात को मान लिया।

यह एक ऐसा अनुभव था, जिसकी पुष्टि विट्ठलभाई जेमटा ने भी की। यदि गाँव में बीज उपलब्ध न हो तो वे शहर तक गाड़ी से चले जाते हैं। जेमटा को पौधों की दूरी और खादों के प्रयोग का ऐसा ज्ञान है कि उस ज्ञान से कोई भी प्रभावित हो जाए। हालाँकि कीमतों का लाभ उठाने में दाहोद के बंबूरी गाँव के बापूभाई सिलोट नाकाम रहे। एक ट्रैक्टर, एक मोबाइल और एक बड़े घर के मालिक होने के नाते, वे किसी भी लिहाज से गरीब और सस्ते दर पर मिलनेवाले बीजों के हकदार नहीं दिख रहे थे। लेकिन इस प्रकार के अतिक्रमण को नजरअंदाज कर देना चाहिए, क्योंकि उनके जैसे बुजुर्गों द्वारा संकर खेती को अपनाए जाने का प्रभाव गाँव में निचले स्तर के लोगों पर भी पड़ता है। सरकार ने जब पिछले सीजन में सप्लाई में देरी कर दी, तब उन्होंने देसी की हिमायत की। ''पीला मक्का अच्छा है,'' उन्होंने कहा, ''लेकिन उसके बीज हमें चौमासा (जून) से पहले मिल जाने चाहिए।'' उनका संकेत इस ओर था कि यदि सरकार ने सस्ते दर पर बीज-खाद नहीं बेचा तो उनके जैसे किसान बाजार से बीज नहीं खरीदेंगे।

लेकिन मिलापसिंह पडवाल, जो दाहोद के प्रमुख बाजार में बीज विक्रेता हैं, का कहना है कि संकर बीजों की माँग बढ़ रही है। पहले ऐसा डर था कि कहीं सरकार द्वारा सस्ती दर पर मिलनेवाले बीज से उनके जैसों का धंधा चौपट न हो जाए, लेकिन यह बात निराधार साबित हुई है। इसकी बजाय उनका कारोबार और बढ़ गया है। सन् 2012 में जब सरकार की सप्लाई में देरी हुई थी, तब उन्होंने केवल दो महीने में बारह टन संकर बीज बेचे, जो

800 एकड़ जमीन के लिए पर्याप्त थे।

पैदावार में बढ़ोतरी की कहानियों की पुष्टि आकलन करनेवाले अध्ययन करते हैं। आणंद यूनिवर्सिटी और GIDR द्वारा कराए गए सर्वे दिखाते हैं कि संकर बीजों से पैदावार दोगुनी हो गई है, लेकिन लागत में अधिक खर्च के कारण बचत उस हिसाब से नहीं हो पा रही है। यदि आदिवासियों को स्मार्ट खेती का लाभ उठाना है तो सरकार को कम दाम पर अधिक पैदावारवाले बीज बेचने होंगे। इस कारण उस शोध को उत्साहित करना होगा, जिसमें उन बीजों के आनुवंशिक संशोधन के प्रयास करने होंगे, जो सूखा और खारापन के बावजूद अच्छी पैदावार दे सकें। निजी कंपनियाँ इसमें कीमतें घटाकर और अपने वितरण के नेटवर्क को और बढ़ाकर मदद दे सकती हैं। उन्हें इतना करना भी चाहिए, क्योंकि सरकार ने उनके लिए उस बाजार के प्रवेश-द्वार खोले, जहाँ उनका पहुँचना कठिन था। वे बहुत शिकायत भी नहीं कर रहे हैं। प्रकाशभाई दीताभाई, जो एक पोस्ट-ग्रेजुएट और गैर-आदिवासी स्कूली शिक्षक होने के साथ-साथ किसान भी हैं, उन्हें संकर मक्का के बारे में तब तक पता नहीं चला (हालाँकि उनका आदिवासी पड़ोसी उसे उगा रहा था।) जब तक कि उन्होंने अपने एक रिश्तेदार से बात नहीं की। फिर भी उन्होंने खेती के तौर-तरीकों को नहीं अपनाया। किस्मत से उनकी पैदावार अच्छी हुई। मोनसांटो ने कहा कि माँग बढ़ने से पहले सब्सिडी खत्म कर देनी चाहिए। इसकी बजाय सरकार को वितरकों को लाइसेंस देकर माँग बढ़ाने पर जोर देना चाहिए। आदिवासी किसानों में किसी एक फसल के प्रति दिलचस्पी जगाने की बजाय मुनाफे को लेकर अभिरुचि बढ़ाने पर जोर दिया जाना चाहिए।

GIDR का कहना है कि कपास और आलू के अलावा और भी बहुत सी संभावनाएँ हैं। 'अमूल' के जैसा कोऑपरेटिव, कॉण्ट्रैक्ट खेती करनेवाली प्रसंस्करण कंपनियाँ या निश्चित समय में वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए राज्य द्वारा शुरू किए जानेवाले कार्यक्रमों से गुजरात अपनी प्रयोगवादी क्षमता से आदिवासियों के कल्याण के कार्य को आगे बढ़ा सकता है। ऐसे प्रयास सरकारी खजाने पर कम बोझ डालेंगे, जबकि गरीबी उन्मूलन को

गरीबों के हक का कार्यक्रम बनाकर न जाने कब से सरकार के थनों को चूसा जा रहा है।

जहाँ तक थन से चिपके रहने की बात है, तो वलसाड के आमधा गाँव में महिलाओं की एक मंडली को ऐसा करते देखा गया। उनमें से अधिकांश कोकना पटेल समुदाय की थीं। कुछ पीटीजी या प्रिमिटिव ट्राइबल ग्रुप यानी आदिम जनजातीय समूहों की थीं, हालाँकि उनके तौर-तरीकों से ऐसा कुछ भी नहीं लग रहा था। उन्हें साथ लाने का काम एक डेयरी संघ ने किया था। गाँव के 240 घरों के आधे लोग इसके सदस्य थे, जिनमें से पचास सक्रिय सदस्य थे। सन् 2012 में उन्होंने 77,000 लीटर दूध की आपूर्ति की और लगभग 15 लाख रुपए कमाए। इस हिसाब से औसत रूप से सप्लायर को लगभग 30,000 रुपए की आमदनी हुई।

खेती के साथ-साथ जीवन चलाने के लिए इतना पैसा आना पर्याप्त था। गोबर खानेवाले कीड़ों से भरे प्लास्टिक बैग, जिनसे कंपोस्ट तैयार होता है, उनसे कुछ और आमदनी हुई। सन् 2004 तक ये महिलाएँ मजदूरी करती थीं। फिर कष्टदायी जीवन से बचने के लिए उन्होंने डेयरी का धंधा शुरू किया। डेयरी यूनियन के सचिव की पत्नी सारिकाबेन ने एक बछिया खरीदी और उसे गाय बनने तक पाला-पोसा। डेयरी की शुरुआत करनेवालों में से वह भी एक हैं।

वन बंधु के डेयरी कार्यक्रम का लक्ष्य आदिवासी किसानों को गरीबी से मुक्ति देने के लिए उन्हें पशुओं के साथ-साथ सहयोग देना भी है, जैसे ट्रेनिंग, कलेक्शन सेंटर, थोक में चिलर, दूध की जाँच करनेवाले, कृत्रिम गर्भाधान के उपाय, स्टेनलेस स्टील के डिब्बे और दैहिक सेल काउंटर (100 संक्रमणों की जाँच के लिए)। पहले चरण में, जो सात वर्षों तक चला, 78,000 आदिवासी परिवारों को 700 करोड़ रुपए के खर्च पर डेयरी के धंधे में लाया गया, जिसमें राज्य सरकार, साझेदार डेयरियाँ और स्वयं आदिवासी भी हिस्सेदार थे। हर घर को चार पशु देकर धंधा चालू किया गया। सब्सिडी के नाम पर सरकार हर घर को छूट के साथ दो गायें और सस्ता बैंक लोन मुहैया कराती है। उसकी अपेक्षा होती है कि पशुपालन से बाकी के साधन

अपने आप जुट जाएँगे। आदिवासियों को डेयरी के धंधे में लाने के लिए व्यापक उपाय किए गए हैं। पशुओं की सप्लाई करनेवालों को अपनी क्षमता साबित करने के लिए बोली लगानी पड़ती है। बेचने और खरीदनेवालों को साथ लाने के लिए कुछ निश्चित दिनों पर कैंप लगाए जाते हैं। पशु चिकित्सकों की मौजूदगी में खरीद समितियाँ यह सुनिश्चित करती हैं कि खरीदे गए पशु से उसका खर्च निकल जाएगा और बेकार पशुओं को न बेचा जाए।

खरीदार कैंपों में आए लोग गायों को एक निश्चित अंतराल पर दुहकर अपने आपको उसके दूध देने की क्षमता से संतुष्ट कर सकते हैं। फिर भी आदिवासियों को बुद्धू बना दिया जाता है। इस कार्यक्रम के शुरुआती आकलन से यह बात सामने आई कि वादे और प्रदर्शन के बीच एक बड़ा अंतर है। खरीद के समय और सर्वे के समय के बीच दूध देने की क्षमता एक तिहाई तक कम हो गई। संतुष्टि का स्तर भी गिर गया। अनेक बछड़ोंवाले पशुओं को बेचा गया, जबकि ऐसा नहीं होना चाहिए था। खरीद में शामिल अधिकारियों ने अपना बचाव करते हुए इन शिकायतों को मामूली बताया। उन्होंने गुजरात के संपन्न डेयरी उद्योग और गायों की बढ़ती माँग को स्तर में गिरावट के लिए जिम्मेदार ठहराया। सर्वे करनेवालों ने पाया कि जो गरीब नहीं हैं और जिनका हक नहीं बनता, वे भी इसका लाभ उठा रहे हैं।

वन बंधु की डेयरी शाखा की प्रभारी आरती ठाकर का कहना है कि यह कार्यक्रम 'बिल्कुल कामयाब' है। आधिकारिक ब्रोशर भी आँकड़ों के साथ इस प्रकार का दावा करते हैं। उन्होंने उसी एजेंसी GIDR को आधार बनाया, जिसने पहला आकलन किया था और कहा था कि अगले दौर में 'संतुष्टि का उच्च स्तर' देखा गया।

दुग्ध-उत्पादन का धंधा इसमें शामिल आधे परिवारों की जीविका का मुख्य आधार बन गया। आधिकारिक दावों को मानें तो साबरकाँठा में यह अनुपात 78 प्रतिशत तक पहुँच गया। कुछ तालुका में तो दूध का उत्पादन 35 से 40 प्रतिशत तक बढ़ गया है। हालाँकि मुश्किलों को भी गिनाया गया—कम वर्षा, चारे की कमी, अच्छे पशुओं की कमी, महँगा पशु आहार तथा कमजोर जानवरों का हटाना आवश्यक था, जो बेकार में चारा खा रहे थे,

लेकिन धार्मिक संवेदनशीलता के चलते ऐसा नहीं किया जा रहा था।

ऐसी समस्याएँ संभवत: किसी भी योजना के साथ आ सकती हैं, जो उन आदिवासियों को डेयरी उद्योग की ओर लाने का प्रयास करेंगी, जो बेहद निर्धन और कमजोर हैं। वसुंधरा डेयरी के सुरेंद्र बहादुर सिंह ने बताया कि यह कोई फैक्टरी की प्रक्रिया नहीं है, जहाँ आप एक तरफ पैसा लगाएँ और दूसरी तरफ से आपको दूध मिलने लग जाएगा। सिंह उत्तर प्रदेश के रहनेवाले हैं, जो तीस वर्षों से आदिवासियों को डेयरी की ओर मोड़ने में जुटे हुए हैं। उनका कहना है कि जब उन्होंने शुरुआत की तो पाया कि आदिवासियों के बीच डेयरी नाम की चीज ही नहीं थी। वे काली चाय पीते थे। इस कारण से राष्ट्रीय डेरी विकास बोर्ड के विशेषज्ञ ने कहा था कि वलसाड डेयरी को शुरू नहीं किया जा सकता है। लेकिन इसके ट्रस्टियों ने हार नहीं मानी। वे चाहते थे कि आदिवासियों को शहर आकर पसीना बहाने की बजाय, अपने ही घर में एक वैकल्पिक धंधा दिया जाए। तब से लेकर अब तक 2,000 लीटर दूध का उत्पादन बढ़कर 3.80 लाख लीटर पर पहुँच गया है और डेयरी बहुत आगे निकल चुकी है। उसकी सदस्यता 1.17 लाख तक पहुँच गई है और इतना ही नहीं, उनमें से 64 प्रतिशत आदिवासी हैं।

वसुंधरा डेयरी इस प्रकार का कोऑपरेटिव है, जो वन बंधु की महत्त्वाकांक्षा से जुड़ा हुआ है, क्योंकि वह आदिवासियों को समझता है और उनमें एक विश्वास जगाता है। यह बात अन्य डेयरियों के लिए नहीं कही जा सकती है, जिन्हें वन बंधु ने किसी और विकल्प के न होने पर जबरदस्ती इस धंधे में साझीदार बनाया। उनमें से कुछ राजनेताओं द्वारा चलाए जाते हैं, जिन्हें लोगों के सोच की चिंता नहीं है।

यदि वसुंधरा डेयरी के तौर-तरीकों को अपनाया जाए तो अधिकांश गरीब आदिवासियों के प्रति वन बंधु की सोच में बदलाव आएगा। विशेष तौर पर उनके प्रति, जो गरीबी रेखा से नीचे हैं और जिनके पास जमीन नहीं है। दिहाड़ी मजदूरों के पास इतना समय नहीं होता कि वे संकर प्रजाति के पशुओं की देखभाल सही ढंग से कर सकें। उन्हें हरा चारा, पोषक आहार, पर्याप्त पानी और एक आरामदायक आवास दे सकें। पशुओं में जैविक लय

के लक्षणों, जैसे गरमी पैदा होने पर ध्यान देना पड़ता है। सही समय पर गर्भाधान और दैनिक रूप से दूध निकालना पड़ता है, जो हारमोन द्वारा नियंत्रित होते हैं। सिंह का विचार है कि जिस किसी आदिवासी की इस ओर रुचि है, उसे शुरुआत करने के लिए मदद स्वरूप सारे साधन दिए जाने चाहिए। यह सुविधा किसी ऐसे को मिल भी जाए, जो गरीब न हो तो भी कोई नुकसान नहीं है। असल में उन्हें देखकर दूसरे प्रेरित तो हो सकते हैं। उनके अनुसार डेयरी में सफलता के लिए अंदर से इच्छा होनी चाहिए और फिर ट्रेनिंग, पशु प्राप्त करना, बछिया का पालन-पोषण और गर्भवती गाय की देखभाल जैसी बातें आती हैं। सिंह कहते हैं, ''हम लोगों से कहते हैं कि वे सब्सिडी लेने की बजाय अपना ध्यान कारोबार बढ़ाने पर लगाएँ।''

नेता भले ही इस बात को अपनी सफलता मान लें कि उन्होंने कितने पशु बाँटे या कितने ऋण दिए। लेकिन डेयरी धीरे-धीरे फलने-फूलनेवाला धंधा है। इसमें ऐसा अनुशासन चाहिए, जिसके लिए अनेक आदिवासी तैयार नहीं हैं। गुजरात के अनेक औद्योगिक शहरों में मिलनेवाली नौकरी का आकर्षण काफी बड़ा है। लेकिन उन्हें इसका नुकसानदेह पहलू दिखाई नहीं देता—काम में जोखिम, गंदी बस्तियों का अस्वास्थ्यकर जीवन और शिक्षा का अभाव।

वलसाड के वागलधारा का व्यावसायिक प्रशिक्षण केंद्र युवाओं को औद्योगिक नौकरियों के लिए तैयार करता है। इसकी स्थापना एक वरिष्ठ वकील के द्वारा की गई थी, जिन्होंने सूरत में खूब नाम कमाया और उस समुदाय के लिए कुछ करना चाहते थे, जिसमें उनका जन्म हुआ था। यह श्रम के प्रति प्रेम है। लाल ईंटवाली बड़ी इमारत के हवादार कमरों और ठंडे कोटा पत्थरों की फर्श का डिजाइन खुद संस्थापक ईश्वर जे. देसाई की आर्किटेक्ट बेटी ने तैयार किया था। मैं जब पहुँचा तब वहाँ 282 छात्र थे। उन्हें आठ पाठ्यक्रमों में बाँटा गया था, कुछ तीन साल की अवधि के थे, जबकि बाकी छह महीने की अवधि के थे और इन्हें तैयार करने में जर्मनी से मदद ली गई थी। यहाँ आवासीय सह-शिक्षा की सुविधा थी। छात्र एक के ऊपर एक बने बिस्तरों पर सोते थे और थोड़ा सा खाना मिलता था, जो मुफ्त था।

देसाई से जब सरकार ने साझेदारी की बात की, तो उन्होंने हामी भर

दी। उन्हें लगा, यदि वे आगे नहीं आए तो कोई बुरे इरादेवाला आगे आएगा और इस प्रकार सरकार का उद्देश्य विफल हो जाएगा, क्योंकि देश में मौजूदा राष्ट्रीय संकट चरित्र का संकट है। उनका कहना सही है, क्योंकि जनजातीय विभाग ने इससे पहले संदिग्ध सुनाई पड़नेवाले लोगों, जैसे बजरंग व्यायामशाला को कंप्यूटर की शिक्षा के लिए अनुबंधित किया था। देसाई ने निवेश के एक तिहाई हिस्से के तौर पर जमीन उपलब्ध कराई। सरकार ने अपनी तरफ से 5 करोड़ का योगदान दिया। इसका भुगतान जब दो वर्ष से भी कम अवधि में हो गया तो देसाई चौंक गए। इसका लक्ष्य पाँच वर्षों में 3,000 छात्रों को प्रशिक्षित करना है। देसाई ने बताया कि केवल दो वर्षों में 800 छात्र तैयार हो चुके थे और उनमें से 90 प्रतिशत नौकरी पाने में सफल भी रहे थे।

वन बंधु की व्यावसायिक शिक्षा योजना में अनेक परिवर्तन आए हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि तिवारी के नेतृत्व में जनजातीय मामलों के विभाग का रवैया किस प्रकार समस्याएँ हल करनेवाला रहा है। शुरुआत में इसने सरकार के समर्थन से चलनेवाली संस्थाओं, जैसे सीपेट (प्लास्टिक टेक्नोलॉजी) और इंडो-जर्मन टूल रूम का सहयोग लिया। लेकिन उनकी क्षमता कुछ सौ तक ही थी। इसके बाद कुछ जानी-मानी कंप्यूटर ट्रेनिंग देनेवाली निजी कंपनियों और इंडस्ट्री चैंबर का सहयोग लिया गया। वे अपनी ख्याति के मुताबिक नतीजे नहीं दिखा सके। प्रशिक्षकों की तीसरी खेप उनकी तकनीकी क्षमता के आधार पर तैयार की गई। उनके द्वारा चलाए जानेवाले कोर्स और उन्हें दी जानेवाली फीस (सरकार द्वारा) का एक मानक़ीकरण किया गया। 'ग्रामीण-आधारवाले प्रशिक्षण' को बंद किया गया, जो घर-घर जाकर दी जाती थी और जनजातीय युवाओं को अपने परिवार के आरामदेह स्थान से बाहर लाकर उन्हें शहर के जीवन को स्वीकार करने के लायक बनाया गया।

तापी जिले की किंजोल गामित को वागलधारा में 'ड्राफ्ट्स पर्सन' के पद के लिए ट्रेनिंग दी जा रही थी। उनके पिता, जो इनकम टैक्स के नोटिस पहुँचाते हैं, उन्होंने ही एक मित्र से बातचीत के बाद इस ट्रेनिंग की सलाह दी

थी। तापी के ही अंकित चौधरी को खराब चीजें दुरुस्त करना अच्छा लगता था और उन्होंने इलेक्ट्रीशियन की ट्रेनिंग लेना शुरू कर दिया था। उनके पिता घरों में केबल टीवी ऑपरेटर की ओर से कनेक्शन दिए जाने से पहले तार बिछाने का काम करते थे। वलसाड में धरमपुर के महेश काकड़ वेल्डर बनकर अपने पैरों पर खड़ा होना चाहते थे। उन सभी को संभवत: पहली बार घर से बाहर निकलने का अवसर मिला था।

दाहोद में ट्रेनिंग सेंटर का संचालन ग्रामीण विकास ट्रस्ट द्वारा किया जाता था। यहाँ पाइपलाइन और चिनाई का सर्टिफिकेट कोर्स किराए पर ली गई इमारत में चलाया जाता था। ऐसा बताया गया था कि वहाँ सत्तर छात्र पढ़ते हैं, लेकिन हम जब पहुँचे तो केवल गिनती के ही छात्र दिखे। तकनीकी सलाहकार ए.के. जैन ने बताया कि निर्माण क्षेत्र में उनके छात्रों की बहुत अधिक माँग है, क्योंकि वे केवल 'कैसे' नहीं सिखाते बल्कि 'क्यों' (मसलन, सीमेंट और रेत का सही मात्रा में मिश्रण) की भी शिक्षा देते हैं। इस केंद्र से सर्टिफिकेट प्राप्त करने के बाद वेतन में 100 फीसदी तक की बढ़ोतरी संभव थी। लेकिन पाठ्यक्रमों में परिवर्तन आवश्यक हो गया था, क्योंकि निर्माण की शैली बदल रही थी। पूर्व निर्मित पैनल, तैयार मिक्स कंक्रीट, दीवार पर समग्र अल्युमिनियम का आवरण और सामग्री पहुँचाने के लिए टावर लिफ्ट के प्रयोग में कौशल की आवश्यकता थी, जिसे मुहैया कराने के लिए केंद्र उत्सुक था, बशर्ते बिल्डर उसका साथ दें।

किंतु यहाँ एक मुश्किल आ गई। वागलधारा इंस्टीट्यूट अपने भविष्य को लेकर बेहद चिंतित था। जनजातीय मामलों के विभाग में फेरबदल के बाद अनुदानों में दिक्कत आ गई थी। देसाई ने कहा, ''पिछले एक वर्ष में, सरकार ने सचिव के पद पर एक नियमित तैनाती नहीं की।[4] कुछ लोग आए, जिन्हें विभाग का (जनजातीय) अतिरिक्त प्रभार सौंपा गया। उनके लिए दूसरी जवाबदेही अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई और कभी-कभी लगता है कि हमें अधर में छोड़ दिया गया। यदि फंड मुहैया कराने में सरकार की ओर से ऐसी ही अनिश्चितता रही तो वागलधारा इंस्टीट्यूट को फीस लेनी पड़ेगी। इससे जनजातीय छात्र पढ़ नहीं पाएँगे।''

सद्‌गुरु फाउंडेशन द्वारा सन् 2012 में जारी वार्षिक रिपोर्ट में हरनाथ जगतवाल ने लिखा, ''ग्रामीण विकास करनेवाले ख्यातिप्राप्त और सच्चे गैर-सरकारी संस्थानों के लिए मुश्किल की घड़ी है।'' तिवारी के बाद पद सँभालने वाले सचिव ने विभागों के जरिए काम कराने के पुराने ढर्रे पर चलना शुरू कर दिया। बाद में उसने पद से इस्तीफा दे दिया। उसे अहमदाबाद में एक सुरक्षित विधानसभा सीट से बीजेपी का टिकट मिल गया। आश्चर्य इस बात का है कि मोदी ने दो साल के बाद एक सचिव की तैनाती की, जिसका मिजाज वन बंधु की प्रकृति के साथ मेल खाता था।

## संदर्भ—

1. यह लेख 20 सितंबर, 2013 को 'फोर्ब्स इंडिया' में छपा था।
2. 7 फरवरी, 2014 को अहमदाबाद में साबरमती नदी के किनारे मुसलिम कारोबार की प्रदर्शनी में दिया गया भाषण।
3. साक्षात्कार के समय तिवारी गुजरात स्टेट फर्टिलाइजर कोऑर्पोरेशन के प्रमुख थे।
4. जब अप्रैल 2013 में साक्षात्कार किया गया।

□

# 5

# कार्यान्वयन की चीनी शैली

*हिंदू सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और आर्थिक विकास के संगम ने गुजरात के मॉडल को चीन जैसी विशिष्टता दी है। मोदी के अंदर कार्यान्वयन का जैसा साहस और लोकतांत्रिक अड़चनों के प्रति जैसी व्यग्रता है, वह एक ड्रैगन स्टेट में ही देखने को मिलती है।*

गुजरात में ऐसे अनेक कार्य होते हैं, जिनसे ऐसा लगेगा कि आप भारत में नहीं हैं। यह उद्धरण 2011 में 'इकोनॉमिस्ट' में छपी एक रिपोर्ट से लिया गया है, जिसका शीर्षक था—'भारत का ग्वांगडोंग'।[1] मैन्युफैक्चरिंग के क्षेत्र में काफी हद तक चीन जैसा होने के कारण गुजरात भारत के लिए एक मॉडल बन सकता है, क्योंकि सामने ग्रामीण श्रम को रोजगार देने की एक बड़ी चुनौती है। इसने मैनेजमेंट कंसल्टेंसी मैकिंसे द्वारा भारतीय राज्यों की एक रैंकिंग का उद्धरण दिया और बताया कि किस प्रकार गुजरात भारत के औद्योगिक क्षेत्र में इंजन का काम कर सकता है।

चीन विश्व का वर्कशॉप है। भारत में गुजरात उसी स्थान का दावेदार है। मैन्युफैक्चरिंग इसके सकल घरेलू उत्पाद में चौथा स्थान रखता है, जबकि राष्ट्रीय स्तर पर यह छठे स्थान पर है। यह अनुपात तब चीन के स्तर तक पहुँच जाता है, जब निर्माण उद्योग द्वारा सृजित मूल्य तथा पानी, गैस और बिजली जैसी सुविधाओं को उसमें जोड़ दिया जाता है। चीन की तरह ही

गुजरात का औद्योगिक विकास इसके बुनियादी ढाँचे और शांत श्रमिकों पर ही निर्भर है। इसके कुल इकतालीस में से दस बंदरगाहों पर हर मौसम में जहाजों की आवाजाही हो सकती है। 2,800 कि.मी. लंबा गैस ग्रिड बिजली चीनी मिट्टी और काँच के उद्योगों की आवश्यकताओं को पूरा करता है।[2]

गुजरात में शानदार सड़कों का सघन जाल बिछा है। यह अपनी आवश्यकता से अधिक बिजली पैदा करता है। दिल्ली-मुंबई के बीच बन रहे औद्योगिक कॉरिडोर का एक तिहाई हिस्सा गुजरात में होगा, जो केवल माल की ढुलाई करनेवाली रेल लाइन के साथ बन रहा है। चीन की ही तरह यहाँ करीब आधा दर्जन विशाल औद्योगिक एस्टेट बनाए जाएँगे।

मोदी गुजरात में कारोबार की सुविधाओं की अत्यधिक प्रशंसा करते हैं। उनके मुताबिक यह सर्वोत्तम श्रेणी का है। वे शून्य श्रमदिवस नुकसान की भी बात करते हैं। यह सच नहीं है। मई 2011 में जनरल मोटर्स के कार प्लांट में कामगार पचास दिनों तक हड़ताल पर रहे। वे स्वास्थ्य के खतरों, मजदूरों का डीलरों के पास ट्रांसफर और लंबी अवधि के वेतन समझौते में देरी का विरोध कर रहे थे। उसके बाद से ही बॉम्बार्डियर फैक्टरी, अरविंद टेक्सटाइल मिल्स और लार्सन ऐंड टुब्रो के भारी मशीन कारखानों में हड़ताल हुई है। हालाँकि हड़तालों और तालाबंदी में सन् 1980 के दशक के बाद देश भर में कमी आई है। हाल की घटनाओं के बावजूद गुजरात औद्योगिक शांति का एक नखलिस्तान बना हुआ है। यहाँ होने वाली उथल-पुथल में कमी आई है। सन् 2003 में जहाँ बयालीस दिनों तक मजदूरों का आंदोलन चला, वहीं सन् 2011 में घटकर अट्ठाईस दिन रह गया। दस साल पहले तीन गुना अधिक श्रमदिवसों का नुकसान होता था, जो अब घटकर 36,000 पर आ गया है। अब कम-से-कम मजदूर इनमें शामिल होते हैं।[3] गुजरात के ट्रेड यूनियन आपेक्षाकृत कम संघर्षवादी हैं। हरियाणा या तमिलनाडु के अपने साथियों के मुकाबले वे समझौते की कला में माहिर हैं। अकसर ऐसा कहा जाता है कि चीन में उत्पादन का विकास श्रमिकों में लचीलेपन के कारण संभव हुआ है। गुजरात ने प्रतिबंधात्मक औद्योगिक विवाद अधिनियम में संशोधन किया है, जिससे विशेष आर्थिक क्षेत्र की इकाइयों में काम करनेवाले

मजदूरों को एक महीने का नोटिस और ऊँची दर पर मुआवजा देकर काम से हटाया जा सकता है। इससे SEZ में चलनेवाली इकाइयाँ दो महीने की नोटिस देकर काम बंद कर सकती हैं। निश्चित अवधि का रोजगार भी संभव हो गया है। इस कारण ही मार्च 2014 में अपनी रिपोर्ट में निवेश बैंक गोल्डमैन सैक्स ने बताया कि गुजरात के उत्पादन क्षेत्र में सन् 2000 से 2012 के बीच रोजगार में 60 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई, जबकि बंगाल में केवल 22 फीसदी।

सन् 1992 में देंग श्याओपिंग द्वारा अपने देश के नागरिकों का आह्वान किए जाने से पहले ही गुजरातियों के लिए अमीर बनना गौरव की बात थी। केवल एक गुजराती मुख्यमंत्री ही भारत में सादा जीवन जीनेवाले राष्ट्रपिता को, महात्मा मंदिर नाम के स्थान पर, धन का सृजन करनेवालों के साथ उत्सव मनाकर श्रद्धांजलि दे सकता है।[4] संघ के विचार विदेशी निवेश के विरुद्ध हैं, लेकिन मोदी उनके विपरीत एक उदारवादी हैं। मोदी पर जब बंदरगाहों के निजीकरण के लिए हमले हुए तब उन्होंने कहा था, "गुजरात के लोग उद्यमी हैं और वे चाहते हैं कि सरकार का दखल कम-से-कम हो।"[5] शंघाई के पुडौंग को वित्तीय जिले के रूप में विकसित करनेवाले वन चॉप जू (रोंगजी) के समान ही मोदी लालफीताशाही को समाप्त करनेवाले हैं। प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की सहमति इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से दी जाती है। फिक्की का कहना है कि औपचारिक सहमति का भी प्रावधान है और ऑनलाइन ट्रैकिंग प्रणाली पूरी तरह पारदर्शी है। जमीन के दस्तावेज कंप्यूटराइज्ड हैं, जमीन के इस्तेमाल की सूचना वेबसाइट पर है और पैंसठ सुविधाओं से जुड़े आँकड़े भी उपलब्ध हैं।[6] श्रम कानूनों के तहत आनेवाली इकाइयों को सुरक्षा नियामकों के निर्देशों के पालन संबंधी रिपोर्ट को स्वयं प्रमाणित करने की इजाजत है।[7] लिफ्ट का निरीक्षण निजी क्षेत्र को सौंप दिया गया है।

बंदरगाहों की मदद से होनेवाला विकास गुजरात सरकार के लिए एक मंत्र के समान है। मोदी सरकार के तहत इसे जबरदस्त बढ़ावा मिला है। गुजरात ने सन् 1992 में पीपावाव में देश का पहला निजी बंदरगाह तैयार किया। उस समय इस प्रकार की पहल का न कोई उदाहरण था और न ही

कोई नीति थी। अब इसका स्वामित्व एपीएम टर्मिनल्स के पास है, जो दुनिया के सबसे बड़े कंटेनर टर्मिनल ऑपरेटरों में से एक है। दिल्ली में सन् 2006 में हुए मुख्यमंत्रियों के एक सम्मेलन में मोदी ने माँग की थी कि बंदरगाह आधारित विकास को राष्ट्रीय आर्थिक रणनीति में शामिल किया जाना चाहिए।

स्वतंत्रता के बाद जब भारत ने अपने आप को दुनिया से अलग कर लिया, तब प्रायद्वीपीय भारत को आर्थिक क्षेत्र में बढ़त का लाभ मिलना बंद हो गया। बँटवारे के बाद कराची के पाकिस्तान में चले जाने के कारण कांडला पोर्ट को विकसित किया गया। किंतु इसे जोड़नेवाला रेल लिंक निर्धारित राष्ट्रीय मार्ग से सँकरा था, जिसके कारण पोर्ट तक आनेवाले माल को रास्ते में उतारकर फिर से चढ़ाना पड़ता था। सड़कों से संपर्क सुगम नहीं था। यह व्यापार के प्रति देश की उदासीनता का प्रतीक है।

गुजरात की तरक्की में सदियों से समुद्र से होनेवाले व्यापार की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इस कारण मौके का फायदा उठाने के लिए यह अन्य राज्यों के मुकाबले तेजी से आगे आया। इस बात का अहसास करते ही कि राज्य के अधिकार क्षेत्र में छोटे बंदरगाहों के निर्माण पर कोई रोक नहीं है, इसने सन् 1982 में देश के पहले समुद्री बोर्ड का गठन किया।

एक दशक बाद इसने ऐसी नीति बनाई, जिसके तहत विश्व स्तर के दस पोर्ट बनाने का प्रस्ताव रखा गया, जिनमें से छह निजी पक्षों द्वारा और चार ऐसे पोर्ट बनाए जाने थे, जिनमें सरकार की आंशिक भागीदारी थी। इसी दौरान देश में सुधारों और विदेशों से व्यापार को लेकर खुली नीति अपनाने की शुरुआत हुई। सन् 2004-05 में सिक्का के छोटे पोर्ट ने बड़े पोर्ट विशाखापत्तनम को पीछे छोड़ दिया और देश का सबसे बड़ा बंदरगाह बन गया। छोटे पोर्ट को अब गैर-प्रमुख पोर्ट कहा जाता है, जो किसी लिहाज से सही नहीं है! गुजरात की पोर्ट पॉलिसी ने निवेशकों की आकांक्षाओं को पूरा किया है। मर्स्क, शेल, रिलायंस, अडानी और एस्सार राज्य के कुछ प्रमुख पोर्ट ऑपरेटर हैं। यहाँ के बंदरगाहों से भारत के समुद्री व्यापार के पाँचवें हिस्से का कारोबार होता है।

भारत में बंदरगाहों से होनेवाले विकास के लिहाज से कच्छ की तुलना शेनजेन से की जाने लगी है। यह शेनजेन ही था, जहाँ चीन ने अपने अतीत को पीछे छोड़ा और नियंत्रित पूँजीवाद (जिसे चीनी विशेषता वाला समाजवाद कहा गया) का प्रयोग किया। हांगकांग से निकट होने के कारण महज तीन वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में फैला 30,000 लोगोंवाला मछुआरों का गाँव सन् 1980 में चीन का पहला आर्थिक क्षेत्र बना। विदेशी निवेशकों को जूते, खिलौने और इलेक्ट्रॉनिक सामान बनाने तथा निर्यात करने की इजाजत दी गई। आज यहाँ की आबादी बारह मिलियन है, जिनमें से आधे विदेशी हैं। सबसे अमीर शहर होने के बावजूद सन् 2013 में इसका विकास 10.5 प्रतिशत की दर से हुआ। और अब यहाँ श्रम प्रधान उद्योग का नहीं, ज्ञान प्रधान बायोटेक्नोलॉजी, सूचना प्रौद्योगिक, नई ऊर्जा, नई सामग्री और सर्जनात्मक उद्योगों का बोलबाला है।

सन् 2001 में जब यहाँ भूकंप ने तबाही मचाई, तब गुजरात और केंद्र सरकार ने कच्छ के आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए अपना पूरा ध्यान और सामर्थ्य लगा दिया। इन प्रयासों की चर्चा पहले अध्याय में विस्तार से की गई है। मुंद्रा में गौतम अडानी के पोर्ट और विशेष आर्थिक क्षेत्र ने इस काम को आगे बढ़ाया। कच्छ बंजर और पिछड़ा क्षेत्र था और लोग ऐसी जगह की ओर भाग रहे थे, जहाँ उन्हें लोगों का समूह मिल सके, उसका दोनों ने मिलकर कायापलट कर दिया। पिछले दशक में इसकी आबादी में 32 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है। हालाँकि यह फिर भी कम है, लेकिन बढ़ोतरी की रफ्तार के लिहाज से यह घनी आबादीवाले सूरत की तुलना में दूसरे स्थान पर है।

गौतम अडानी ने सन् 1998 में जब मुंद्रा में पोर्ट का निर्माण शुरू किया, तब वह एक मछली पकड़नेवाला गाँव था। जिंसों के व्यापार में उन्होंने बहुत तेजी से पैसा कमाया, लेकिन उन्हें यह अहसास हुआ कि उन्होंने संपत्ति का सृजन नहीं किया है और निवेशक भी उनसे बहुत कुछ नहीं खरीदते हैं। हालाँकि बुनियादी ढाँचा यानी पोर्ट, पावर, औद्योगिक ठिकाने और गैस वितरण के कारोबार में दाखिल होने का मतलब था, लंबे समय तक धीरे-धीरे मुनाफा कमाना। रणनीति में इस प्रकार का बदलाव कारोबार में मौके का फायदा

उठाने की नीयत से किया गया।

औद्योगिक अनुमति से संबंधित भारतीय विभाग के एक अधिकारी का कहना है कि जिंसों का कारोबार करनेवाली एक अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कंपनी को जब अमेरिका में नमक के कारोबार को छोड़ने पर मजबूर किया गया, तब उसने कच्छ के रण में खारे क्षेत्र को विकसित करने में दिलचस्पी दिखाई। चूँकि ऐसा कहा जाता था कि अडानी मुख्यमंत्री चिमनभाई पटेल के करीब थे, इस कारण उसने नमक के एक विशाल क्षेत्र के अधिग्रहण में उनकी मदद माँगी। अडानी राजी हो गए, लेकिन उन्होंने जमीन अपने नाम लिखवा ली और साझेदारी का प्रस्ताव रखा। अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कंपनी, जिस पर एक परिवार का स्वामित्व था, उसने प्रस्ताव को खारिज कर दिया। कंपनी ने जब इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया, तब अडानी के पास एक विशाल खारा क्षेत्र था और समुद्र तट का एक हिस्सा भी। अपने एक दोस्त की सलाह पर, जो दाँतों का डॉक्टर होने के साथ-साथ दूरदर्शी भी था, अडानी को लगा कि यह सरकार के स्वामित्ववाले अक्षम कांडला बंदरगाह का एक विकल्प तथा उत्तर भारत के आंतरिक इलाकों के लिए एक प्रवेश-द्वार भी हो सकता है।

अडानी को लगा कि गुजरात की पोर्ट नीति उनकी योजना के लिए एकदम सही है। उन्होंने सरकार के साथ साझेदारी की, लेकिन आगे चलकर पोर्ट को पूरी तरह निजी स्वामित्ववाला बना दिया।

वर्ष 2000 में चीन के दौरे से प्रभावित एक वाणिज्य मंत्री ने भारत के लिए विशेष आर्थिक नीति का ऐलान किया, तब अडानी एकदम तैयार थे। उनके पास 6,500 एकड़ जमीन है, जो देश का सबसे बड़ा अधिसूचित SEZ है, जहाँ से 7,300 करोड़ रुपए का निर्यात होता है।[8] किंतु इसे पर्यावरण संबंधी नियमों के उल्लंघन के कारण नियामक से उलझना पड़ रहा है। अडानी गुजरात के चंद प्रिंसलिंग्स यानी राजकुमारों में से एक हैं। यदि वे चीन में होते तो उन्हें इसी नाम से पुकारा जाता। इस नाम से चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं के बच्चों को पुकारा जाता है, जिन्होंने सत्ता से करीबी का फायदा उठाते हुए अपना शानदार कारोबार खड़ा कर लिया है। अडानी को मोदी के करीब माना जाता है। उन्हें रिसरजेंट ग्रुप ऑफ गुजरात का हिस्सा माना जाता था, जो 2002 के

दंगों के बाद मोदी के साथ खड़ा था। 2013 में अडानी ने व्हार्टन इंडिया इकोनॉमिक फोरम से अपनी स्पॉन्सरशिप वापस ले ली थी। दरअसल, उसके बिजनेस स्कूल ने प्राध्यापकों और छात्रों के विरोध के बाद वीडियो कॉन्फ्रेंस के जरिए होनेवाले मोदी के भाषण (अमेरिका ने उन्हें वीजा देने से इनकार कर दिया था) को रद्द कर दिया था।[9]

मोदी के शासनकाल में अदानी समूह का वार्षिक व्यापार 3,000 करोड़ रुपए ($0.69 बिलियन)[10] से बढ़कर 54,000 करोड़ रुपए ($8.7 बिलियन)[11] हो गया है, जो देखा जाए तो तेरह वर्षों से कुछ अधिक समय में अठारह गुना है। अडानी मानते हैं कि उनके समूह ने बहुत तेजी से तरक्की की है। "1995 में हमने कभी सोचा नहीं था कि हम इतने बड़े बन जाएँगे," बातचीत के दौरान उन्होंने बताया था। सस्ती जमीन के बड़े-बड़े हिस्सों से लेकर, गैस वितरण के लिए पसंदीदा शहरों का और उनके लिए तुरंत मंजूरी मिलना। इनके कारण ही अडानी समूह का अस्तित्व पिछले एक दशक में मंत्रमुग्ध कर देनेवाला है। लेकिन अडानी का विकास कर्ज के दम पर हुआ है, जैसे उन्हें बुनियादी ढाँचे के विकास के लिए एक बड़ा कर्ज मिला। बंदरगाह से उन्हें अच्छी आमदनी हो रही है, लेकिन बिजली का कारोबार घाटे में है, क्योंकि गुजरात सरकार से कोयला खदानों की लीज उम्मीद के अनुसार नहीं मिल सकी। इसका कारण राजनीति और नौकरशाही के बीच मतभेद हैं। इस कारण इंडोनेशिया से कोयला आयात करना पड़ता है, जहाँ की सरकार ने कोयले पर न्यूनतम निर्यात की रकम तय कर दी है। बिजली के कारोबार को नियामक ने कुछ राहत दी है, फिर भी यह स्पष्ट नहीं है कि बिना परिसंपत्तियों को बेचे कंपनी अपना कर्ज कैसे चुकाएगी। इसका नाम भारतीय बैंकों से कर्ज लेनेवालों की सूची में कुछ शीर्ष हस्तियों में शामिल है। किंतु अडानी की निजी संपत्ति तेजी से बढ़ी है, जो 2009 में $1.8 बिलियन से 2013 में $2.8 बिलियन हो गई, हालाँकि 'फोर्ब्स' सूची में शामिल अरबपतियों में उनका नाम इस दौरान 397वें नंबर से खिसककर 609 पर आ गया। अडानी कोई अपवाद नहीं हैं। शायद ही कोई ऐसा समूह है, जो आधारभूत संरचना के विकास में सरकार की सहायता के बिना सफल

हो पाए। उदाहरण के लिए, मुंबई, दिल्ली और हैदराबाद के हवाईअड्डों को विकसित करनेवाली तेलुगू उद्यमिता की लहर, दिल्ली और बंगलुरु में मेट्रो रेल परियोजना, कोयले से चलनेवाले बिजली के संयंत्र, बंदरगाह, हाईवे, डैम और मॉल को रफ्तार मुख्यमंत्री वाई.एस. राजशेखर रेड्डी के विकास के आंध्र मॉडल से मिली और राष्ट्रीय स्तर पर बुनियादी ढाँचे के मंत्रालय में बैठे मंत्रियों के सहयोग से सबकुछ संभव हुआ है।

मोदी कहते हैं कि मैं लोगों का चौकीदार हूँ। लेकिन गुजरात के एक पूर्व नौकरशाह, जिन्होंने राज्य की कुछ बीमार कंपनियों की कायापलट का काम किया था, की राय इस बारे में अलग है।

''वे इस मायने में भ्रष्ट नहीं हैं, क्योंकि वे धन के पीछे नहीं भागते हैं।'' अलेक्जेंडर ल्यूक ने कहा।[12]

उद्योगपतियों को दी जानेवाली सब्सिडी पर अधिकारी तर्क देते हैं कि ये वे निवेश हैं, जिनसे आनेवाले समय में राज्य को कहीं अधिक फायदा मिलेगा। उद्योगपति कहते हैं कि चुनाव प्रचार के लिए मोदी द्वारा चुनिंदा औद्योगिक समूहों से मदद लेना सारे उद्योगपतियों से उगाही करने से तो अच्छा ही है। उनका कहना है कि मित्रों का धन उन्हें दी गई मदद के बदले मिलता है, लेकिन उस मदद को उद्योगपति कई गुना भुनाते हैं और यह एक गंभीर बात है। गौतम अडानी ने कहा, ''जब हम 2005 में (SEZ के लिए) जमीन खरीदने पहुँचे तब उसकी कीमत 5,000 रुपए प्रति एकड़ थी। छह साल बाद उसकी कीमत 25 लाख रुपए हो गई।'' 1978 में उदारवाद के बाद चीन में भयंकर भ्रष्टाचार फैल गया था। मित्रों का चलन इतनी तेजी से बढ़ा है, जैसे वसंत ऋतु में बाँस की कोंपलें तेजी से बढ़ती हैं। लेकिन चीन ने ही अपेक्षाकृत बहुत थोड़े समय में अब तक के इतिहास में सबसे अधिक लोगों को गरीबी से बाहर भी निकाला है।

वर्ल्ड बैंक के अनुसार इसका सकल घरेलू उत्पाद $8.2 ट्रिलियन है, जो भारत के $1.8 ट्रिलियन के मुकाबले चार गुना अधिक है। चीन ने जब आर्थिक सुधारों की शुरुआत की थी, तब उसकी जीडीपी उतनी ही थी, जितनी कि भारत की आज है। लोग कहते हैं कि चीन को तरक्की का श्राप

है, क्योंकि कम्युनिस्ट पार्टी तब तक सत्ता को अपने काबू में रख सकेगी जब तक कि लोग बागी न हो जाएँ। मोदी के गुजरात के साथ भी यही बात है। मोदी को जिस हिंदुत्व ने सत्ता में बनाए रखा है, वह विकास के बुलबुले के बिना बुलबुले की तरह ही खत्म हो जाएगी।

मोदी की सरकार के समान ही, गुजरात के पसंदीदा उद्योगपति कार्यान्वयन में शीर्ष पर हैं। मुंद्रा पोर्ट जाकर कोई भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। यहाँ बहुत बड़े जहाज भी आ सकते हैं। कार्गो लाने और ले जाने के मामले में यह देश का दूसरा सबसे बड़ा बंदरगाह है। अडानी का कहना है, ''मैं चाहता हूँ कि मुंद्रा को एक निजी संपत्ति के रूप में न देखा जाए बल्कि एक राष्ट्रीय संपत्ति के रूप में माना जाए।'' उसके साथ जुड़ा अल्ट्रा मेगा पावर प्लांट अद्भुत है। हालाँकि यह कोयले से चलता है, फिर भी इटालियन मार्बलवाली फर्श पर इंस्ट्रूमेंटेशन पैनल की चमक ऐसी लगती है मानो वह कोई शानदार होटल हो। जामनगर में रिलायंस की रिफाइनरी भी निर्माण की एक मिसाल है। जटिलता के पैमाने पर जिसे नेल्सन सूचकांक कहा जाता है, यह बहुत ऊँचे स्थान पर है, क्योंकि यह एक साथ अनेक प्रकार के कच्चे तेलों का प्रसंस्करण कर सकता है। हजीरा में एस्सार का स्टील प्लांट ऐसा है, जो भिन्न-भिन्न प्रकार के उत्पादों को बनाने का अकेला सबसे बड़ा स्थल है।

जनवरी 2013 में उन्होंने गुजरात इंटरनेशनल फाइनेंस टेक-सिटी या GIFT में दो में से एक 28 मंजिला टावर का उघाटन किया। ऐसे ही कुछ और टावर बनाए जाने थे। यह एन्क्लेव अहमदाबाद एयरपोर्ट से बारह किलोमीटर की दूरी पर था और उसका विकास अंतरराष्ट्रीय वित्तीय सेवाओं के केंद्र के रूप में किया जा रहा था, जो मुंबई को टक्कर देनेवाला था। 3.5 वर्ग किलोमीटर के इलाके, और 8.5 मिलियन वर्ग फीट के बिल्ट अप स्पेस के साथ, उम्मीद की गई कि यह लंदन, पेरिस, न्यूयॉर्क और पुडौंग (शंघाई) जैसे वित्तीय इलाकों से भी बड़ा होगा।[13]

यह परियोजना गर्व करनेवालों के लिए एक स्मारक बन सकता थी और चीन के कई भूतिया शहरों जैसा हो सकता था। इसकी अवधारणा पिछले दशक के मध्य में तैयार की गई थी, यानी विश्वव्यापी बैंकिंग संकट

से ठीक पहले। गुजरात सरकार ने IL&FS लिमिटेड के साथ साझेदारी की, जो टोल ब्रिज (दिल्ली-नोएडा), म्यूनिसिपल जलापूर्ति (तमिलनाडु का होजरी केंद्र, तिरुपुर) और बाईपास (मध्य प्रदेश के राउ-पीथमपुर) जैसे बुनियादी ढाँचे के निर्माण में अग्रणी भूमिका निभा चुका है।

उन दिनों जब सुधारकों को वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ भारत को एकाकार करने की जल्दबाजी थी और पूँजी खाता-परिवर्तनीयता को अपूर्ण एजेंडे के रूप में देखा जा रहा था, तब वित्त मंत्री पी. चिदंबरम ने पर्सी मिस्त्री समिति से एक रिपोर्ट तैयार करने को कहा था, जिससे कि मुंबई को फिर से अंतरराष्ट्रीय वित्त सेवा का केंद्र बनाया जा सके। यह योजना सोच के लिहाज से जबरदस्त थी। इसने मुंबई का भविष्य अपतटीय परिशिष्ट के रूप में नहीं देखा बल्कि भारतीय वित्त प्रणाली के सभी अंगों के तेज गति से उदारीकरण, नियंत्रण मुक्त करने और वैश्वीकरण के पर्याय के रूप में देखा।

रिपोर्ट में कहा गया कि एक महाद्वीपीय अर्थव्यवस्था के रूप में भारत को हर हाल में अंतरराष्ट्रीय वित्त सेवाओं का उत्पादक और निर्यातक बनना होगा तथा तेजी से बढ़ रहे वैश्विक अंतरराष्ट्रीय वित्त सेवाओं के बाजार में अपना दखल बढ़ाना होगा। इसे हासिल करने के लिए मुंबई स्थित वित्तीय केंद्र को न्यूयॉर्क, लंदन और सिंगापुर के वैश्विक वित्तीय केंद्रों से प्रतिस्पर्धा करनी होगी तथा दो चरणों में 2020 तक उन्हें पीछे छोड़ना होगा।

मुंबई का समर्थन करनेवालों का कहना था कि भारतीय ग्राहकों ने 2005 में $13 बिलियन की अंतरराष्ट्रीय वित्त सेवा ली थी। उनका अनुमान था कि यह रकम बढ़कर $48 बिलियन और उससे भी कहीं अधिक $70 बिलियन तक पहुँच सकती है, बशर्ते अर्थव्यवस्था का विकास नौ प्रतिशत की दर से होता रहे। भारत के पास लोकेशन के मामले में बढ़त थी। यह दिन के समय एशिया और यूरोप से कारोबार कर सकता था। भारत के पास मानवीय पूँजी और दिमाग था, चूँकि भारतीय लोग वैश्विक वित्तीय सेवाएँ देनेवाली कंपनियों में काम करते थे। एक मजबूत प्रतिभूति बाजार और उन्नत ट्रेडिंग प्लेटफॉर्म फायदे का सौदा करानेवाले दिख रहे थे।

किंतु इससे पहले कि मुंबई वहाँ तक पहुँचे, बहुत कुछ करना बाकी था।

सबसे पहले, भारत को स्थिर और विश्वसनीय वृहद आर्थिक नीतियों को अपनाना होगा। इसे अपना वित्तीय घाटा कम करना होगा, केंद्र और राज्य दोनों ही स्तरों पर, साथ ही विवेकपूर्ण राजकोषीय नीतियाँ अपनानी होंगी। जीडीपी के अनुपात में सार्वजनिक कर्ज को कम करना होगा। भारत को पूँजी-परिवर्तनीय बनना होगा। मुंबई के बुनियादी ढाँचे और शासन को बेहतर बनाना होगा, जिससे कि वहाँ अंतरराष्ट्रीय प्रतिभा को आकर्षित किया जाए और विश्वस्तरीय जीवन-शैली का विकास हो। कानून का पालन सख्ती से करवाना होगा तथा सुरक्षा में किसी भी प्रकार की चूक नहीं होनी चाहिए। महानगर को सारे समुदायों और बाहर से आनेवालों के प्रति सहिष्णु बनना होगा।

मुंबई को एक अंतरराष्ट्रीय वित्तीय केंद्र बनाने की परियोजना राष्ट्रीय उद्‌देश्य और दृढ़ इच्छाशक्ति का एक पर्याय बन सकता था। किंतु दिल्ली और मुंबई में बैठे नेता इसके प्रति लापरवाह रहे। 2007 में तैयार किए गए खाके पर चर्चा तक नहीं हो पाई।

यहीं से मोदी ने शुरुआत की। उन्हें उम्मीद थी कि मुंबई का वित्तीय समुदाय, जो इसके ढहते बुनियादी ढाँचे से तंग आ चुका होगा, वह दूसरे विकल्प को चुनेगा, बशर्ते अहमदाबाद को एक द्रुतगामी रेल लिंक से जोड़ दिया जाए। लेकिन वित्तीय केंद्रों में एक पारिस्थितिकी तंत्र होना चाहिए, जिससे वहाँ विश्व स्तर का जीवन संभव हो। अहमदाबाद उस मापदंड पर खरा नहीं उतरता। वृहद आर्थिक नीतियों (ऊपर बताया गया है) का भरोसा मिले बिना GIFT एक रीयल स्टेट बनकर रह जाएगा। शैलेष पाठक, जो एक इनवेस्टमेंट बैंकर हैं और निर्माण उपकरणों के लिए वित्त उपलब्ध कराते हैं, साथ ही जो इस परियोजना से भी परिचित हैं, उनका मानना है कि GIFT सिटी वित्तीय सेवाओं और प्रौद्योगिकी कंपनियों के लिए बंगलुरु तथा हैदराबाद के समान ही बैंक ऑफिस जैसी है।

इस बीच चीन ने इस क्षेत्र में भी भारत को पछाड़ दिया है। सितंबर 2012 में इसने शंघाई फ्री ट्रेड जोन को किसी हांगकांग जैसे एन्क्लेव की तरह लॉन्च किया, जहाँ पूँजी और उत्पाद मुक्त रूप से उपलब्ध हैं। शंघाई जोन का प्रचार स्वयं प्रधानमंत्री ली केकियांग करते हैं, जो चाहते हैं कि यह

बेधड़क वित्तीय सुधारों का एक केंद्र बन जाए।

साबरमती का सौंदर्यीकरण भी बहुत कुछ कहता है। यह एक उदाहरण है, जिससे नदी के तट पर बसे भारतीय शहरों, जैसे दिल्ली को भी सीख लेनी चाहिए। पहले जो एक नदी का सूखा तट था, जहाँ नाले और गंदगी का अंबार था, वहाँ अब बाईस किमी. लंबा विस्तार है, जो एक समान रूप से 275 मीटर चौड़ा है। नदी में नर्मदा बाँध का पानी छोड़ा जाता है, जो एक बैराज में इकट्ठा होता है और फिर वहाँ से आता है। नदी के तट पर पचास फुट नीचे तक कंक्रीट की दीवार है और यह पिछले 100 वर्षों में आए बाढ़ के स्तर से भी ऊँची है। पहले जो कचरा नदी में गिरता था, अब उसे पाइप से ट्रीटमेंट प्लांट तक ले जाया जाता है। किनारों को भर दिया गया है और उसे धरती पर छोटी पहाड़ी का रूप दे दिया गया है। लगभग 202 एकड़ जमीन खाली कराई गई है। एक अधिकारी ने अपनी गाड़ी में हमें घुमाते हुए बताया कि इस पर खर्च हुए 1,150 करोड़ रुपए को दफ्तर, होटल और पॉश अपार्टमेंट बनाकर वसूला जाएगा, जिनके लिए उनतीस हेक्टेयर का इलाका निश्चित किया गया है। एक बार निर्माण कार्य पूरा हो जाए, तो यह पूरा इलाका मुंबई के मरीन ड्राइव जैसा नजर आएगा। इस परियोजना का खाका फ्रांस के एक आर्किटेक्ट ने 1965 में तैयार किया था। यहाँ काम पिछले दशक के आरंभ में शुरू हुआ और अंत आते-आते निर्माण ने जोर पकड़ लिया। मनोरंजन की सुविधाओं के अलावा, इवेंट ग्राउंड, प्रदर्शनी स्थल और दूर-दूर तक फैली हरियाली, रविवार को लगनेवाला एक पारंपरिक कबाड़ी बाजार भी है, जहाँ 1,200 विक्रेता आते हैं। यहाँ से धोबी घाट को 'लाउंड्री कैंपस' में शिफ्ट किया गया है। यहाँ 200 वर्गाकार कमरे हैं, जिनमें से हर एक में बिजली और पानी के कनेक्शन हैं, ताकि वाशिंग मशीन चलाई जा सकें। लगभग 10,000 परिवारों को दूसरी जगह पर ले जाकर बसाया गया है और उन्हें नए घर दिए गए हैं, लेकिन इससे पहले उन्हें गुजरात हाईकोर्ट का दरवाजा खटखटाना पड़ा था।

विकसित की गई जमीन की कीमत बढ़ाकर बुनियादी ढाँचे के निर्माण में आनेवाली लागत को वसूलने की तरकीब चीनियों से सीखी गई है, जिसे

अहमदाबाद म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन ने साबरमती योजना में लागू किया। चीन की प्रांतीय सरकारों की आमदनी जितनी नहीं होती, उससे अधिक उन पर देनदारी का बोझ होता है। राजस्व इकट्ठा करने की आवश्यकता से पता चलता है कि चीन में बुनियादी ढाँचा खड़ा करने का एक उत्सव मनाया जाता है। चूँकि जमीन पर सरकार का स्वामित्व है, इस कारण उसे खाली कराना आसान है। 1992 से 2005 के बीच, बीस मिलियन चीनी किसानों को जमीन से हटाया गया और 21 प्रतिशत खेती के योग्य जमीन को गैर-कृषि कार्यों के लिए खाली कराया गया। इसके खिलाफ बहुत बड़ी संख्या में लोगों ने इकट्ठा होकर प्रदर्शन किया। भारत के शहरों में बुनियादी ढाँचा खड़ा करने का खर्च जमीन बेचकर जुटाने का चलन तेजी से बढ़ रहा है।

हालाँकि गुजरात में शहरीकरण तेजी से बढ़ रहा है। लगभग 43 प्रतिशत आबादी शहरों में रहती है, फिर भी भूमि अधिग्रहण के खिलाफ किसानों का विरोध अपेक्षाकृत दबे स्वर में ही हुआ है। 1987 से पहले तक एक कानून था कि जमीन उन्हें ही बेची जा सकती है, जो उस इलाके के आठ किलोमीटर के दायरे में रहते हैं। इस कानून को 1987 में कांग्रेस सरकार ने कुछ लचीला बनाया। 1995 में बीजेपी सरकार ने इसे पूरी तरह समाप्त कर दिया। यही नहीं, उसने दस हेक्टेयर तक की जमीन को गैर-कृषि कार्यों के लिए प्रयोग में लानेवाला कानून भी बनाया। मोदी सरकार ने 2003 में कुछ और रियायतें दीं। किराएदारी और शहरी सीमा कानून के तहत जमीनों के आवंटियों और जिन्हें बंजर जमीन दी जाती है, वे उसे एक होल्डिंग अवधि के बाद बेच सकते हैं, और गैर-कृषि कार्यों के लिए भी प्रयोग में ला सकते हैं। चीनियों के समान ही, मोदी अरबनाइजेशन, यानी ग्रामीण इलाकों में शहरों जैसी सुविधा देना चाहते हैं और नए शहर बसाना चाहते हैं। बंदरगाहों के साथ-साथ लगभग आधा दर्जन निवेश के क्षेत्रों को विकसित करने की योजना है और दिल्ली से मुंबई के बीच माल ढुलाई के लिए विशेष रेल लाइन बिछाई जा रही है। इनमें से कुछ सचमुच चीन के विशेष क्षेत्र जितने बड़े होंगे, मसलन एक तो धोलेरा में बन रहा है।

किंतु नए शहरों के लिए पुनर्विकास का सहकारी रास्ता पकड़ा जा रहा है, जिससे कि सामाजिक टकराव को कम किया जाए और प्रत्यक्ष निवेश

हो। भूस्वामियों को पूरी जमीन छोड़ने की बजाय बस उतनी ही जमीन देनी पड़ती है, जिससे कि आधारभूत संरचना, जैसे सड़कों, नालों और सीवरों का निर्माण करने के लिए आवश्यक हो। जो जमीन बच जाती है, उससे उनके नुकसान की भरपाई बड़े आराम से हो जाती है। समय-समय पर कीमतों में संशोधन से उन्हें बाजार की दरों के बराबर लाया जाता है। सरकार को अधिक पैसे देने पर भी ऐतराज नहीं है। इस तरीके से ही उसने 2013 की अंतिम तिमाही में 2,500 हेक्टेयर जमीन की खरीदारी की और नए राष्ट्रीय कानून को पीछे छोड़ दिया, जो ऐसी खरीदारी को न केवल कठिन बल्कि महँगा भी बनाता है।[14] गुजरात में हालाँकि जमीन छीने जाने का विरोध पश्चिम बंगाल और महाराष्ट्र की तरह नहीं हुआ है, फिर भी अंदर-ही-अंदर उबलता असंतोष बीच-बीच में फूट पड़ता है।

2011 में अप्रैल के पहले हफ्ते में कानुभाई कलसारिया से मेरी मुलाकात गांधीनगर के एमएलए अपार्टमेंट में हुई, तब वे सूजे हुए पैर की वजह से आराम कर रहे थे, जिस पर क्रेप बैंडेज चढ़ा था। तटीय शहर माहुवा से 300 किमी. लंबी पदयात्रा का नेतृत्व कर राज्य की राजधानी तक पहुँचने के उन्नीस दिन बाद भी उनके पैर दुख रहे थे। उनका विरोध एक सीमेंट प्लांट को लेकर था, जिसे डिटर्जेंट निर्माता करसनभाई पटेल अपने इलाके में लगा रहे थे। कलसारिया इस बात से नाराज थे कि प्रोजेक्ट की योजना गुपचुप तरीके से बनाई गई। वह तीन बार विधायक रह चुके थे, फिर भी उन्हें इस परियोजना की जानकारी नहीं दी गई। ''क्या मुझे विश्वास में लेने का उनका दायित्व नहीं बनता था?'' उन्होंने पूछा।

प्लांट लगानेवाले उद्योगपति स्वयं बड़े-बड़ों को झुकानेवाले उद्योगपति थे। अपने बेहद कम दाम वाले वाशिंग पाउडर से उन्होंने शक्तिशाली हिंदुस्तान यूनिलीवर, और एंग्लो-डच कंज्यूमर गुड्स कॉरपोरेशन को अपनी मार्केटिंग तथा कीमतों से जुड़ी रणनीति पर पुनर्विचार करने पर मजबूर कर दिया था। पटेल मोदी समर्थक थे। वे उन उद्योगपतियों में शामिल थे, जिन्होंने रीसर्जेंट ग्रुप ऑफ गुजरात का गठन किया था, किंतु अब वे लोगों की आँखों का काँटा बन गए थे।

कलसारिया एक जनरल सर्जन हैं, जो एक परोपकारी ट्रस्ट के अस्पताल में प्रैक्टिस करते हैं तथा कम पैसे लेकर सर्जिकल ऑपरेशन करते हैं। उनका मानना है कि राजनीति को भी मेडिकल के पेशे की तरह चोट पहुँचाने की बजाय घावों को भरने का काम करना चाहिए। उस लिहाज से वे एक राजनीतिक पार्टी में फिट नहीं बैठ रहे थे, जिसका अपना एक एजेंडा है। कलसारिया पर दबाव था कि वे बीजेपी से इस्तीफा दे दें, लेकिन वे इस्तीफा देने को तैयार नहीं थे। उनका कहना था कि उनकी जवाबदेही लोगों के प्रति है। स्थानीय सद्‌भावना के चलते उन्हें पार्टी से निकाला नहीं जा रहा था। कलसारिया विकास के विरोधी नहीं थे। वे किसी भी फैक्टरी का, जैसे कार की फैक्टरी का स्वागत कर सकते थे। लेकिन उनके विचार से एक सीमेंट प्लांट सात गाँवों को बरबाद कर देगा। यह उस बाँध के पानी को सोख लेगा, जिसे खड़ा करने में उन्होंने मदद की थी और जो समुद्र में उठनेवाली ऊँची लहरों का पानी घुसने से रोकने के लिए बनाया गया था। सीमेंट फैक्टरी की आवश्यकता को पूरा करने के लिए चूने के पत्थर का खनन उपजाऊ जमीन को बंजर बना देगा। उस प्लांट से कुछ सौ नौकरियाँ सीधे तौर पर जरूर पैदा हो जाएँगी, लेकिन प्याज सुखानेवाले और कपास छाँटनेवाली अनेक इकाइयों का क्या होगा, जिनमें 20,000 लोग काम करते हैं?

उस समय के उद्योग सचिव ने इस मुद्‌दे को अहम का टकराव बताया था। चूने की खान बंजर जमीन पर थी। सीमेंट कंपनी ने भरोसा दिया था कि जलाशय तक बारिश के पानी को लानेवाले रास्तों को बंद नहीं किया जाएगा। यही नहीं, कुछ और रास्ते बनाए जाएँगे। कुल मिलाकर इस परियोजना से लोगों को फायदा ही मिलेगा।

कलसारिया इस प्लांट के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट चले गए। केंद्र में बैठी कांग्रेस सरकार, जो मोदी को तंग करने का मौका तलाशती रहती थी, उसने कोर्ट में कहा कि उसे परियोजना के बारे में गुमराह किया गया था और इस कारण उसने पर्यावरण संबंधी स्वीकृति को वापस ले लिया है। सीमेंट परियोजना अब शुरू नहीं की जा सकती है। कलसारिया ने बीजेपी छोड़ दी और सद्‌भावना के मंच से चुनाव मैदान में उतरे। उनकी बुरी तरह से हार हुई।

उसी प्रकार, जैसे 2004 के चुनावों में चंद्रबाबू नायडू की हार को उनकी सूझ-बूझ भरी आर्थिक नीतियों की थोक में अस्वीकृति नहीं माना जा सकता है। कलसारिया ने इसे वोटरों की अस्वीकृति नहीं माना और खराब रणनीति को जिम्मेदार ठहराया।

असंतोष को समझने में मोदी थोड़ा चूक गए। कलसारिया औद्योगिक परियोजना पर पुनर्विचार की माँग लोगों की खातिर कर रहे थे। वे मुख्यमंत्री की सत्ता को चुनौती नहीं दे रहे थे। मोदी इन दोनों के अंतर को नहीं समझ सके।

संभवत: मोदी चीन की औद्योगिक नीति को पसंद करते हैं। उन्होंने उस देश का दौरा भी एक से अधिक बार किया है। अमेरिका और यूरोपियन यूनियन की अपेक्षा चीन उन्हें मानवाधिकारों पर लेक्चर नहीं देता है। इस लिहाज से अपने खराब रिकॉर्ड के कारण चीन सभी प्रकार की सरकारों के साथ व्यापार करने के लिए तैयार हो जाता है। उसका सिद्धांत है कि किसी देश की सीमा के अंदर जो कुछ होता है, उसकी चिंता उस पर ही छोड़ देनी चाहिए। 2011 के दौरे में चीनियों ने मोदी का जबरदस्त स्वागत किया। मोदी ने प्रशंसा करते हुए कहा कि चीनी कंपनियाँ गुजरात में काम करने में दिलचस्पी रखती हैं। उन्होंने एक मंदारिन स्कूल की स्थापना का भी प्रस्ताव रखा। चीन के उदय से मोदी सतर्क हैं, लेकिन राष्ट्रवाद के साथ आर्थिक नीतियों का मेलजोल उनके अपने नजरिया से मेल खाता है।

यह एक ऐसा दर्शन है, जिसे एक ऐसी कसौटी पर कसा जाना है, जो भारत की कल्पना एक जीवंत और दयालु समाज के रूप में करता है, न कि महज एक संपन्न अर्थव्यवस्था के रूप में देखता है, जो अतीत की भव्यता में खोया रहे। उनके लिए मोदी के शासनवाला गुजरात एक ऐसा प्रयोग है, जहाँ नेहरू की उदार, धर्मनिरपेक्ष सोच के ऊपर भारत की गाथा सशक्त हिंदू राष्ट्रवादी कलम से लिखी जा रही है।

**संदर्भ—**

1. इंडियाज ग्वांगडोंग, 'इकोनॉमिस्ट', 7 जून, 2011

2. वाइब्रेंट गुजरात, 2013 प्रेजेंटेशन
3. गुजरात सोशियो-इकोनॉमिक सर्वे। सन् 2003 में हड़ताल और तालाबंदी की बयालीस घटनाएँ हुईं, सन् 2008 में बारह और 2011 में अट्ठाईस, इसमें शामिल श्रमिकों की संख्या सन् 2003 में 7,973 से घटकर 2006 में 8,215 और 2010 में 2,966 हो गई। नुकसान होनेवाले श्रमदिवस सन् 2003 में 1,22,098, जो 2011 में घटकर 35,873 रह गए
4. 12 जनवरी, 2011 में पाँचवाँ वाइब्रेंट गुजरात निवेश सम्मेलन
5. अदिति फडनीस, 'पॉलिटिकल प्रोफाइल्स ऑफ कबाल्स ऐंड किंग्स' बिजनेस स्टैंडर्ड, 2009
6. फिक्की और बेन एंड कंपनी की बुकलेट, 'एमपॉवरिंग इंडिया : बेटर G2B रिलेशंस'
7. प्रो. इंदिरा हीरावे ने 28 मई, 2011 को EPW में दावा किया कि भारत सरकार द्वारा इसे दिसंबर 2003 में स्वीकृति मिली थी।
8. कंपनी की वार्षिक रिपोर्ट 2013
9. द *हिंदू*, 4 मार्च, 2013
10. एम राजशेखर, *इकोनॉमिक टाइम्स*, 5 सितंबर, 2013; इकोनॉमिक सर्वे के अनुसार एक डॉलर की कीमत 43 रुपए के आधार पर।
11. वेबसाइट का कहना है कि 2013 में कारोबार $8.7 बिलियन का था। समूह के कारोबार की शुरुआत के बाद से ही विकास 'चौगुनी' दर से हुआ है, ऐसा चेयरमैन के संदेश में है, जो 4 मार्च, 2014 को वेबसाइट में दर्ज है।
12. *इंडियन एक्सप्रेस*, यामिनी लोहिया से साक्षात्कार, 5 मार्च, 2014

13,14. According to Maheshwar Sahu, who was industries secretary till February 2014, 2,500 hectares was acquired by GIDC from September to December 2013, in Sanand, Dahej and Mehsana.

□

# 6

# मौकापरस्त समावेशी

***क्या न्याय के बिना शासन अच्छा हो सकता है? राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षा के कारण मोदी को अब उसी समुदाय की ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाना पड़ रहा है, जिसकी उन्होंने मुख्यमंत्री रहते हुए कई वर्षों तक उपेक्षा की। क्या सत्ता का मद और चुनावी राजनीति की मजबूरियाँ गहराई तक समाए कट्टर सोच में कुछ बदलाव ला सकती हैं?***

इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप किस समुदाय से आते हैं, आपके पूजा-पाठ की पद्धति क्या है, मतलब इस बात से है कि आपके अंदर कितनी भूख और इच्छा है। हमें हर किसी को विकास के सूत्र में बाँधना है।

सुबह का आधा समय बीत चुका था। सूरज ने साबरमती नदी के किनारे मौजूद दर्शकों पर अपनी तिरछी नजर तान दी थी। मीडिया अच्छी-खासी संख्या में जुटा था। अतिथियों से भी ज्यादा संवाददाता और कैमरामैन मौजूद थे। लेकिन मोदी पर कोई असर नहीं हो रहा था। उन्होंने देश के 160 मिलियन मुसलमानों को 'सारे भारतीयों के लिए विकास की दृष्टि' विषय पर संबोधित करना शुरू कर दिया। यह अवसर अहमदाबाद के मुसलमानों के व्यापार पर आधारित एक प्रदर्शनी का था। वहाँ जो कुछ प्रदर्शित किया गया था, यदि उसे नमूना माना जाए, तो तसवीर बहुत आशाजनक नहीं थी। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि 2002 के दंगों के बाद गुजरात में हुए

आर्थिक सुधार से यह समुदाय किस प्रकार अछूता रहा, जबकि उस समुदाय ने 2002 के बाद ऊपर उठने की भरसक कोशिश की थी। इसमें प्रॉपर्टी के व्यवसायी, रेस्टोरेंट चलानेवाले और कार विक्रेता (राज्य सरकार के विभागों के अतिरिक्त) हिस्सा ले रहे थे। मैन्युफैक्चरिंग जगत् से केवल एक सदस्य था, जो औद्योगिक वाल्व का सप्लायर था। 1890 से ही कारोबार चलाने के बावजूद उसकी सालाना आमदनी बहुत कम थी। पारिवारिक विभाजन और दंगों के दौरान भयंकर बरबादी ने उसके विकास को अवरुद्ध कर दिया था।

उस फैक्टरी की स्थापना इस कार्यक्रम के आयोजक जफर सरेशवाला के परदादा ने किया था। जफर एक इसलामी बैंकर हैं, जिन्होंने दंगों के दौरान भारी नुकसान झेला था और अपने परिवार को लंदन भेजने तक की तैयारी कर ली थी। मोदी के विरोधी रह चुके सरेशवाला अब मोदी के समर्थक बन गए हैं। महँगी जर्मन कारों की डीलरशिप लेने के बाद वे सबसे यही कहते सुने जाते हैं, ''जो हो गया सो हो गया, अब आगे बढ़ जाना चाहिए।'' उनकी इस दलील से उनके समुदाय में ही ज्यादा लोग इत्तेफाक नहीं रखते हैं। हिंदू कारोबारियों ने, जिनमें मुख्य तौर पर कार बेचनेवाले शामिल थे, प्रदर्शनी के विषय 'साथ फलने-फूलने के लिए कारोबारी सद्भाव' का नाममात्र के लिए समर्थन किया था। जहाँ तक गुजरात के समाज की बात है तो उसकी सच्चाई एक प्रॉपर्टी के पोर्टल से जाहिर होती है। पोर्टल में शहर के दो दर्जन अपार्टमेंट का जिक्र है, जिनमें मुसलमानों को पैसा लगाने की मनाही नहीं है। गुजरात चैंबर्स ऑफ कॉमर्स ऐंड इंडस्ट्री ने इसमें हिस्सा लेने से इनकार कर दिया। यह विशुद्ध रूप से कारोबारी फैसला हो सकता है या संभवत: संप्रदायों से दूरी बनाने की कोशिश भी मानी जा सकती है।

जहाँ तक विजन स्टेटमेंट की बात है, तो मोदी के भाषण में कहीं अगर-मगर नहीं था। उन्होंने सारे तीर निशाने पर ही चलाए। मोदी ने कहा कि मुसलमान गुजराती लोकाचार के अनुसार चलते हैं। उन्होंने अपनी मेहनत से खुद को खड़ा किया है और कच्छ जैसे जिलों में जबरदस्त तरक्की कर रहे हैं, जहाँ उनकी अच्छी-खासी तादाद है। क्या उन्होंने 2003 में पतंगों के उत्पादन को (जिसे मुसलमानों की विशिष्टता माना जाता है) कारगर बनाने

के लिए तमिलनाडु की एक एजेंसी का सहयोग नहीं लिया था? अफसर उनके फैसले पर दबी हँसी हँस रहे थे। लेकिन काम के तरीकों का अध्ययन करने के बाद उस एजेंसी ने चौंतीस गुप्त प्रक्रियाओं को आनन-फानन में चौदह चरणों में समेट दिया और 35 करोड़ रुपए का उद्योग 700 करोड़ रुपए का कारोबार बन गया। (दो हफ्ते पहले इंटरनेशनल काइट फेस्टिवल के उद्घाटन समारोह के समय यह 500 करोड़ रुपए का था!)

मोदी ने कहा था कि वे मुसलमानों की कलात्मकता और उँगलियों की दक्षता के कायल हैं। उन्होंने मुसलमानों का हौसला बढ़ाते हुए कहा कि उन्हें राज्य के कौशल बढ़ानेवाले कार्यक्रमों का भरपूर लाभ उठाना चाहिए। क्या मुसलमान कशीदाकारी और सिलाई में महारत नहीं रखते हैं? और क्या गुजरात कपास का एक बड़ा उत्पादक नहीं है?

तो फिर भारत कपास का निर्यात करने की बजाय दुनिया भर के लिए कपड़े बनाकर बेचने का कारोबार करे तो उसे क्या नुकसान हो जाएगा। उन्होंने 5 एफ (फार्म-फाइबर-फैब्रिक-फैशन-फॉरेन मार्केट) के रामबाण नुसखे को यहाँ भी दोहरा दिया, जिसमें भारत को ब्रांडेड कपड़े का निर्यातक बनाने की बात होती है। पिछले दशक की शुरुआत में टेक्सटाइल निर्यात कोटा पर प्रतिबंध को पूरी तरह हटा लिये जाने का चीन ने जबरदस्त फायदा उठाया। भारत में श्रम कानूनों के चलते और कारोबार के लिए अच्छा माहौल न होने के कारण कपड़े का व्यापार वस्तुओं का रोजाना जैसा कारोबार बनकर रह गया है। अब समय आ गया है कि हम जी-जान से जुट जाएँ, बड़े पैमाने पर नौकरियाँ पैदा करें और उत्पादों की गुणवत्ता बढ़ाएँ। उन्होंने मुसलिम महिलाओं से वादा किया कि उन्हें लिंग के आधार पर समानता दिलाएँगे, साथ ही यह उम्मीद जताई कि उनमें से कुछ उद्यमी भी बन जाएँगी। उन्होंने उन्हें शांति और सुरक्षा दी है, दंगे नहीं भड़के हैं।

"मैं बीजेपी और मोदी में बड़ा अंतर देखता हूँ," सरेशवाला ने कहा, "हमें लगता है कि हम उन पर भरोसा कर सकते हैं।" सरेशवाला का मानना है कि मोदी पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का प्रभाव बहुत कम है। संघ और उससे जुड़े वीएचपी के जिन नेताओं ने मोदी का कद छोटा करने की

कोशिश की या उन्हें बेवकूफ दिखाने का प्रयास किया, मोदी ने उन्हें उनकी सही जगह दिखा दी। किंतु इस बात के प्रमाण बहुत कम हैं कि उन्होंने पूरी तरह से उनकी विचारधारा का त्याग कर दिया और हिंदुओं की श्रेष्ठता में अब विश्वास नहीं करते। ''सरेशवाला कहते हैं, ''मोदी राज्य के लिए सही हैं और हम राज्य का हिस्सा हैं। मुसलमानों से किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता है।''

''मोदी ने इस समुदाय के साथ जुड़ने के लिए कुछ नहीं किया है।'' ऐसा कहना है हनीफ लकड़ावाला का, जो अहमदाबाद के एक मनोचिकित्सक हैं, और एक एनजीओ के माध्यम से उस समुदाय के लोगों का इलाज करते हैं। ''मुसलमानों ने अभी माफ नहीं किया है।''

2002 के दंगों के बाद से ही मोदी प्रशासन पर मीडिया की पैनी नजर बनी हुई है और इस कारण नए दंगे नहीं भड़के हैं। मुसलिम अंडरवर्ल्ड, जो अवैध शराब की बिक्री पर जिंदा था और जो खुद को संप्रदाय का रखवाला करार देता था, उसका नामोनिशान मिटा दिया गया है। 2002 में गोधरा स्टेशन पर खड़ी ट्रेन में बर्बरतापूर्वक हिंदू कारसेवकों को जलाकर मारने की घटना के बाद जैसी भयंकर प्रतिक्रिया हुई, उससे मुसलमानों को लगने लगा है कि अपने गुस्से को जाहिर करने के बजाय उसे दबाकर रखना ही बुद्धिमानी है।

गुजरात में ऐसा पहली बार हुआ है, जब इतने लंबे समय तक शांति बनी रही है, हालाँकि सांप्रदायिक झड़प से दागदार इतिहास के इस दौर का फायदा मुसलमानों को हुआ है। लगभग 60 प्रतिशत मुसलमान शहरों में रहते हैं और अपना ही धंधा चलाते हैं, जैसे रिक्शा चलाना या गाड़ियों की मरम्मत का काम लगभग आधी आबादी का मुख्य पेशा है।[1] बाकी के 10 प्रतिशत दिहाड़ी-मजदूर हैं। जब भी दंगों के कारण बाजार बंद होते हैं तो सबसे ज्यादा नुकसान इसी तबके का होता है। हिंदुओं के मुकाबले नियमित तनख्वाह कमाने के मामले में मुसलिम 10 प्रतिशत के हिसाब से पीछे हैं। ग्रामीण इलाकों में भी 80 प्रतिशत से ज्यादा या तो खुद कोई धंधा करते हैं या मजदूर हैं।[2] दंगों के बाद हर बार सामान्य स्थिति बहाल होते-होते यह समुदाय बहुत पीछे चला जाता है।

मोदी इस बात को पुरजोर तरीके से उठाते हैं कि मुसलमान उनके राज्य में देश के अन्य हिस्से की तुलना में बेहतर स्थिति में हैं और यह बात कुछ हद तक सही भी है। केंद्र सरकार द्वारा गठित सच्चर आयोग ने देश भर के मुसलमानों की स्थिति का जायजा लेने के बाद 2006 में अपनी रिपोर्ट सौंपी, जिसमें कहा गया कि गुजरात के सार्वजनिक क्षेत्र के 8.5 प्रतिशत उच्च पदों पर मुसलमान काबिज हैं और ग्रुप ए की नौकरियों में उनका हिस्सा दस प्रतिशत है। यह उनकी आबादी के अनुपात में है। सामान्य वर्ग की नौकरियों में मुसलमानों का हिस्सा कुछ अधिक है 16 प्रतिशत के लगभग। पश्चिम बंगाल में, जहाँ हमेशा से ही मुसलमानों के प्रति सरकार संवेदनशील रही है, मुसलमान केवल एक प्रतिशत उच्च पदों पर हैं और सामान्य वर्ग की नौकरियों में उनकी हिस्सेदारी छह प्रतिशत है। कुल आबादी में उनका हिस्सा एक चौथाई है और इस लिहाज से यह अनुपात बहुत कम है। केरल में हालाँकि मुसलमानों को अधिक नौकरियाँ दी जाती हैं, फिर भी वहाँ आबादी के हिसाब से नौकरियों में उनका प्रतिनिधित्व नहीं है।

गुजरात के सरकारी तंत्र में मुसलमानों का हिस्सा बहुत कम है। उच्च और निम्न प्रशासनिक पदों पर उनका प्रतिनिधित्व क्रमशः 3.4 और 5.5 प्रतिशत था। अधिकांश मुसलमान परिवहन विभाग में काम करना चाहते हैं और वह भी ड्राइवरों के रूप में।[3] समिति के सदस्य, अबुसालेह शरीफ का मानना है कि अधिकांश सरकारी और सार्वजनिक नौकरियों में मुसलमानों की नियुक्ति मोदी के सत्ता सँभालने से पहले हुई। हालाँकि इस बात की पुष्टि नहीं की जा सकी है।[4]

मोदी 'सबके लिए न्याय और किसी का भी तुष्टीकरण नहीं' की नीति को लागू करने में इतने सख्त हैं कि उससे किसी को भी खीज हो सकती है। शिक्षा के निजी और सामाजिक, दोनों ही फायदे हैं। एक निरक्षर व्यक्ति समाज का बेहिसाब नुकसान करता है। बेचारजी में सितंबर 2002 में दिए अपने एक भाषण में मोदी ने इस बात को स्वीकार किया। उन्होंने कहा था, "मदरसा जानेवाला एक बच्चा प्राथमिक शिक्षा न मिलने से राज्य के लिए बोझ बन जाता है।"[5]

2001 की जनगणना के अनुसार गुजराती मुसलमानों की साक्षरता दर हिंदुओं से कहीं अधिक थी। पिछली जनगणना में धर्म के आधार पर आँकड़े उपलब्ध नहीं थे। पिछले बड़े सैंपल सर्वे में, हिंदुओं के मुकाबले कम ही मुसलमानों ने कहा कि वे निरक्षर हैं।[6] किंतु वे जल्दी ही स्कूल छोड़ देते थे। सबसे ताजा आँकड़ों के अनुसार लगभग 78 प्रतिशत मुसलिम स्कूलों में दाखिला लेते हैं, लेकिन उनमें से आधे पंद्रह वर्ष की आयु आते-आते पढ़ाई बीच में ही छोड़ देते हैं। उन्हें पढ़ाई में लगे रहने के लिए उत्साहित करने के मकसद से केंद्र सरकार ने प्री-मैट्रिकुलेशन स्कॉलरशिप की शुरुआत की, जिसमें उन छात्रों को प्रतिवर्ष एक हजार रुपए मिलते हैं, जिनके परिवार की सालाना आमदनी एक लाख रुपए से कम है। पचपन हजार गुजराती मुसलिम छात्रों को स्कॉलरशिप दी गई। राज्य सरकार ने उनके लिए केवल 1.25 करोड़ रुपए सालाना निर्धारित किए थे। किंतु मोदी सरकार ने उसे भी लागू करने से इनकार कर दिया। गुजरात हाईकोर्ट ने अपने आदेश में इस अनुदान को धार्मिक आरक्षण के बजाय सकारात्मक काररवाई माना। हाईकोर्ट में अपील के सारे मौके गँवाने और सुप्रीम कोर्ट में चार साल तक मामले को खींचने के बाद सरकार केस हार गई। उसे स्कॉलरशिप की योजना लागू करने के लिए मजबूर होना पड़ा है, फिर भी उसने अपना विरोध जता दिया।

अहमदाबाद के सरदार पटेल स्टेडियम के पास मोटेरा में एक स्कूल है, जहाँ दिहाड़ी मजदूरों के बच्चे पढ़ते हैं। उसका कहना है कि सितंबर 2013 में उसने 500 छात्रवृत्तियों के लिए आवेदन दिया था। वार्षिक सत्र खत्म होने से दो महीने पहले तक न तो उसे कोई जवाब मिला और न ही छात्रवृत्तियाँ मिलीं। मोदी छात्रवृत्तियों देने में विश्वास नहीं रखते हैं। वे जोर देकर कहते हैं कि धर्म-आधारित आरक्षणों से देश अंततः टूट जाएगा।[7] लेकिन गुजरात सरकार केंद्र सरकार की ओर से मिलनेवाली प्री-मैट्रिक स्कॉलरशिप अल्पसंख्यक छात्रों को मुहैया करा रही है! जहाँ तक मैट्रिक के लगभग 24,000 मुसलिम छात्रों को दी जानेवाली छात्रवृत्तियों की बात है, तो सामाजिक न्याय और आधिकारिता विभाग का दावा है कि उसने 13 करोड़ रुपए खर्च किए हैं।[8]

लोकसभा चुनावों के ऐलान से पहले तक मोदी सरकार ने पर्यटन स्थलों के प्रचार में गुजरात के इसलामी धरोहरों को नजरअंदाज किया। अहमदाबाद की स्थापना पंद्रहवीं सदी में सुल्तान अहमद शाह ने की थी। शहर में कई मशहूर इसलामी स्मारक हैं, जैसे सरखेज रोजा, जामा मसजिद, भद्रा किला, झूलती मीनारें और सिदी सैयद मसजिद (जिसकी जाली या पत्थरों को तराशकर बनाई गई खिड़कियाँ और उन पर पेड़ों की आकृतियाँ शहर की पहचान हैं)। राज्य के अन्य हिस्सों में भी ऐसे ही अनेक ऐतिहासिक इसलामी स्मारक हैं।[9]

मोदी ने दाऊदी बोहरा समुदाय के धर्मगुरु, दिवंगत सैयदना मोहम्मद बुरहानुद्दीन से मुलाकात की और अहमदाबाद में उनकी एक व्यापार प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। फरवरी 2012 तक, सदभावना अभियान और उपवास आदि छह महीने तक चलते रहे। यह सुन्नी मुसलमानों तक पहुँचने का प्रयास था। हालाँकि उस साल विधानसभा चुनाव में मोदी ने एक भी मुसलमान को टिकट नहीं दिया। उसके बाद होनेवाले स्थानीय निकाय के चुनावों में बीजेपी के टिकट पर मुसलिम बहुल जामनगर जिले के सलाया शहर से चौबीस मुसलमान उम्मीदवार चुनाव जीतकर आए, लेकिन वहाँ मतदान का प्रतिशत पूरे राज्य में सबसे कम था। चुनावों से यह संकेत नहीं मिला कि घाव भर गए हैं या सबकुछ ठीक हो गया है।

एक *आँगनवाड़ी* के फर्श पर तीस बच्चे बैठे हैं, जिन्हें बेसब्री से छुट्टी का इंतजार है। इन बच्चों को तब तक बाहर जाने की अनुमति नहीं है, जब तक कि उनके माता-पिता दोपहर बाद उन्हें लेने नहीं आ जाते। इस तरह की बातें होती हैं कि दो बच्चे जो यहाँ से गायब हुए थे, उनकी हत्या कर दी गई थी। दंगों से पहले *आँगनवाड़ी* चलानेवाली महिला का परिवार फर्नीचर का बिजनेस करता था। दंगों में उसका कारोबार स्वाहा हो गया। सरकार की ओर से उसे किराया और बिजली के खर्च की एवज में एक हजार रुपए प्रति माह मिलता है। बच्चों को दिन में दो बार नाश्ता दिया जाता है। खाना मिलने के कारण ही बच्चे यहाँ आते हैं। मोदी के सत्ता सँभालने से पहले भी गुजरात में सांप्रदायिक आधार पर विभाजन स्पष्ट तौर पर था। दंगों ने उन्हें और चौड़ा कर दिया है। अहमदाबाद एयरपोर्ट से एक आधिकारिक मुलाकात के सिलसिले

में गांधीनगर जाने के दौरान मैंने 48 वर्ष के मोहम्मद अली सैयद से बातचीत शुरू कर दी जो सत्रह साल की उम्र से ही टैक्सी चला रहे हैं और अब एक टैक्सी के मालिक भी हैं। उनके भाई को शहर के बाहरी हिस्से में स्थित छोटो चिलोदा इलाके में अपना घर खाली करना पड़ा था। एक निजी विमान कंपनी में इलेक्ट्रीशियन के पद पर तैनात उनके भाई ने 14 लाख रुपए में दो कमरों का एक घर खरीदा था। लेकिन आठ साल बाद जब उन्हें घर का पोजेशन मिला तब एक महीने के भीतर उन्हें वहाँ से निकाल दिया गया। ओनर एसोसिएशन ने कहा कि वह मकान को किराए पर दे सकते हैं, लेकिन खुद नहीं रह सकते हैं। सैयद ने कोर्ट का दरवाजा खटखटाने की सलाह दी, लेकिन उनके भाई झंझट में नहीं पड़ना चाहते थे। सैयद ने कहा कि यहाँ के हालात ऐसे ही हैं। गुजराती लोग मुसलमानों को घर नहीं बेचते और मुसलमान गुजरातियों से घर का सौदा नहीं करते।

दंगों के बाद मुसलमान अपनी पहचान को लेकर सजग हो गए हैं। उनकी पहचान मिट नहीं रही है। वह और स्पष्ट रूप में सामने आ रही है। भले ही *हिजाब* का मजाक यह कहकर उड़ाया जाता हो कि यह शरीर पर चढ़ा ऐसा बस्ता है, जो पहननेवाले को बाहरी दुनिया से काट देता है, लेकिन जुवैरा पुतावाला के लिए यह ऐसी पोशाक है, जो उन्हें सम्मान दिलाती है। वह इसमें घुटन महसूस करने की बजाय खुद को आजाद महसूस करती हैं।

वैसे भी हम इसे पहनकर कहीं भी आ-जा सकती हैं। पुतावाला पुराने शहर में लड़कियों के एक स्कूल की ट्रस्टी हैं। ट्रस्ट की स्थापना 2001 के भूकंप के बाद हुई थी। यह सरकारी सहयोग नहीं लेता, ताकि अपना पाठ्यक्रम खुद तय कर सके। गणित के अलावा यहाँ विज्ञान, अंग्रेजी, गुजराती और सोशल साइंस तथा अरबी और कुरान की शिक्षा दी जाती है। प्रिंसिपल जाहेदा देसाई नैतिक मूल्यों पर जोर देती हैं, जिन्हें आप कुंठित अधीनता का नियम कह सकते हैं। वह और जुवैरा जवान हैं और फर्राटे से अंग्रेजी में बात करती हैं। देसाई कहती हैं कि मुसलमान खुलकर बात करते हैं और उनमें अधिक आत्मविश्वास है। स्कूल में छोटी लड़कियाँ *सलवार-कमीजों* के ऊपर सिर को एक कपड़े से ढकती हैं, जो उनके गले को छिपाता है। एक बोर्ड पर लिखा

है कि पुरुष यहाँ से दूर रहें। लकड़ावाला के अनुसार बाहर खड़े रहने का मतलब बाकी के समाज से कटने जैसा है। मुसलिम समुदाय बाहर रहने और घुलने-मिलने का समर्थन करनेवालों के बीच पिस रहा है।

भेदभाव प्रशासन के सारे स्तरों पर देखा जा सकता है। लकड़ावाला का कहना है कि सरकार मुसलिम बहुल इलाकों जैसे अहमदाबाद के जुहापुरा और बॉम्बे होटल में नए स्कूल खोलने से कतरा रही है, जबकि उन इलाकों की आबादी बढ़ती जा रही है। उनका कहना है कि कल्याण मेले में गरीबों को दिए जानेवाले दान में महज 1.5 प्रतिशत मुसलमानों को सहायता दी गई, जबकि आबादी में उनका हिस्सा 9 प्रतिशत है। जब भी कोई मुसलमान गरीबी रेखा से नीचे का राशन कार्ड बनवाने आता है तो स्थानीय अधिकारी गरीब मुसलमानों की सूची देखते हैं और उसके आधार पर उनकी अपील खारिज कर देते हैं। लकड़ावाला के अनुसार यह इस राज्य में नागरिकों के प्रति अपनी जिम्मेदारी से भागने का सबूत है। उनकी मंशा भावनाएँ भड़काने की नहीं है बल्कि उन समस्याओं के प्रति ध्यान दिलाने की है, जिन्हें समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

जहाँ कहीं भी सरकार अपनी जिम्मेदारी से भागती है, वहाँ इसलामी ट्रस्ट अपनी भूमिका निभाते हैं। मोटेरा स्टेडियम में, उन्होंने उस स्कूल को अपनाया है, जो दिहाड़ी मजदूरों के 650 बच्चों का खयाल रखता है और इनमें से एक तिहाई लड़कियाँ हैं। यह सरकारी स्कूल है और इसे आठवीं क्लास तक किसी भी प्रकार की सरकारी सहायता नहीं मिलती है। इसका स्पष्ट कारण आस-पास में नगर निगम के स्कूलों की मौजूदगी है। अभिभावक इस स्कूल को तरजीह देते हैं, क्योंकि इसकी फीस बहुत कम है। किताबें, सैंडल, स्कूल बैग, यूनिफॉर्म और नोट-बुक मुफ्त में दिए जाते हैं। शिक्षा का स्तर अच्छा बताया जाता है। साप्ताहिक परीक्षा होती है, साथ ही ट्रस्ट के अधिकारी औचक निरीक्षण करने भी आते हैं। शिक्षकों की हाजिरी बायोमेट्रिक सिस्टम से लगती है। सीसीटीवी कैमरे उन पर नजर रखते हैं। दबे-कुचले समाज को शिक्षा का सहारा लेना पड़ा है। दंगों का एक अनायास प्रभाव मुसलमानों में शिक्षा पर जोर दिए जाने के रूप में सामने आया है। दंगों से

पहले समुदाय की ओर से चलाए जानेवाले स्कूलों की संख्या तीस थी। तब से लेकर अब तक, लकड़ावाला के अनुसार 800 शैक्षणिक ट्रस्ट बन चुके हैं। उनमें से कुछ कट्टरवादी संप्रदाय तबलीगी जमात द्वारा चलाए जाते हैं। वे अपना ही कायदा-कानून लादते हैं। स्कूलों ने एक-संस्कृतिवादी रूप ले लिया है। वे समाज में बँटवारे को प्रकट करते हैं। दोनों समुदायों के बीच न के बराबर बातचीत होती है। रोजाना दोनों समुदायों के बीच होनेवाली बैठकों से द्वेष कम होने की बजाय और बढ़ जाता है। मोदी की ओर से मुसलमानों की तरफ दोस्ती का हाथ बढ़ाने का प्रयास यह संकेत देता है कि मुसलमानों (और उदारवादियों को) को दु-तरफा रणनीति अपनानी चाहिए। पूरे मन से न्याय की माँग के साथ ही मोदी से बातचीत भी करनी चाहिए। गुजरात के मुख्यमंत्री होने के नाते, मोदी एक ही जैसी मछली के साथ तैर सकते हैं। लेकिन भारत की विशाल झील में उन्हें दूसरों से भी दोस्ती करनी होगी। हिंदुत्व के प्रति तिरसठ साल के अधिकांश समय में बने विचारों से मोदी पूरी तरह जुड़े हैं। लेकिन चुनावी मजबूरियों के चलते मुसलमानों से बातचीत के बाद ऐसी उम्मीद है कि उनके विचार बदलेंगे। यहाँ तक कि बीजेपी नेता लालकृष्ण आडवाणी ने भी पाकिस्तान के संस्थापक मोहम्मद अली जिन्ना की धर्मनिरपेक्षता को समझकर अपनी कट्टरवादी छवि को थोड़ा नरम बनाने का प्रयास किया था। मुसलिम व्यापार सम्मेलन (जिसका जिक्र अध्याय की शुरुआत में है) में मोदी के भाषण में पाकिस्तान संविधान सभा में दिए गए जिन्ना के भाषण की गूँज सुनाई दे रही थी : आप मुक्त हैं। आप अपने मंदिरों में जाने को स्वतंत्र हैं, आप अपनी मसजिदों में इबादत के लिए या किसी अन्य इबादतगाह में जाने के लिए स्वतंत्र हैं। आप किसी भी धर्म या जाति या संप्रदाय के हों, उससे राज्य के कार्य पर कोई फर्क नहीं पड़ता है।

## संदर्भ—

1. 2001 की जनगणना का हवाला देते हुए सच्चर कमेटी ने कहा कि गुजरात के शहरों में मुसलमानों का हिस्सा 58.7 प्रतिशत है, जबकि राज्य की कुल शहरी आबादी में 37.4 प्रतिशत है।
2. NSSO का सबसे नया और व्यापक सर्वे जुलाई 2009 से जून 2010 के बीच कराया

गया तथा जून 2013 में प्रकाशित हुआ। उसके अनुसार 49.2 प्रतिशत शहरी मुसलमान परिवारों ने स्व-रोजगार को अपना मुख्य पेशा बताया। 10.8 प्रतिशत ने कहा कि वे दिहाड़ी मजदूर हैं। ग्रामीण इलाकों में 43.6 प्रतिशत मुसलमान अपना धंधा करते हैं और 41.6 प्रतिशत दिहाड़ी मजदूर हैं।

3. सच्चर कमेटी रिपोर्ट, 2006 : गुजरात की आबादी में मुसलमानों का हिस्सा : 2001 की जनगणना के अनुसार 9.1 प्रतिशत था। उच्च राजकीय पदों पर उनका हिस्सा 3.4 प्रतिशत और निम्न पदों पर 5.5 प्रतिशत था। शिक्षा विभाग के उच्च पदों पर 1.7, गृह 5.5, स्वास्थ्य 2.2 और परिवहन में 9.4 प्रतिशत हिस्सेदारी। परिवहन विभाग में निम्न पदों की हिस्सेदारी 16.3 प्रतिशत थी।
4. कोलंबिया यूनिवर्सिटी के अरविंद पनगरिया और विशाल मोरे। 1993-94 से 2011-12 तक भारत के सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक समूहों में तथा इसके सबसे बड़े राज्यों में गरीबी। गुजराती मुसलमानों की गरीबी 1993-94 में 42.7 प्रतिशत, 2004-05 में 36.5 प्रतिशत और 2009-10 में 37.6 प्रतिशत थी। गुजराती हिंदुओं के मामले में यही आँकड़े इस प्रकार थे : 38.2, 32.7 और 21.9 प्रतिशत।
5. मनोज मित्ता, द फिक्शन ऑफ द फैक्ट फाइंडिंग, हार्पर कॉलिंस पब्लिशर्स इंडिया, 2014
6. NSSO 2009-10 : 26.8 प्रतिशत मुसलमानों और 27.4 प्रतिशत हिंदुओं ने कहा कि वे साक्षर नहीं हैं।
7. 'धर्म के आधार पर आरक्षण से देश टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा', www.narendramodi.in. 9 मार्च, 2014 को एक्सेस किया गया।
8. यह 2012-13 में हुआ। BCK-81 E, स्कॉलरशिप के तहत ग्यारहवीं और बारहवीं या उसी के समान कक्षाओं में तकनीकी पाठ्यक्रम में शामिल अल्पसंख्यक छात्रों को प्रतिमाह 380 रुपए मिलते हैं, बशर्ते वे हॉस्टल में रहते हों। BCK-82 A, जो योग्यता-सह-साधन स्कॉलरशिप है, वह अल्पसंख्यक समुदाय के उन छात्रों को प्रतिमाह 1,000 देता है, जो प्रोफेशनल डिग्री कोर्स के दौरान हॉस्टल में रहते हैं, जबकि हॉस्टल से बाहर रहनेवालों को हर महीने 500 रुपए दिए जाते हैं। दोनों ही मामलों में ट्यूशन और एडमिशन फीस निर्धारित कोटे के आधार पर वापस लौटा दी जाती हैं। डायरेक्टर, डेवलपिंग कास्ट्स वेलफेयर, डिपार्टमेंट ऑफ सोशल जस्टिस ऐंड एमपावरमेंट, गांधीनगर की वेबसाइट देखें।
9. 'खुशबू गुजरात की', टर्न्स स्पॉटलाइट ऑन स्टेट्स इसलामिक आर्किटेक्चर, इंडियन एक्सप्रेस, 6 फरवरी, 2014

□

# 7
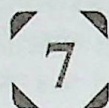
# परवाह किए बिना व्यापार

*मोदी पर अकसर लगाया जानेवाला यह आरोप बेबुनियाद है कि वे भौतिक तरक्की के लिए मानव विकास पर ध्यान नहीं देते हैं। मोदी के शासन में गुजरात को अन्य विकसित राज्यों के मुकाबले सामाजिक संकेतकों के लिहाज से तरक्की करने के लिए कड़ा संघर्ष करना पड़ा है, लेकिन इस राज्य को हर संघर्ष से लड़ने की क्षमता विरासत में मिली है।*

जनवरी 2014 में गांधीनगर में राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन का एक भव्य आयोजन हुआ था। लगभग 100 विश्वविद्यालयों के कुलपति और शिक्षा निदेशक मौजूद थे। दुनिया भर के चौरासी संस्थानों के प्रतिनिधियों ने भी हिस्सा लिया था। आमंत्रित अतिथियों में 1500 प्रोफेसर और टीचर तथा 3,000 छात्र भी शामिल थे, जिनमें से 200 प्रतिनिधि चालीस भिन्न-भिन्न देशों से आए थे। डिजाइन की पढ़ाई में सहयोग तथा मोदी के राष्ट्रीय कद को देखते हुए इटली के राजदूत एक साल में तीसरी बार गुजरात आए थे। वक्ताओं में दिल्ली यूनिवर्सिटी के कुलपति दिनेश सिंह भी शामिल थे, जिन्होंने छात्रों और शिक्षकों के जबरदस्त विरोध के बावजूद डिग्री कोर्स में बदलाव किया था। गुफा के आकार का महात्मा मंदिर ठसाठस भरा था। मोदी ने विचारधारा को एक तरफ रखा और भारत के पारंपरिक ज्ञान के ढाँचे पर कुठाराघात तथा आंतरिक ऊर्जा

की जड़ें खोदने के लिए ब्रिटिश शिक्षाविद् लॉर्ड मैकाले की धज्जियाँ उड़ा दीं। उसके बाद उन्होंने उच्च शिक्षा पर अपनी सोच को सामने रखा।

मोदी को ऐसा करते देख, वे भी जो आदतन मोदी के आलोचक नहीं हैं, पूछने पर मजबूर हो सकते थे कि क्या यह मोदी के द्वारा अपने महिमा-मंडन के लिए राज्य के संसाधनों के उपयोग का एक और उदाहरण नहीं है। यदि इतने बड़े आयोजन को सही ठहराया भी जाए तो राजनीतिक बदलाव के मोड़ पर इसकी टाइमिंग पर सवाल नहीं उठेंगे? क्या राज्य की राजधानी को बंगलुरु, दिल्ली और पुणे के समान उच्च शिक्षा का केंद्र बनाने के लिए कंजूसी से भरे तरीके नहीं अपनाए जा रहे थे?[1]

गुजरात की शैक्षिक और स्वास्थ्य संबंधी उपलब्धियाँ इसकी आर्थिक उपलब्धियों के सामने बौनी दिखती हैं। तमिलनाडु जो इतना ही औद्योगीकृत है, वह सार्वजनिक सेवाओं का एक आदर्श उदाहरण है। सारे राजनीतिक दलों में जनकल्याण को लेकर एक निष्ठा की भावना है। तमिलनाडु स्वास्थ्य सेवा के लिहाज से देश का अव्वल राज्य है। जिस प्रकार वहाँ के सरकारी अस्पतालों में दवाओं का स्टॉक रखा जाता है और उन्हें समय-समय पर बदला जाता है, वह देश के अन्य राज्यों के लिए एक उदाहरण बन गया है। स्कूलों में दोपहर का भोजन उपलब्ध कराने की शुरुआत तमिलनाडु से ही हुई थी। मुख्यमंत्री कुमारस्वामी कामराज ने 1960 के दशक में ही हाईस्कूल तक मुफ्त पढ़ाई की सुविधा दी थी। सस्ते दर पर अनाज को लोगों तक कुशलता से पहुँचाने के मामले में इसकी प्रशंसा देश भर में की जाती है। गुजरात मॉडल का मजाक उड़ाने के लिए इतना ही पर्याप्त है।

गुजरात ने शिक्षा की उपेक्षा की। अभिभावकों की ओर से दबाव न होने के कारण आने वाली हर सरकार ने ऐसा ही किया। पढ़ाकू बच्चों को किताबी कीड़ा समझा जाता था, जिनमें जीवन में तरक्की हासिल करने का थोड़ा सा भी हुनर नहीं होता है। यह बीते जमाने की बात है। सूचना और संचार तकनीक में तरक्की के साथ, दक्षिण भारत के शहरों का सॉफ्टवेयर सेवा केंद्र के तौर पर विकास, परिणामस्वरूप भारत की बदली तसवीर, वित्तीय सेवाओं में उछाल, शिक्षित व्यक्तियों की माँग तथा उनकी अच्छी

आमदनी ने गुजरात को शिक्षा के मूल्यों का अहसास करा दिया है।

स्कूलों में बच्चों के दाखिले का अभियान केंद्र सरकार की पहल पर शुरू किया गया, जिसका नाम जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम था और जिसे ब्रिटिश और डच एजेंसियों तथा वर्ल्ड बैंक की ओर से वित्तीय सहायता दी गई थी। इसी तर्ज पर राज्य ने अपना अभियान 1997-98 में शुरू किया। सुधीर मांकड़, जो शिक्षा सचिव थे, उन्हें याद है कि कैसे वह लगभग 10,000 नए क्लासरूम और इसकी दुगुनी संख्या में शिक्षकों की भरती के लिए आवश्यक फंड की माँग के साथ मुख्य सचिव से मिलने पहुँचे थे। जब उनकी माँग लगभग आधी मानी जा चुकी थी, तब तक विभाग की सोच भी सकारात्मक हो गई थी। शिक्षकों की भरती कॉण्ट्रैक्ट पर की गई। उनकी शिक्षा नियमित शिक्षकों जितनी ही थी, लेकिन उनको आधी तनख्वाह मिलती थी। कॉण्ट्रैक्ट पाँच साल के लिए होता था और उसके खत्म होने पर उन्हें स्थायी नौकरी देने पर विचार किया जाता था। इस तौर-तरीके को कोर्ट में चुनौती दी गई, लेकिन यह कानूनी लड़ाई को जीतने में सफल रहा। पहले से तैयार ढाँचे को क्लासरूम की शक्ल दिए जाने से पक्के क्लासरूम बनाने में लगने वाले समय की बचत हुई। किसी भी स्थल पर केवल फर्श तैयार किया जाता था। उसके ऊपर पहले से बना ढाँचा खड़ा किया जाता था। शुरुआत में दीवार और छत पहले से ढाले गए ठोस पत्थर की होती थी, फिर कड़े किए गए प्लास्टिक की बनने लगी, जिसमें सीमेंट का मिश्रण भरा जाता था।

मुख्यमंत्री केशुभाई पटेल के अधीन, सामाजिक क्षेत्र के लिए एक विजन डॉक्यूमेंट तैयार किया गया। स्वास्थ्य, पोषाहार, साक्षरता, शिक्षा और लिंग के विकास के लिए केरल को आदर्श माना गया। 2004 में सरकार के दायरे से बाहर काम कर रहे दो शिक्षाविदों ने गुजरात की पहली विकास रिपोर्ट तैयार की, जिसमें जीवन की गुणवत्ता की रैंकिंक की गई। इसने राज्य को जनजातीय और गंदी बस्तियों पर ध्यान देने को कहा। स्कूली शिक्षा पर दिया गया जोर भी स्पष्ट था। 2003 में सरकार ने वार्षिक कन्या केलावनी (बालिका शिक्षा) और शाला प्रवेशोत्सव (स्कूल में दाखिले का त्योहार) कार्यक्रम शुरू किया, जिसमें सारे मंत्रियों और अधिकारियों को शामिल होना पड़ता है। अभिभावकों

को उत्साहित किया जाता है कि वे बच्चों को, विशेषकर लड़कियों को स्कूल भेजें। स्कूल में एक उत्सव के माहौल के बीच बच्चों का स्वागत किया जाता है। मोदी का कहना है कि हमें हर बच्चे का सम्मान एक हस्ती के रूप में करना चाहिए। पिछले दस वर्षों में, प्राथमिक शिक्षा देनेवाले स्कूलों की संख्या दोगुनी हो गई है और 34,000 से कुछ ही कम है, तथा स्कूलों की कुल संख्या में उनका अच्छा-खासा योगदान है। केरल, जिसकी चर्चा उसके सामाजिक संकेतकों, विशेष तौर पर शिक्षा के लिए होती है, वहाँ निजी स्कूलों का बाहुल्य है। धार्मिक समुदायों की पहल के कारण उनका हिस्सा दो तिहाई है। तमिलनाडु में भी निजी स्कूलों का हिस्सा एक तिहाई है।

गुजरात में पिछले एक दशक तक छह स्कूलों में से पाँच सरकारी हुआ करते थे। उनमें बदलाव आ रहा है, और पिछले कुछ समय में बदलाव ने काफी नाटकीय रूप ले लिया है। केवल एक वर्ष में, 1,500 निजी स्कूल जुड़ गए हैं, जिनसे कुल संख्या 9,000 पर पहुँच गई है और कुल स्कूलों में उनका हिस्सा पाँचवाँ है। यह निजी स्कूलों में शिक्षा की गुणवत्ता, स्कूलों का मुनाफे वाले कारोबार के रूप में सामने आना और मुसलिम समुदाय द्वारा संस्थागत भेदभाव के खिलाफ अपनी ओर से चलाए जानेवाले अभियान प्रमाण है।

अन्य उपायों से स्कूलों की सुलभता में सुधार के प्रमाण भी मिलते हैं। प्राथमिक स्कूलों की तुलना में उच्च प्राथमिक स्कूलों की सीमित संख्या में भी काफी सुधार हुआ है। कुछ दिनों पहले कराए गए सर्वे के अनुसार स्कूलों में बच्चों के बने रहने का प्रतिशत नब्बे तक जा पहुँचा था। प्राथमिक से उच्च प्राथमिक स्कूल में जानेवाले बच्चों का अनुपात भी कर्नाटक और तमिलनाडु से बहुत पीछे नहीं था। पिछली जनगणना के अनुसार गुजरात की सात वर्ष की आयु से अधिक की आबादी के 79 प्रतिशत लोग औपचारिक शिक्षा प्राप्त किए बिना ही पढ़ और लिख सकते हैं। इस कारण इसका स्थान सूची में अठारहवें नंबर पर है या राष्ट्रीय श्रेणी के लिहाज से मध्य में है। पहली नजर में यह बिल्कुल संतोषजनक नहीं लगता है। लेकिन गुजरात तमिलनाडु से थोड़ा ही नीचे है, जबकि आंध्र और कर्नाटक की हालत दयनीय है। साक्षरता

दर में यह महाराष्ट्र के करीब है। इसमें कोई शक नहीं कि केरल से अंतर को पाटने के लिए इसे कड़ी मेहनत करनी पड़ेगी, लेकिन यह भी सच है कि उस राज्य ने पहले ही ऐतिहासिक बढ़त ले रखी है।

इन स्तरों का अपना ही महत्त्व है। इस बीच गुजरात की स्थिति में आया सुधार सरकार और समाज के प्रयासों को दरशाता है।[2]

पिछली जनगणना की तुलना में गुजरात की साक्षरता दर में दस प्रतिशत सुधार हुआ है। महिलाओं में यह बढ़ोतरी और भी अधिक है। राष्ट्रीय स्कूल ऑडिट यह प्रमाणित करता है कि गुजरात के स्कूलों में सुविधाएँ बढ़ रही हैं। 2009 में शुरू हुए एक और अभियान, गुणोत्सव का भी इसमें योगदान रहा होगा। इस गुणवत्ता के उत्सव में अधिकारी साल के नवंबर महीने में तीन दिनों तक स्कूलों का विभिन्न पैमाने पर आकलन करते हैं। दस में से कम-से-कम छह अंक प्राप्त करने वाले स्कूलों का अनुपात 2011 में 44 प्रतिशत था। केवल कुछ ही स्कूलों में लड़कियों के शौचालय (हालाँकि कोई कारण नहीं कि प्रत्येक स्कूल में यह न हो। साथ ही, उपलब्धता और उपयोगिता के बीच भी अंतर है) नहीं हैं। पेयजल अधिकांश स्कूलों में उपलब्ध है। इन स्कूलों में लगभग तीन लाख शिक्षक हैं। तमिलनाडु के समान ही यहाँ प्रत्येक तीस छात्रों पर एक शिक्षक है। लगभग सभी सरकारी स्कूलों और सरकारी मदद से चलने वाले स्कूलों में दोपहर का भोजन मिलता है; हालाँकि बीस प्रतिशत स्कूलों में भोजन बाहर से बनकर आता है। ये स्कूल संभवतः शहरों में हैं और दिल्ली तथा पांडिचेरी के समान, अत्याधुनिक केंद्रीय भोजनालयों से उन्हें मँगाया जाना एक बेहतर उपाय है।

सीखने की दृष्टि से गुजराती छात्र महाराष्ट्र या तमिलनाडु के छात्रों जितने ही ढीठ हैं, हालाँकि यह कोई संतोष की बात नहीं है। एनजीओ 'प्रथम' द्वारा कराए गए शिक्षण रिपोर्ट पर वार्षिक सर्वेक्षण (ASER) की सबसे ताजा रिपोर्ट के मुताबिक स्कूली शिक्षा के आठ वर्ष बाद गुजरात के केवल 35 प्रतिशत ग्रामीण छात्रों को भाग देना आता है। यही हाल महाराष्ट्र के छात्रों का है। तमिलनाडु के छात्र कुछ बेहतर हैं। गुजरात के सरकारी स्कूलों के तीसरी क्लास के केवल 18 प्रतिशत छात्र घटाव कर सकते हैं,

यही हाल बाकी के दोनों राज्यों में है। गुजरात के पाँचवीं कक्षा के आधे छात्र दूसरी क्लास के पाठ नहीं पढ़ सकते हैं। महाराष्ट्र में 40 प्रतिशत और तमिलनाडु में 68 प्रतिशत छात्र ऐसा नहीं कर सके। अब चूँकि स्कूलों की उपलब्धता हो गई है, इस कारण नई चुनौती यह है कि स्कूली शिक्षा का परिणाम छात्रों के सीखने के रूप में सामने आए।

सेकेंडरी और हायर सेकेंडरी, यानी बारहवीं क्लास में गुजरात में स्कूलों की संख्या तमिलनाडु और महाराष्ट्र के ही अनुपात में है। उनकी मौजूदगी ग्रामीण इलाकों में अधिक है। स्कूलों में दलित और आदिवासी छात्रों की संख्या आबादी में उनके अनुपात के समान ही है। हालाँकि कुल नामांकन काफी कम हैं। सेकेंडरी स्कूलों में केवल 42 प्रतिशत छात्र ही उचित आयु के हैं। अगले चरण में यह आँकड़ा आधा रह जाता है। तमिलनाडु में सेकेंडरी स्तर पर दस में छह छात्र सही आयु के हैं। अगले चरण में गिरावट आती है, लेकिन उतनी नहीं जितना कि गुजरात में है। लिंग अनुपात में भी गुजरात महाराष्ट्र और तमिलनाडु से पीछे है। दसवीं और बारहवीं क्लास में प्रत्येक दस लड़कों पर सात या आठ लड़कियाँ हैं।[3]

गुजरात अब उच्च शिक्षा में रफ्तार पकड़ना चाहता है। योजना आयोग के लिए भारतीय उद्योग परिसंघ द्वारा कराए गए राष्ट्रीय सर्वेक्षण के अनुसार, पिछली बार गुजरात कॉलेजों (1,815) के मामले में देश में आठवें नंबर पर था। यहाँ नामांकन की कुल दर इक्कीस प्रतिशत थी, जबकि राष्ट्रीय औसत उन्नीस प्रतिशत है। तमिलनाडु, जो इस मामले में काफी आगे है, वहाँ इक्कीस प्रतिशत कॉलेज हैं।

मोदी हालाँकि गुजरात को निजी उद्यमों का स्वर्ग बताते हैं, लेकिन उच्च शिक्षा के क्षेत्र में यहाँ दक्षिण राज्यों की तर्ज पर निजीकरण अब तक नहीं हुआ है। बिना सहायता प्राप्त कॉलेजों का हिस्सा 40 प्रतिशत है। अधिकांश छात्र सरकारी कॉलेजों में या सरकार की ओर से सहायता पानेवाले कॉलेजों में दाखिला लेते हैं। तमिलनाडु में दस में से नौ कॉलेज निजी हैं और नामांकन में उनका हिस्सा भी उसी हिसाब से ऊँचा है।

मोदी गुजरात को ज्ञान का केंद्र बनाना चाहते हैं। अब तक पेट्रोलियम,

कृषि, रक्षा और सुरक्षा, संस्कृत एवं योग के विश्वविद्यालय खुल चुके हैं। उम्मीद है कि ये बस इमारतें खड़ी करने का उपक्रम बनकर नहीं रह जाएँगे। इनमें उनके कुछ स्वामिभक्त नौकरशाहों को रिटायर होने के बाद आराम की नौकरी दी गई है। इंजीनियरिंग की सीटों में पिछले आठ वर्षों में चार गुना बढ़ोतरी हुई है और अब उनकी संख्या 56,000 है। इतनी ही सीटें डिप्लोमा पाठ्यक्रम में हैं। ऐसा लगता है कि इंजीनियरिंग के प्रति छात्रों में विशेष दिलचस्पी है। उत्पादन क्षेत्र की नौकरियों के लिए छात्रों को तैयार करने हेतु कला-कौशल के विकास की शिक्षा पर जोर दिया जा रहा है। इस अध्याय की शुरुआत में जिस राष्ट्रीय सम्मेलन का जिक्र है, उसमें मोदी ने शिक्षा देनेवालों से कहा था कि वे छात्रों को करेक्टर सर्टिफिकेट देने की बजाय सहज योग्यता (एप्टीट्यूड) का सर्टिफिकेट दें। उन्होंने कहा था कि बच्चों को उत्पादन करनेवाले कारखानों में ले जाइए। उन्होंने सुझाव दिया कि स्कूलों की प्रणाली लचीली बनाई जाए, जिससे कि छात्र बिना किसी रुकावट कैंपस से कारखानों तक आ-जा सकें। इससे वे शिक्षा प्राप्त करने के साथ-साथ लगातार अपने कौशल को भी बढ़ा सकेंगे। मोदी चाहते हैं कि राज्य की राजधानी ज्ञान का केंद्र बने। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कुछ संस्थागत उपाय भी किए गए हैं। वे विदेशी निवेश भी चाहते हैं, जबकि उनकी पार्टी ने विदेशी विश्वविद्यालयों के प्रवेश को अनुमति दिए जाने संबंधी केंद्रीय बिल का विरोध किया था।

दिसंबर 2013 में गुजरात सरकार को सदमा पहुँचाने वाली खबर मिली। अस्पतालों में प्रसव और जन्म देते समय गरीब माताओं की मृत्यु-दर कम करने के लिए लागू की गई 'आदर्श चिरंजीवी योजना' ऐसा कोई कमाल नहीं दिखा रही थी, जो आँकड़ों के लिहाज से महत्त्वपूर्ण हो। ऐसा एक चर्चित रिपोर्ट का कहना था। यह सही है कि राज्य भर में अस्पतालों में होनेवाले प्रसव की संख्या बढ़ गई थी, लेकिन इसका श्रेय सरकार द्वारा 2006 में पाँच आदिवासी जिलों में और फिर अगले साल पूरे राज्य में लागू की गई योजना को नहीं दिया जा सकता था।

आकलन का काम बेदाग छवि वाले शोधकर्ताओं द्वारा किया जा रहा

था। वे यूके की ड्यूक यूनिवर्सिटी, रैंड कॉरपोरेशन, स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी, स्टैनफोर्ड मेडिकल स्कूल और दिल्ली स्थित निजी संगठन 'संबोधी' से आए थे।[4] ऐसी ही कुछ और चौंकाने वाली बातें सामने आईं। जिन 54 प्रतिशत माताओं से बातचीत की गई, उन्होंने कहा कि उन्हें समय से पहले प्रसव, लंबे और रुकावट वाले प्रसव जैसी जटिल स्थिति में कोई राहत नहीं मिली, साथ ही इस योजना का लाभ उठाने के बाद अत्यधिक रक्तस्राव, हाईपरटेंशन, बुखार और अनियंत्रित मूत्रत्याग जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ा। जाने-माने शोधकर्ता और ड्यूक यूनिवर्सिटी में पब्लिक पॉलिसी के सहायक प्राध्यापक मनोज मोहन ने कहा कि अस्पताल में डिलीवरी होने के बावजूद उनका खर्च कम नहीं हुआ।

चिरंजीवी योजना को एक आदर्श कार्यक्रम बताया गया था और 'वाल स्ट्रीट जर्नल' ने उसे नई पहल का अवार्ड भी दिया था। गुजरात सरकार की ख्याति बुलंदियों को छू रही थी। 2005-06 में प्रत्येक 1,000 जन्म पर शिशुओं की मृत्यु 57 और माताओं की 3.89 थी। सरकार ने प्रतिज्ञा की थी कि 2010 तक इस दर को क्रमश: 30 और 1 पर लाया जाएगा। सबसे अहम उपाय गरीब महिलाओं को घर की बजाय अस्पताल में प्रसव के लिए मनाने का था। घरों में प्राणघातक इन्फेक्शन का खतरा सबसे अधिक होता है। लेकिन ग्रामीण स्वास्थ्य केंद्रों में पर्याप्त संख्या में प्रसूति और स्त्री रोग विशेषज्ञों की कमी थी। सरकारी डॉक्टर शहरों में तैनाती चाहते थे। ग्रामीण इलाकों में केवल सात प्रसूति रोग विशेषज्ञ थे, जबकि 3 करोड़ 20 लाख महिलाएँ उन पर निर्भर थीं। प्राइवेट प्रैक्टिस से होने वाली कमाई के सामने सरकारी तनख्वाह कुछ भी नहीं थी। सरकार ने अपने डॉक्टरों की प्राइवेट प्रैक्टिस पर पाबंदी लगा दी।

प्रबंधन विशेषज्ञों, महिलाओं के लिए काम करनेवाले एक एनजीओ और एक जर्मन विकास संस्था से विचार-विमर्श के बाद स्वास्थ्य अधिकारी अमरजीत सिन्हा ने तय किया कि निजी प्रशिक्षित डॉक्टरों की सेवा ली जाएगी, जिनके पास प्रसूति से जुड़ी सुविधा हो। पैनल पर लिये जाने वाले डॉक्टरों को प्रत्येक एक सौ डिलीवरी के बदले एक निश्चित रकम (179,000 रु.) दी जाएगी,

जिनमें सात से अधिक सिजेरियन ऑपरेशन न हों। ऐसा अनावश्यक सर्जरी से बचने के लिए किया गया था। यह अनुपात मनमाने ढंग से नहीं तय किया गया था, बल्कि यह मेडिकल आँकड़ों पर आधारित था। इस पैकेज में माता को अस्पताल तक लाने-ले जाने और उसके अटेंडेंट का भत्ता भी शामिल था।

2009 में सिन्हा ने अन्य शोधकर्ताओं के साथ विश्व स्वास्थ्य संगठन के बुलेटिन में उत्साहजनक परिणामों की चर्चा की।[5] उन्होंने बताया कि पूरे राज्य में इस कार्यक्रम का विस्तार किए जाने के बाद 865 प्रसूति विशेषज्ञों को शामिल किया गया। उन्होंने पिछले साल मार्च के अंत तक 175,000 प्रसूतियाँ कराईं। सिजेरियन कुल प्रसूति का छह प्रतिशत था। यह अनुमति की सीमा से कम थी, लेकिन गरीबों में होने वाली प्रसूतियों के लिहाज से दोगुनी थी। सिन्हा ने बताया कि 'चिरंजीवी योजना' के बाद गरीबों के बीच अस्पताल में होने वाले प्रसव में 27 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। शिशु मृत्यु-दर में 60 प्रतिशत की कमी आई और माता मृत्यु-दर में 90 प्रतिशत गिरावट दर्ज की गई।

उन्होंने कहा कि प्राइवेट डॉक्टरों के साथ मिलकर गरीबों को बड़े पैमाने पर स्वास्थ्य सुविधाएँ दिए जाने का यह पहला व्यावहारिक प्रयोग था। इससे यह पता चला कि यदि सरकार उचित फीस देने को तैयार हो तो निजी साझीदारी की मदद से सामाजिक स्वास्थ्य बीमा को तेजी से लागू किया जा सकता है और इसमें दान दाताओं और बीमा कंपनियों (जिन्हें कम फीस के चलते हतोत्साहित किया गया) की भी भूमिका नहीं होगी।

पिछले अध्ययनों में केवल उनकी अस्पतालों के परिणामों पर गौर किया, जो इस प्रकार की सेवा उपलब्ध करा रहे थे। मोहनन की टीम ने गरीबी रेखा से नीचे के पैमाने और उस आबादी को आधार बनाया, जिनके घरों में उस दौरान बच्चे पैदा हुए। मोहनन ने 'टाइम्स ऑफ इंडिया' से कहा कि यदि किसी कार्यक्रम का अधिक-से-अधिक लोग लाभ उठाते हैं, तो आपको कुछ समय में एक अंतर दिख जाता है, लेकिन हमने एक ऐसा ढंग देखा, जो योजना के पहले जैसा ही था। हम इस नतीजे पर पहुँचे कि एक कार्यक्रम जो महत्त्वाकांक्षा के लिहाज से इतना सफल और प्रभावी है, उसका

इस्तेमाल इसके लिए पात्रता वाले आधे लोग भी नहीं कर रहे थे।

शोधकर्ताओं को इस बात ने सबसे अधिक चौंकाया कि योजना के बावजूद अस्पताल में होनेवाली डिलीवरी पर आनेवाले खर्च में कोई कमी नहीं आई। मोहनन का कहना है कि दरअसल, प्राइवेट सेक्टर प्राइवेट सेक्टर ही होता है। आपके पास अस्पतालों की ओर से अधिक पैसे वसूले जाने के संभावित मामलों को रोकने और योजना को सही तरीके लागू न करने पर नजर रखने के लिए एक प्रणाली होनी चाहिए। दूसरा विषय खर्च का है। क्या अस्पताल को 1,600 रुपए की प्रतिपूर्ति काफी है? मैं नहीं जानता, उन्होंने यह रकम किस आधार पर तय की। उन्होंने यह भी कहा कि अन्य राज्यों द्वारा इस योजना को अपनाए जाने से पहले इसकी सफलता की और सख्ती से जाँच होनी चाहिए।[6]

राज्य के लेखा परीक्षकों ने भी बताया था कि प्राइवेट डॉक्टर कार्यक्रम को लेकर उत्साहित नहीं थे। 2011 की रिपोर्ट में नियंत्रक और महालेखा परीक्षक ने पाया कि 231 तालुका में से 93 या 40 प्रतिशत में, प्राइवेट डॉक्टर इस योजना में शामिल ही नहीं हुए। माताओं को आने-जाने का भाड़ा नहीं दिया जाता था या कम पैसे दिए जाते थे। इस बात की जाँच की भी कोई प्रक्रिया नहीं थी कि जिस डिलीवरी का दावा डॉक्टर कर रहे हैं, वह उन्होंने ही की थी। इस कारण फर्जीवाड़े की आशंका थी। ऐसी रिपोर्ट भी थी कि डॉक्टर मरीजों से अधिक फीस वसूल रहे हैं या जो पूरी फीस नहीं चुकाते, उन पर ध्यान नहीं दे रहे हैं। सूरत जिले में हुए एक अध्ययन में कहा गया कि जिन ग्रामीण इलाकों में इस योजना की सबसे अधिक आवश्यकता थी, वहाँ प्राइवेट डॉक्टर इसमें शामिल ही नहीं हुए या मुश्किल केस लौटा दिया करते थे। इस मामले को वास्तविकता से पहले प्रचार की दौड़ मानना सही नहीं होगा। अधिकारियों की निष्ठा पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है। योजना की डिजाइन या इसे लागू करने के तरीके में बदलाव की आवश्यकता पड़ेगी।

राज्य को सरकारी स्वास्थ्य प्रणाली में भी फिर से प्राण फूँकने की आवश्यकता होगी। निजी क्षेत्र पर निर्भर रहना एक भूल हो सकती है। यह अधिक-से-अधिक सहायक भूमिका निभा सकता है। यह विकल्प कभी

नहीं हो सकता। दिल्ली ने निजी अस्पतालों को रियायती दर पर इस शर्त के साथ जमीन दी कि वे 10 प्रतिशत बेड गरीबों के लिए रखेंगे और उनका इलाज मुफ्त में करेंगे। लेकिन यह प्रयोग हतोत्साहित करनेवाला ही साबित हुआ है। अस्पताल कोर्ट के आदेशों और सरकारी निर्देशों का उल्लंघन करते हैं और उन्हें सजा का कोई डर नहीं है। नियामक तंत्र में भी ईमानदारी और निष्ठा की कमी देखी गई है।

गुजरात ने सरकारी स्वास्थ्य प्रणाली की जो उपेक्षा की है, वह साफ तौर पर दिख रही है। पिछले दस वर्षों में बमुश्किल 100 नए प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र खुले। तमिलनाडु में 2014 के बजट में केवल एक वर्ष में इससे भी बड़ी संख्या में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र खोले जाने का प्रावधान है। इस कदम से उनकी संख्या न्यूनतम अपेक्षित संख्या के बराबर हो जाएगी। तमिलनाडु में सामुदायिक केंद्रों जैसी ग्रामीण सुविधाओं की कोई कमी नहीं है। प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों में डॉक्टरों की संख्या न्यूनतम से दोगुनी है और इस कारण वे चौबीसों घंटे उपलब्ध रहते हैं। कर्नाटक से सटे धर्मापुरी जिले में, जिसे पिछड़ा माना जाता है, वहाँ भी मैंने पाया कि लोग सरकारी केंद्रों में अच्छी सुविधाओं की प्रशंसा कर रहे हैं। प्राइवेट डॉक्टर कहते हैं कि उनके पास आनेवाले मरीजों की संख्या घटती जा रही है। विशेषज्ञों में ग्रामीण स्वास्थ्य सेवा से दूर रहने की आदत से निपटने के लिए तमिलनाडु सरकार स्नातक डॉक्टरों को एनेस्थीसिया, प्रसूति और रेडियोलॉजी जैसी विशिष्टताओं का प्रशिक्षण देती है, ताकि वे मेडिकल इमरजेंसी के मामलों को निपटा सकें।

**संदर्भ—**

1. (क) शिक्षा योजना और प्रशासन के राष्ट्रीय विश्वविद्यालय (NUEPA) के वार्षिक ऑडिट में गुजरात के प्राथमिक विद्यालयों का समग्र स्कोर 2012-13 में 12 से गिरकर 28वें नंबर पर आ गया। पिछले आठ वर्षों में यह 7वें से 18वें स्थान पर चढ़ता-उतरता रहा। प्राथमिक और उच्च प्राथमिक का समग्र स्कोर 18 था तथा केवल उच्च प्राथमिक स्कूलों का स्कोर 8 से 14 पर जा चुका था।

(ख) बिना पानी और शौचालयों वाला स्कूल दानीलिंडा में है और यहाँ मुसलिम बहुल बस्ती बॉम्बे होटल के बच्चे पढ़ते हैं।

2. गुजरात की 2011 की साक्षरता दर 79 प्रतिशत थी, जो पिछली जनगणना की तुलना में दस प्रतिशत अधिक है। पुरुषों का प्रतिशत 87 है, जो 8 प्रतिशत अधिक है, और महिलाओं का 71 प्रतिशत है, जो 13 प्रतिशत ऊपर है। तमिलनाडु की साक्षरता दर 80 प्रतिशत थी, जबकि महाराष्ट्र की 83 प्रतिशत। आंध्र की साक्षरता दर 68 और कर्नाटक की 76 प्रतिशत थी।
3. 2012-13 के लिए NUEPA का रिपोर्ट कार्ड।
4. भारत के गुजरात में चिरंजीवी योजना का संस्थागत प्रसूतियों और नवजात तथा मातृत्व संबंधी प्रभाव। विभिन्नताओं में भेद का विश्लेषण। विश्व स्वास्थ्य संगठन का बुलेटिन, 9 दिसंबर, 2013
5. भारत के गुजरात में गरीबों को जन्म सहायक और आपातकालीन प्रसूति सुविधाएँ उपलब्ध कराने के लिए निजी क्षेत्र के प्रसूति विशेषज्ञों से साझीदारी। स्वास्थ्य संगठन का बुलेटिन, 2009। अमरजीत सिंह, दिलीप व मावलंकर और अन्य।
6. गुजरात्स मैटरनल हेल्थ स्कीम इज अफैल्योर, पदमापर्ण घोष, 'टाइम्स ऑफ इंडिया', 30 दिसंबर, 2013

□

# 8

# मोदी के कश्मीर एवं विदेश नीति पर विचार

*क्या इन मुद्दों पर मोदी के कार्य उनके भाषणों से मेल खाते हैं?*

"मित्रो! ये दोहरे मानदंड कब तक चलेंगे?" दिसंबर 2013 में जम्मू में ललकार रैली में नरेंद्र मोदी ने धारा 370 के संवेदनशील विषय को छुआ, जिसके तहत जम्मू और कश्मीर को विशेष दरजा दिया गया है। भाजपा इस धारा को हटाने की निरंतर माँग करती रही है और इसे अव्यावहारिक बताती है। मोदी ने कहा कि यह धारा ऐसी ढाल बन गई है, जिसे सांप्रदायिक आभूषणों से सुरक्षित किया गया है और इसके कारण यह चर्चा नहीं हो पाती कि इस धारा से राज्य के विकास और जनकल्याण में कोई मदद मिली या नहीं। मोदी ने श्रोताओं को याद दिलाया कि पूर्व प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने धारा 370 के बारे में कहा था कि यह समय रहते घिस जाएगी। जम्मू और कश्मीर के विशेष दरजे के कारण यहाँ के लोगों को शेष भारत में रहनेवाले लोगों को मिलनेवाले आरक्षण का लाभ नहीं मिल पाता। मित्रो! ये दोहरे मानदंड कब तक चलेंगे? मोदी ने सवाल किया। इस भेदभाव की राजनीति ने, इस अलगाववाद की राजनीति ने देश को बरबाद ही कर दिया है। अगर विकास करना है तो एकीकरण की राजनीति करनी

होगी और सिर्फ उसी से हमारा विकास होगा।

मोदी ने कहा कि जम्मू और कश्मीर पनबिजली संसाधनों, जड़ी-बूटियों की प्रचुरता, भौगोलिक सुंदरता और खनन संपदा के बल पर फल-फूल सकता था, लेकिन वह केंद्र पर निर्भर होकर रह गया है। मोदी ने विकास का जादुई मंत्र पढ़ते हुए कहा, ''मित्रो, अगर सेपरेट स्टेट की जगह सुपर स्टेट का सपना पले तो कैसा रहेगा। आप बताइए, आप सेपरेट (अलग) स्टेट चाहते हैं या सुपर स्टेट चाहते हैं?''

मोदी ने राज्य की समस्याएँ सुलझाने के लिए इनसानियत, जम्हूरियत और कश्मीरियत का वाजपेयी फॉर्मूला पेश किया। जनवरी 2014 में उन्होंने ब्लॉग में कहा था कि जम्मू और कश्मीर में सेना की उपस्थिति तब तक जरूरी है, जब तक पाकिस्तान आतंकवाद के अड्डे नष्ट नहीं कर देता और घाटी में सीमा पार आतंकवाद को समर्थन देना बंद नहीं कर देता।[1]

मजबूत अर्थव्यवस्था प्रभावशाली विदेश नीति का प्रेरक तत्त्व है।

अक्तूबर 2013 में चेन्नई में भारत और विश्व पर नानी पालखीवाला स्मृति व्याख्यान में मोदी ने कहा था कि मेरा मानना है कि मजबूत अर्थव्यवस्था प्रभावशाली विदेश नीति और राष्ट्रीय सुरक्षा कूटनीति के प्रेरक तत्त्व हैं। (पालखीवाला अमेरिका में भारत के राजदूत, और मानवाधिकारों की रक्षा के लिए लड़नेवाले संविधान विशेषज्ञ थे।)

अंग्रेजी में पहले से तैयार भाषण पढ़ते हुए मोदी ने प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की शक्ति को शांति से जोड़ने की नीति की सराहना की थी। मई 1999 में वाजपेयी ने अंतरराष्ट्रीय समुदाय को ललकारते हुए पाँच परमाणु परीक्षण किए थे और भारत को परमाणु शक्ति घोषित किया था, लेकिन इसका पहले इस्तेमाल करने से इनकार कर दिया था।

आकार के कारण भारत को बड़े भाई के रूप में माना जाता है, इसलिए उसे अपनी छवि कमजोर दरशाए बिना, पड़ोसी देशों के सरोकारों के प्रति संवेदनशीलता दिखानी चाहिए। विश्व समुदाय के बीच यह समझाया जाना चाहिए कि पाकिस्तान आतंकवाद का समर्थन करता है। हालाँकि, मोदी ने यह नहीं बताया कि वे पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में चल रहे आतंकवादी प्रशिक्षण

शिविरों, मुंबई आतंकी हमलों जैसे किसी अन्य हमले से कैसे निपटेंगे और ऐसे हमलों में पाकिस्तानी नागरिकों को किस तरह से सजा दिलवाएँगे। न ही भारत-बांग्लादेश सीमा पर समुद्री क्षेत्र के विनिमय को लेकर या पाकिस्तान के सिंध प्रांत से कच्छ के रण को अलग करनेवाले विवादित जल क्षेत्र सर क्रीक के बारे में कुछ स्पष्ट रूप से कहा गया।

मोदी एशियाई राष्ट्रवाद के उस ब्रांड के प्रतिनिधि हैं, जो चीन के उदय से प्रेरित है, एक टीकाकार का कहना है।[2] चेन्नई व्याख्यान में मोदी ने चीनी घुसपैठ को लेकर कमजोर प्रतिक्रिया के लिए मनमोहन सिंह सरकार की आलोचना की थी, हालाँकि चीन को लेकर उनका रवैया उनके पूर्ववर्ती से अलग नहीं रहा है, फर्क सिर्फ यह रहा था कि उनके पूर्ववर्ती ने बातें बड़ी लंबी-चौड़ी की थीं।[3] उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे सीमा पर अधोसंरचना सुधार, पूर्वोत्तर, विशेषकर अरुणाचल प्रदेश के आर्थिक विकास पर विशेष ध्यान देंगे। सीमा विवाद सुलझाना कठिन होगा, लेकिन दक्षिणपंथी सरकार इसे लोगों के बीच इसका अच्छी तरह से प्रचार करने में सक्षम होगी।[4]

मोदी चाहते थे कि ऐतिहासिक संबंधोंवाले देशों के साथ सेतु निर्माण कार्य में राज्य शामिल हों, मसलन, तमिलनाडु दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ अथवा गुजरात पूर्वी अफ्रीका के साथ। वे चाहते थे कि हर राज्य को अपने यहाँ के शिक्षकों की एक निश्चित संख्या को अपने भागीदार देश की भाषा सिखाने को कहा जाए।

तेल उत्पादक देशों, ओपेक की तरह भारत को सौर विकिरण में मजबूत देशों के क्लब का नेतृत्व करना चाहिए, सौर ऊर्जा के क्षेत्र में अनुसंधान करना चाहिए और तेल पर निर्भरता घटानी चाहिए। मोदी का मानना है कि पर्यटन विदेश नीति का अहम सूत्र हो सकता है। आतंकवाद बाँटता है, लेकिन पर्यटन जोड़ता है।

## संदर्भ—

1. अक्तूबर 2010 को गृह मंत्रालय ने संपादक दिलीप पडगाँवकर, प्रोफेसर राधा कुमार और सेवानिवृत्त नौकरशाह एम.एम. अंसारी की तीन सदस्यों की समिति गठित की थी। एक साल बाद इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में बताया कि राज्य का विशेष दरजा

कायम रखा जाना चाहिए और इस बात की समीक्षा के लिए एक संविधान समिति गठित की जानी चाहिए, जो यह तय करे कि विशेष दरजा खत्म होने की स्थिति में केंद्रीय कानून इस राज्य पर किस सीमा तक लागू होंगे। मोदी के कथन के विपरीत, जम्मू और कश्मीर में जाति और जनजाति आरक्षण लागू है।

2. द वर्ल्ड ऑफ नरेंद्र आबे, संजय बारू, इंडियन एक्सप्रेस, 27 फरवरी, 2014
3. उक्त
4. यूपीए टू के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार शिवशंकर मेनन ने कहा था कि इस बात पर व्यापक सहमति है कि बसी आबादी को विस्थापित किए बिना सीमा विवाद का हल निकाला जाना चाहिए। समाधान की रूपरेखा पर महत्त्वपूर्ण मतभेद थे। सीमांकन अंतिम कदम होगा।

□

# 9

# मोदी की प्रेरक शक्ति

*मोदी का उदय भारत के लोकतंत्र का चमत्कार है। अगर मोदी को जनादेश मिलता है, तो वे राष्ट्रीय महानता के लिए संयुक्त प्रयास से भारतीयों को एकजुट कर सकते हैं अथवा पड़ोसी श्रीलंका और पाकिस्तान के नेताओं की तरह पूर्व प्रत्यावर्ती भावनाओं को मुक्त करके सामाजिक बंधन को तोड़ देंगे, जो पैंसठ सालों से देश को एकसूत्र में बाँधे हुए है।*

सत्ता निस्संदेह मोदी की प्रेरक शक्ति है। वह उन्हें अनवरत रूप से किसी जेट इंजन की तरह संचालित करती रहती है। इसके लिए उनका प्रयास स्थायी रहा है, उनकी इच्छा अनोखी है, उनका दावा इतना मजबूत है कि वे इसके योग्य दिखते हैं। न भरी जा सकनेवाली कुरसी पर काबिज होने से बड़ी अमरता और कोई नहीं है। मोदी ये शब्द कह चुके हैं। वे कोई अभयदान नहीं देते। जब 2001 में केशूभाई पटेल के साथ सत्ता की भागीदारी के बारे में उनकी राय जानी गई तो उन्होंने साफ इनकार कर दिया—आप उन्हें ही रखिए। मैं या तो गुजरात के लिए पूरी तरह से जिम्मेदार होऊँगा या बिल्कुल नहीं, उन्होंने भाजपा नेताओं से साफ कह दिया था।[1] 2012 में उन्होंने उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनावों के प्रभारी एक संघ प्रचारक को हटाने के लिए बाध्य करके नितिन गडकरी को अपमानजनक स्थिति में ला दिया था। वैसे गडकरी भी संघ के

निर्देश पर काम कर रहे थे, इसलिए मोदी ने भाजपा में राजनीतिक नियुक्तियाँ तय करने के संघ के अधिकार पर भी सवाल उठाए थे और इसे पसंद नहीं किया था।

इंदिरा गांधी की हत्या के बाद माना गया था कि करिश्माई राजनीति का दौर खत्म हो गया। उनका जनता पर नियंत्रण इतना सम्मोहक था कि उनके नाम पर लोग बिना किसी काबिलियत के चुनाव जीत जाते थे। पार्टी और मंत्रिमंडल पर पूरा नियंत्रण होने के कारण उन्होंने संविधान पालन के बजाय निजी निष्ठा पर विशेष बल दिया।

उनके अधिकारवादी व्यक्तित्व के नीचे भारत की लोकतांत्रिक संस्थाएँ लड़खड़ाने लगी थीं। प्रधानमंत्री बनने के दौरान और उससे पहले राजीव गांधी का व्यवहार भी दंभी रहा था। अप्रत्याशित बहुमत का नशा उनके सिर पर चढ़कर बोलने लगा था, 1989 में भारत में मंत्रिमंडलीय सरकार के बारे में अपनी किताब में समाजवादी मधु लिमये ने कहा था।[2] 1985 में मंत्रिमंडल का गठन करने के बाद उन्होंने इसे किनारे ही कर दिया था। दलबदल विरोधी कानून का निर्माण और पंजाब तथा असम समझौते मंत्रिमंडल को विश्वास में लिये बिना ही किए गए। सरकार किसी क्लब की तरह संचालित हो रही थी। मंत्री मनमर्जी से हटाए गए। राजीव के अहंकार का एक उदाहरण छत्तीस साल के अनुभवी विदेश सचिव जैसे वरिष्ठ नौकरशाह को प्रेस कॉन्फ्रेंस के दौरान ही हटाने का था।

प्रधानमंत्री नरसिंहराव ने चुनावी मैदान का सामना न करनेवाले वित्तमंत्री के जरिए और संसद् में कांग्रेस के बहुमत के बिना ही प्रमुख आर्थिक सुधार लागू किए, जिससे इस विचार को बल मिला कि बिना बड़े कद के नेतृत्व के भी सरकारें काम कर सकती हैं। वास्तव में, जनलोकप्रियता का नुकसान भी होता है। प्रभावहीन किंतु बुद्धिमान नेता बातचीत और समझौतों के जरिए अपेक्षित बदलाव ला सकते हैं, क्योंकि उनसे उनके सहयोगियों को खतरा नहीं होता। राव रिटायर्ड हो चुके थे और राजीव गांधी की हत्या के बाद हुए चुनावों में कांग्रेस के सबसे बड़े दल के रूप में उभरने पर उन्हें फिर से बुलाया गया था। प्रधानमंत्री बनने के बाद उन्होंने उपचुनाव लड़ा था। वित्तमंत्री मनमोहन सिंह

राज्यसभा के जरिए संसद् में लाए गए।

बाद के प्रधानमंत्रियों—एच.डी. देवेगौड़ा और इंद्रकुमार गुजराल द्वारा इन सुधारों को जारी रखना भी इस विचार को ही समर्थन देता है। 2004 में अटल बिहारी वाजपेयी अपने गठबंधन को जीत नहीं दिला पाए, इससे भी इस विचार को बल मिला। जनमत सर्वेक्षणों में उन्हें प्रधानमंत्री पद का सर्वश्रेष्ठ उम्मीदवार बताया जा रहा था। उनका व्यक्तित्व बहुत विशाल था। वे सबको साथ लेकर चलनेवाले नेता थे, जिन्होंने राजनीतिक प्रतिबद्धताओं से काफी आगे निकल गए थे। वे गठबंधन  की राजनीति के महारथी थे।

वाजपेयी राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के कामकाज से इतने ज्यादा आश्वस्त थे कि उन्होंने जीत के भरोसे में चुनाव तक समय से पहले करवा लिये। अपेक्षाकृत संकोची स्वभाव की सोनिया गांधी के नेतृत्ववाली कांग्रेस के हाथों उनकी स्तब्धकारी हार तथा संकोची और पार्श्व में रहनेवाले मनमोहन सिंह को सरकार का मुखिया बनाने से ऐसा लगने लगा था कि भारत में जोशीले भाषण करनेवाले और जनता को प्रभावित करनेवाले नेताओं के दिन लद गए हैं।

उन चुनावों के तुरंत बाद, राजनीतिक टीकाकार प्रतापभानु मेहता ने कहा था कि भारतीय राजनीति की संरचना में बदलाव हो चुका है और अब शक्तिशाली राष्ट्रीय नेताओं का अभ्युदय कठिन होगा।[3] पार्टियाँ निष्ठा की प्रेरणा देनेवाली मशीनें बन चुकी हैं। उदीयमान नेताओं में वजन नहीं दिखता और उनकी महत्त्वाकांक्षाएँ सीमा पार कर गई हैं। क्षेत्रीय क्षत्रप एक-दूसरे को खारिज करते हैं; सर्वसम्मति बनानेवाले तटस्थ नेताओं के केंद्र में बहुत अवसर हैं, मेहता का कहना है।

किसी भी मुख्यमंत्री या प्रादेशिक क्षत्रप के लिए अपने राज्य की सीमा लाँघ पाना बहुत कठिन सिद्ध हो रहा है, मेहता का आकलन बहुत हद तक सही है, लेकिन यह हाल के घटनाक्रमों को पढ़ पाने में सक्षम नहीं लगता। हालाँकि, मेहता ने संभावना खुली रखी थी। बहुत विशेष परिस्थितियों में या राजनीतिक कल्पनाशीलता के असाधारण कार्य के जरिए असाधारण नेता उभर सकते हैं। अगर मनमोहन सिंह का उत्थान गैर-करिश्माई राजनीति का चरमबिंदु

था, तो उनका बाद का कार्यकाल आत्म-विलोपन की राजनीति की सीमाएँ दरशाता है। लोग ऐसा नेता नहीं चाहते, जो उन पर पूरी तरह से हावी रहे; लेकिन वे ऐसा नेता भी नहीं चाहते, जिस पर दूसरा कोई हावी हो सके। मोदी उनके बिल्कुल विपरीत हैं।

मोदी का राष्ट्रीय राजनीति में उभरना शुद्ध इच्छाशक्ति की विजय है। अपनी इसी स्पष्ट इच्छाशक्ति के सहारे उन्होंने बाधाओं पर विजय हासिल की। मनमोहन सिंह की जोशहीन अच्छाई के कारण उनके पास अधिकार नहीं रहे। इससे मोदी को अपने आपको भारत के मुक्तिदाता के रूप में पेश करने में सहायता मिली। दमदार तरीके से अपनी बात रख पाने के प्रति मनमोहन सिंह की अनिच्छा के कारण लोग उनकी उपलब्धियाँ भूल गए। हालाँकि घोटाले, तेज और लगातार कायम मुद्रास्फीति, कमजोर वित्तीय प्रबंधन तथा विकास के कमजोर अवसर ने सब बेकार कर दिया, क्योंकि क्रियान्वयन कमजोर था और मंत्री अलग-अलग दिशा में जा रहे थे। इन सब कारणों से मोदी को उभरने का अवसर मिला। चकाचौंध में उनकी कई असफलताएँ भी छिप गईं।

हालाँकि वर्तमान परिस्थितियों में किसी करिश्माई नेता में नेहरू, इंदिरा गांधी और राजीव जैसा विस्तार नहीं हो सकता। एक पार्टी के प्रभुत्व की संभावना नहीं है। सत्तारूढ़ गठबंधन में सम्मिलित पार्टियों के नेताओं को साथियों के मंसूबों तथा सहयोगियों की माँगों का मुकाबला करना होगा। उनकी भेद्यता उनकी सदस्य संख्या के विपरीत अनुपात में होगी।

हालाँकि मौद्रिक, वित्तीय तथा निवेश नीतियाँ राष्ट्रीय स्तर पर बनाई जाती हैं, लेकिन 1991 के आर्थिक सुधारों ने भारतीय राज्यों को भी अपने विकास की राह चुनने के लिए काफी स्वतंत्रता दे दी। मुख्यमंत्री अपने-अपने राज्यों में प्रधानमंत्री की तरह राज चलाते हैं। अपनी पार्टियों के अंदर विपक्ष को वे खत्म कर देते हैं तथा मंत्रियों और विपक्ष की अनदेखी करते हुए मनमाने तरीके से नौकरशाहों का चयन करके निर्णयात्मक ढंग से कार्य करते हैं। गुजरात में मोदी निर्विवाद रूप से नेता हैं। क्या उनका स्वभाव ऐसा है कि वे मजबूत इच्छाशक्ति के मुलायम, मायावती, जयललिता और नीतीश कुमार जैसे नेताओं से निपट सकें? मोदी चुनौतियों से अनजान नहीं हैं। प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री

वास्तविक राष्ट्रीय टीम हैं, उन्होंने दिल्ली में एक भाषण में कहा था।[4] ऐसा क्यों मान लिया जाए कि मोदी की शैली पत्थर से बनी है और उसमें बदलाव नहीं हो सकता? दंगों और पहली विधानसभा जीत से पहले तक मोदी बहुत संकोची थे; वे व्यापारियों से सतर्क रहते थे, यह कहना है कि एक पूर्व सचिव का, जिसने राज्य सरकार और केंद्र में उद्योग, निवेश तथा व्यापार प्रोत्साहन जैसे विभाग सँभाले। वे एक राजनीतिक नौकरशाह हैं, यह उस राजनीतिक विश्लेषक का कहना है, जो उन्हें गुमनामी के दौर से देखता आया है। मुसलिमों और धर्मनिरपेक्ष भारतीयों ने उन्हें जननेता बना दिया।

मोदी को जनमानस की बहुत अच्छी समझ है। वे जानते हैं कि कब लोगों एवं सहयोगियों का इस्तेमाल करना है और कब उन्हें किनारे कर देना है। संपर्क बनाने में उनका कौशल कम नहीं है।

इस कारण वे सत्ता की राजनीति के महारथी बन गए हैं। हालाँकि उनकी प्रतिबद्धता भी है। उनसे काफी निकटता से जुड़े रहे एक वरिष्ठ नौकरशाह का कहना है कि अगर आपकी प्रतिबद्धता नहीं है, तो सत्ता आपका अनुसरण नहीं करेगी।

मोदी एक प्रतिबद्ध हिंदू राष्ट्रवादी हैं। 2001 में लिखी किताब 'ज्योतिपुंज' में उन्होंने संघ के उन नेताओं को श्रद्धांजलि दी, जिन्होंने उनका व्यक्तित्व निर्माण किया। मोदी कहते हैं कि मुझमें जो कुछ भी सर्वोत्तम है, सर्वश्रेष्ठ है, वह अधिकांश मुझे संघ से मिले संस्कार के कारण है। हालाँकि, लोकसभा चुनावों के दौरान वे सांप्रदायिक अपील करने से बचते रहे। वैसे मोदी के एक पुराने मित्र को उनसे ऐसी आशा नहीं है कि वे संघ के 'भारत पहले, धर्म बाद में' के मूल विचार को हलका करेंगे।

63 वर्ष की उम्र में मोदी भारतीय राजनीति के मानदंडों के हिसाब से युवा हैं। बाधाओं को कम करके आँके बिना, और यह मानकर कि वे साउथ ब्लॉक में आ जाते हैं, यह कहा जा सकता है कि मोदी सिर्फ एक कार्यकाल से संतुष्ट नहीं होंगे। वे लंबी दौड़ के धावक हैं और वे ऐसे नेता के रूप में याद किया जाना चाहते हैं, जिसने भारत के आगे महान् उपसर्ग लगाया।

उदारवादी उनसे आशा करेंगे कि वे विभाजक मुद्दों को कम-से-कम

स्थगित तो करें और हिंदू विचारकों को अलग रखेंगे। उनका समर्थन कर रहे कॉरपोरेट समुदाय के प्रबुद्ध लोग भी उनसे यही अपेक्षा करते हैं।

अगर मोदी अल्पसंख्यकों का दिल नहीं भी जीत पाते हैं, तो वे कम-से-कम उन्हें नाराज तो नहीं करना चाहेंगे। समान कानून, कश्मीर का विशेष दरजा खत्म करने तथा अयोध्या में राममंदिर निर्माण जैसे मुद्दों को महत्त्व देने से सामाजिक तनाव बढ़ेगा और निवेश का माहौल प्रभावित होगा। वैसे ये मुद्दे बीजेपी के पोस्टरों पर तो स्वाभाविक कारणों से रहेंगे ही, यही कहा जाएगा कि जब पार्टी को स्पष्ट बहुमत मिलेगा तो इन बिंदुओं पर काम किया जाएगा।

आर्थिक मोरचे पर मोदी से काफी अपेक्षाएँ हैं। विभिन्न रिपोर्टों में काफी कुछ सलाह दी जा चुकी है, जिन पर अमल करना होगा। उदारीकरण जारी है और उसके लिए जो आवश्यक है, वह तो करना ही है, उसे हासिल करने के लिए क्रियान्वयन महत्त्वपूर्ण होगा। निर्णयात्मक रूप से काम करने के लिए उनकी सरकार को सुसंबद्ध रूप से काम करना होगा।

मोदी को प्रधानमंत्री कार्यालय को मजबूत बनाना होगा। प्रधानमंत्री कार्यालय का इंदिरा गांधी के समय अपना अलग ही महत्त्व होता था। प्रधानमंत्री के सचिवालय के बारे में कहा जाता है कि पी.एन. हक्सर के समय उसका महत्त्व काफी हो गया था, जिन्हें इंदिरा गांधी ने अपना प्रमुख निजी सचिव बना लिया था। वहाँ से समानांतर सरकार चलती थी। लिमये कहते हैं कि मंत्रिमंडल सचिवालय शून्य हो चुका था।[5] हक्सर ही बैंकों के राष्ट्रीयकरण तथा भारत में अपनी रियासतों का विलय करनेवाले पूर्व राजाओं की पेंशन समाप्त करने के सूत्रधार थे।[6] इन्हीं नीतियों के बल पर इंदिरा गांधी अपने को गरीबों के मसीहा के रूप में पेश कर पाईं और सिंडिकेट कहलानेवाले पार्टी के दिग्गजों को कमजोर कर सकीं।

प्रधानमंत्री नरसिंह राव ने विदेशी मुद्रा संकट से पैदा हुए अवसर का इस्तेमाल करके भारत की अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाने में सफलता पाई। उन्होंने महत्त्वपूर्ण मंत्रालयों के लिए सही व्यक्तियों को चुना—मनमोहन सिंह और पी. चिदंबरम। सबसे ज्यादा अहम थे उनके प्रमुख सचिव अमरनाथ वर्मा, वे बहुत ही व्यावहारिक और सक्रिय अधिकारी थे। वे विस्तृत नियोजन, समन्वय,

निगरानी और आगे की काररवाई के साथ तेज क्रियान्वयन करवाते थे। लेखक और पूर्व कॉरपोरेट लीडर गुरचरनदास कहते हैं कि वर्मा का कार्यालय सुधारों के क्रियान्यवन का नियंत्रण कक्ष बन गया था। गुरुवार को आर्थिक मंत्रालयों के सचिवों के साथ बैठक होती थी और सप्ताहवार रणनीति पर विचार होता था। दास बताते हैं कि उस दिन किसी को भी दिल्ली से बाहर जाने की अनुमति नहीं थी। वर्मा परिणामों को संक्षिप्त रूप देते और कार्य विवरण तैयार करते थे। उनके आधार पर कैबिनेट के नोट तैयार किए जाते थे।

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के प्रमुख सचिव ब्रजेश मिश्रा थे, जिन्हें राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार का काम भी सौंपा गया था। राष्ट्रीय राजमार्ग कार्यक्रम और दूरसंचार सुधारों में प्रधानमंत्री कार्यालय उन्हीं के नेतृत्व में समन्वय करता था।

मनमोहन सिंह ने टी.के.ए. नायर को प्रधानमंत्री कार्यालय का मुखिया बनाया था, लेकिन वह प्रधानमंत्री की ही तरह शक्तिहीन था। राष्ट्रमंडल खेलों की तैयारियों को गति देने में अक्षम रहने के कारण वे काफी चर्चा में रहा, जबकि इन खेलों से भारत की प्रतिष्ठा दाँव पर लगी थी। नायर के 2011 में रिटायर्ड हो जाने के बाद पुलोक चटर्जी ने प्रधानमंत्री के प्रमुख सचिव का काम सँभाला और उन्होंने बिजली परियोजनाओं को कोयला आपूर्ति सुनिश्चित करने या आयात का प्रबंध करने पर कोल इंडिया को मजबूर करके नीतिगत जड़ता दूर करने की कोशिश की। हालाँकि यह 2012 में ही हो पाया जब पी. चिदंबरम वित्तमंत्री के रूप में वापस लौटे और बिजली, कोयला तथा राजमार्ग क्षेत्रों में 5 लाख करोड़ रुपए के निवेशवाली 300 परियोजनाओं को मंजूरी देने के लिए उन्होंने निवेश पर कैबिनेट कमेटी गठित की।

बात कैबिनेट की मंजूरियों से ही खत्म नहीं हुई। भारत के पर्यावरण संबंधी और भूमि अधिग्रहण कानून लाइसेंस परमिट राज के नए औजार बन चुके हैं। बड़े निवेश को आकर्षित करने के इच्छुक किसी भी नेता को वनवासियों और भूस्वामियों के हितों को खतरे में डाले बिना इन परियोजनाओं की मंजूरी में लगनेवाले समय को घटाना होगा।

अगले प्रधानमंत्री को श्रम, कृषि, अधोसंरचना और गैर-सामरिक क्षेत्रों

के सरकारी उपक्रमों के निजीकरण जैसे द्वितीय पीढ़ी के पेचीदा मसलों से निपटना होगा। मंत्रालयों का प्रदर्शन संबंधित मंत्रियों की क्षमता पर निर्भर करेगा। वाजपेयी मंत्रिमंडल के सुरेश प्रभु को सुधारोन्मुखी ऊर्जा मंत्री माना गया, लेकिन शिवसेना प्रमुख बाल ठाकरे ने उन्हें जल्दी ही हटवा दिया। भुवनचंद्र खंडूरी 'स्वर्णिम चतुर्भुज राजमार्ग' कार्यक्रम में सैनिक अनुशासन लाए। अरुण शौरी ने दूरसंचार क्षेत्र में राजस्व भागीदारी की व्यवस्था लागू की, जिससे दूर-संचार की दरें घटीं और मोबाइल स्वामित्व का विस्तार हुआ। विनिवेश मंत्री के रूप में उन्होंने सरकार के स्वामित्व को बनाए रखते हुए किस्तों में उनकी इक्विटी बेचने भर की जगह सरकारी उपक्रमों के निजीकरण करने का साहस दिखाया। यूपीए के पहले कार्यकाल में रघुवंश प्रसाद सिंह ने ग्रामीण विकास मंत्रालय में अपने कामकाज से सबको चकित कर दिया था। कपिल सिब्बल ने साबित किया कि विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी जैसे कम महत्त्व के मंत्रालय को भी महत्त्वपूर्ण बनाया जा सकता है; उन्होंने सुनामी और अन्य प्राकृतिक आपदाओं के लिए पूर्व चेतावनी प्रणाली स्थापित करवाई। लालू प्रसाद यादव ने रेलवे के कामकाज और वित्तीय प्रबंधन में सुधार किया। दिनेश त्रिवेदी उनके बहुत अच्छे उत्तराधिकारी हो सकते थे, लेकिन तृणमूल कांग्रेस की अध्यक्ष ममता बनर्जी ने उन्हें उतावलेपन में हटवा दिया।

अगले प्रधानमंत्री की प्राथमिकताओं की सूची नीचे दी जा रही है :

रेलवे के नवीनीकरण से अर्थव्यवस्था पर बहुआयामी प्रभाव पड़ेंगे। चीन में कम्युनिस्ट क्रांति के समय मात्र 22,000 किलोमीटर की रेलवे लाइन थी। उससे दो वर्ष पूर्व ही भारत स्वतंत्र हुआ था, लेकिन उसका रेल नेटवर्क चीन से ढाई गुना ज्यादा बड़ा था। चीन ने तभी से रफ्तार पकड़ ली थी। 1990 के दशक में उसने रेलवे को व्यापारिक लाइनों के साथ पुनर्गठित किया। संचालन को नीति निर्माण से अलग किया गया। राकेश मोहन समिति ने 2001 में भारतीय रेलवे के लिए भी इसकी अनुशंसा की थी, लेकिन इसका क्रियान्वयन नहीं हो सका। चीन का रेलवे अब उसकी अर्थव्यवस्था से भी ज्यादा गतिशील है। अमेरिका रेलमार्ग के बाद चीन की मालगाड़ियाँ दुनिया की सबसे व्यस्त भारवाहक हैं और वहाँ की सवारी रेलगाड़ियों में

दुनिया में सबसे ज्यादा यात्री सफर करते हैं।

चीन की मालगाड़ियों में हर साल तीन अरब टन से ज्यादा का माल ढोया जाता है; भारतीय रेलवे अब तक सिर्फ एक अरब टन का स्तर छू सकी है। 2008 के बाद से चीन ने 10,000 किलोमीटर हाईस्पीड ट्रेक बनाए हैं, जबकि भारत ने ऐसा कुछ नहीं किया।

यह सही है कि हाईस्पीड रेलवे की लागत बहुत ज्यादा पड़ती है और सामान्य तौर पर यह मुनाफादायक भी नहीं होती। पीचिंग-शंघाई रेल लाइन पर निवेश 33 अरब डॉलर रहा, जो कि तीन जॉर्ज बाँधों की लागत से ज्यादा है। यह लागत निकल पाने की संभावना नहीं है। हालाँकि हाईस्पीड ट्रेन से बहुत सारे फायदे हैं। वे बहुत तेजी से आ-जा सकती हैं और उनसे विमानों की तरह ज्यादा प्रदूषण भी नहीं होता। रेलमार्गों के किनारे नए शहरों के विकास तथा मौजूदा शहरों के विस्तार से अर्थव्यवस्था को बहुत तेजी मिलती है।

भारतीय रेलवे सुधारों से अछूती रही है। वह अब भी सरकारी विभाग के रूप में काम करती है। निर्णय प्रक्रिया बहुत धीमी है और लोगों के प्रति जवाबदेही एक तरह से गायब ही है, जबकि उसका सालाना बजट संसद् में पेश होता है। उसकी सेवाओं में गिरावट आ रही है। उसे सस्ता होना चाहिए, लेकिन वह निर्यात और घरेलू सामान की लागत बहुत बढ़ाती है। 2001 के बाद बनी तीन समितियों ने सुरक्षा और व्यावसायिक नवीनीकरण के सुझाव दिए हैं। अगले प्रधानमंत्री को उन सुझावों पर तेजी से अमल करना होगा। 2005 में दिल्ली और लुधियाना को मुंबई और कोलकाता से जोड़ने के लिए 3,300 किलोमीटर लंबे फ्राइट कॉरीडोर का प्रस्ताव आया था। उसे नियत समय सीमा, यानी 2017 तक पूरा किया जाना चाहिए। जब ये रेलमार्ग चालू हो जाएँगे, तो बहुत सारी मौजूदा क्षमता यात्रियों के आवागमन से मुक्त हो जाएँगी। जापान ने दिल्ली और मुंबई के बीच मौजूदा रेलमार्गों में सुधार, सिग्नल प्रणाली में सुधार और पूरी तरह से हाईस्पीड रेल पटरियों की तुलना में कम निवेशवाली सेमी हाईस्पीड ट्रेनों का प्रस्ताव किया है। सवारियों का तीव्र आवागमन, सुधरी सेवाओं और कम भाड़ा लागत से अर्थव्यवस्था को उसी तरह से मदद मिलेगी, जैसी कि वाजपेयी के राजमार्ग कार्यक्रम से

मिलेगी। रेलवे भारत के तेल खर्च में कटौती में मदद कर सकती है। माँग पर आरामदायक सीट या बर्थ उपलब्ध कराने से अगली सरकार को प्रवासियों समेत हर आय वर्ग के लोगों की सदाशयता हासिल होगी।

अगले प्रधानमंत्री को कोयला उद्योग के अराष्ट्रीयकरण और कोल इंडिया लिमिटेड से संबंध खत्म करने का प्रयास करना होगा, जो कि भारत के 80 फीसदी कोयले का उत्पादन करता है। इस उद्योग का 1971 और 1973 में दो चरणों में राष्ट्रीयकरण किया गया था। बिजली और इस्पात के क्षेत्र में निजी खनन की अनुमति दी गई थी।

भारत के पास कोयले का पाँचवाँ सबसे बड़ा सुरक्षित भंडार है, लेकिन 2013 में यह तीसरा सबसे बड़ा आयातक देश था।[7] कोयले की कमी के कारण करीब 40,000 मेगावॉट बिजली क्षमता अवरुद्ध हो रही है। कोयले के विराष्ट्रीयकरण विधेयक को 1997 में पेश किया गया था, लेकिन इसे कानून बन पाने लायक राजनीतिक समर्थन हासिल नहीं हो सका। हालाँकि कोयला केंद्र का विषय है, लेकिन जब कोयला क्षेत्रों के लिए जमीन अधिग्रहण की जरूरत होती है, तो खनन और खनन विकास के अधिकार राज्यों के पास रहते हैं। एक कोयले की खदान को खोलने में करीब दस साल लगते हैं और इसके लिए करीब सौ परमिटों की जरूरत पड़ती है। पर्यावरण या सुरक्षा के मानदंडों का पालन करनेवाले प्रतिस्पर्धात्मक कोयला खनन उद्योग से अर्थव्यवस्था को अभूतपूर्व तेजी मिलेगी।

अगले प्रधानमंत्री को सुनिश्चित करना होगा कि (6.3 लाख गाँवों में से) बिजली की सुविधावाले 5.9 लाख गाँवों को सचमुच बिजली मिले। इससे ग्रामीण मकानों में रोशनी के लिए होनेवाली केरोसिन तेल की खपत तथा सब्सिडी बिल में कमी होगी। कोल्ड स्टोरेज बढ़ेंगे; पूँजीगत सब्सिडी के बावजूद अब भी कोल्ड स्टोरेज पर्याप्त संख्या में मौजूद नहीं हैं, क्योंकि सीमित बिजली के कारण उनकी संचालन लागत बहुत बढ़ जाती है। बरबादी घटने से क़िसानों की आमदनी बढ़ेगी। इससे आपूर्ति बढ़ेगी और मुद्रास्फीति कम होगी। कृषि आधारित रोजगार के विकल्प के रूप में ग्रामीण उद्योगों का विकास किया जा सकता है। राज्यों को भी इस बात के लिए प्रोत्साहन दिया

जाना चाहिए कि वे खेती के बिजली कनेक्शनों के ग्रिड को घरेलू बिजली से अलग रखें। इससे भूजल संरक्षण में मदद मिलेगी और बिजली सब्सिडी बिल नियंत्रण में रहेगा। राज्यों को इस बात के लिए भी प्रेरित किया जाना चाहिए कि किसानों को सीधे क्रेताओं को बेचने की अनुमति दें, चाहे वे बड़े रिटेलर हों या कृषि प्रसंस्करक हों। आढ़तियों की ओर से इसका विरोध होगा, लेकिन उनसे निपटने में ही सरकार की कृषि क्षेत्र में सुधार करने की संकल्प-शक्ति की परीक्षा निहित होगी।

वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) कर सुधार प्रक्रिया को आगे बढ़ाएगा, जिसमें अप्रैल 2005 में मूल्य संवर्धित कर (वैट) में राज्यों द्वारा परिवर्तन, सेवा कर और उसके प्रगतिशील इस्तेमाल के कुछ सामानों पर छोड़, बाकी सब पर लागू करने और केंद्रीय उत्पाद-कर में सुधार करके, निर्माण प्रक्रिया में पहले से उत्पाद शुल्क (केनवैट) को श्रेय देना शामिल है। जीएसटी को 2010 से लागू किया जाना था, लेकिन बीजेपी और कांग्रेस के संबंध तल्ख हो गए, जिससे यह राजनीति में उलझकर रह गया था। जीएसटी केनवैट, सेवा-कर और वैट तथा राज्य स्तर के अन्य करों की जगह एकल कर के रूप में लागू होगी। हालाँकि दोहरी कर-प्रणाली के बारे में सहमति है, लेकिन निम्न बिंदुओं पर राज्यों के बीच असहमति बनी हुई है : क्या पेट्रोलियम उत्पाद और शराब इससे बाहर रखे जाएँगे; राज्यों के राजस्व हानि की क्षतिपूर्ति कैसे होगी; और क्या लेवी या प्रवेश कर संभव हो सकेगा। जीएसटी लागू करने के लिए एक सूचना प्रौद्योगिकी नेटवर्क स्थापित किया जा चुका है। वैट लागू करते समय राज्यों को कई शंकाएँ थीं, लेकिन पहले ही साल राजस्व में 14 प्रतिशत की, दूसरे साल 21 प्रतिशत की और उसके अगले साल 24 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। जीएसटी भी ऐसे ही फायदेमंद होगा।[8]

भारत की युवा आबादी और जनसंख्या संबंधी विभाजन के बारे में काफी चर्चा हो चुकी है। पिछले दशक में कौशल विकास के लिए काफी अच्छे कदम उठाए गए, लेकिन नौकरियाँ हैं कहाँ? भारत को जीडीपी में निर्माण का हिस्सा इस दशक के अंत तक 30 प्रतिशत से ऊपर करना होगा। पिछले दस सालों से यह 16 प्रतिशत के आसपास बना हुआ है। विकास के हमारे स्तर की

और तेजी से बढ़ रही पूर्वी एशियाई अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में यह बहुत कम है। सुयोग्य कॉरपोरेट लीडर वी. कृष्णमूर्ति की अध्यक्षतावाली राष्ट्रीय निर्माण प्रतिस्पर्धात्मकता परिषद् ने 2006 में एक अपेक्षित रिपोर्ट दी थी। उसी साल पहले विशेष आर्थिक क्षेत्र-अधोसंरचनात्मक और नियामक-अड़चनों से मुक्त निर्माण क्षेत्र के रूप में तैयार किए गए थे, ताकि हताश करनेवाली गतिविधियों को दूर रखा जा सके। हालाँकि कम्युनिस्टों ने सेज विधेयक पर मतदान के दौरान श्रम कानूनों में ढील की अनुमति नहीं दी, जिससे सेज रियल इस्टेट की चपेट में आ गए और जनभावना इनके विरुद्ध हो गई।

2012-13 के आर्थिक सर्वेक्षण में एक अध्याय इसी पर था कि व्यवसायों में अधिक उत्पादक रोजगार क्यों पैदा नहीं हो रहे हैं। अमेरिका के विपरीत, जहाँ छोटे उद्यम बहुत तेजी से विकास होते हैं, वहीं भारत में छोटे उद्यमों को छोटा ही रहने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है; 1 करोड़ रुपए से कम के टर्नओवर पर कोई सेवा कर नहीं लगता, ऐसे ही डेढ़ करोड़ तक के राजस्व पर कोई केंद्रीय उत्पाद शुल्क नहीं लगता। नतीजतन, यहाँ ऐसे बहुत सारे व्यवसाय हैं, जिनमें दस से कम लोग (मसलन, कपड़ा उद्योग में 85 प्रतिशत) काम करते हैं; मध्यम स्तर के उद्योग तो लगभग हैं ही नहीं। पंचानबे प्रतिशत कामगार अनौपचारिक क्षेत्र में हैं या औपचारिक क्षेत्र में बिना सामाजिक सुरक्षा के काम करते हैं। यह चिंताजनक बात है, इसलिए ऐसी प्रतिकूल रियायतों को खत्म किया जाना चाहिए, जिनके कारण उद्यमियों को अपना कामकाज छोटी-छोटी इकाइयों में बाँटने पर मजबूर होना पड़े। हमें स्थायी और अनौपचारिक रोजगारों के बीच एक मध्यस्थ रोजगार संरचना की भी जरूरत है, जिसे उचित पृथक्करण पैकेज, बेरोजगारी बीमा तथा अनुचित तरीके से नौकरी से हटाने से रोकने के प्रावधानों के साथ राजनीतिक दृष्टि से स्वीकार्य बनाया जाना चाहिए।

श्रम कानूनों में ढील देने के बारे में राजनीतिक सहमति बहुत कम है। एनडीए और यूपीए, दोनों की सरकारों ने इस दिशा में काम नहीं किया। श्रम मंत्रालय सँभालनेवाले मंत्री सुधार के पक्ष में नहीं रहे और न ही वे राजनीतिक आंदोलनकारी या उद्वेलक रहे। किसी ने भी 2002 के द्वितीय श्रम आयोग की सिफारिशें लागू करने की जहमत नहीं उठाई, जिनके तहत उद्यमियों को अनुमति

दी जानी है कि वे उद्यमों के पुनरोद्धार या व्यावसायिक मंदी के चलते कामगारों की संख्या में कमी करने के लिए उन्हें उचित मुआवजा देकर आंशिक या पूरी तरह से नौकरी से हटा सकते हैं।

चूँकि सम्मति बनाने में समय लगेगा, इसलिए अगली सरकार (जैसा कि सर्वेक्षण में सुझाव दिया गया है) को चाहिए कि वह राज्यों को प्रयोग करने की छूट दे और श्रम कानूनों में इस तरह के बदलाव करने की अनुमति दे, जिससे केंद्रीय कानूनों से टकराव की स्थिति पैदा न हो। ऐसे सबूत हैं कि कम कड़े कानूनोंवाले राज्यों में श्रम उत्पादकता ज्यादा है।

जब सरकार मिशन के रूप में परियोजनाएँ शुरू करती है, तो उनका लाभ लोगों तक पहुँचता है। इस तरह से ही मात्र सोलह वर्षों में पोलियो का उन्मूलन किया जा सका। व्यापक जनजागरूकता और टीकाकरण से पोलियो संक्रमण के मामले 1995 के बाद, एक साल में 2000 तक गिर गई, जबकि 1978 में पोलियो संक्रमण के मामले अनुमानतः प्रतिदिन 500 होते थे। पोलियो का अंतिम मामला 13 जनवरी, 2011 को सामने आया।

और अब बात उस तरीके की, जिसके जरिए अगला प्रधानमंत्री राष्ट्रीय सुरक्षा सरोकारों को ध्यान में रखते हुए निर्माण उद्योग को सशक्त कर सकता है। भारत दुनिया का सबसे बड़ा अस्त्र क्रेता देश है। जब हम हथियारों का आयात करते हैं, तो हम नौकरियों का निर्यात कर रहे होते हैं। वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय 74 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए प्रयास कर रहा है। 26 प्रतिशत की सीमा के कारण सिर्फ 4.12 मिलियन (बिलियन नहीं) एफडीआई ही 2001 की रियायतों के बाद आ सकी है। अल्प भागीदारी विदेशी कंपनियों को अपनी प्रौद्योगिकी बाँटने के लिए प्रेरित नहीं कर पाती। ब्रिटिश प्रधानमंत्री तथा फ्रांसीसी राष्ट्रपति के साथ 2013 में भारत के दौरे पर आए रक्षा आपूर्तिकर्ताओं ने तत्कालीन वाणिज्य मंत्री से कहा था कि अगर भारत स्वागत करे तो वे यहाँ निवेश कर सकते हैं।

रक्षा मंत्रालय ने ऐसा नहीं किया। उसका मानना है कि संयुक्त उपक्रमों में विदेशी निवेशकों को नियंत्रण देने से स्वदेशी डिजाइन और विकास पर रोक लगेगी। 8 रक्षा सरकारी उपक्रमों और 42 हथियार फैक्टरियों को लेकर

भी उसका रवैया अति संरक्षणवादी है। स्थानीय विकास तथा उत्पादन में लगनेवाले अधिक बजट खर्च का प्रतिफल नहीं मिलता, इसलिए शायद रक्षा मंत्रालय आयात करने को प्राथमिकता देता है। ऐसे में बीच का रास्ता निकल सकता है : 26 प्रतिशत की सीमा को सुरक्षा की कैबिनेट कमेटी की मंजूरी से चयनात्मक रूप से 49 प्रतिशत तक करने की छूट दी जाए।

भारतीय उद्योग संघों ने रक्षा मंत्रालय का समर्थन किया है। वे राष्ट्र के सामरिक हितों के बजाय अपने स्वयं के व्यावसायिक हितों को वरीयता देते हैं। उनका कहना है कि उच्च एफडीआई से भी प्रौद्योगिकी आसानी से नहीं आएगी, क्योंकि विदेशी भागीदार अपनी सरकारों के प्रति जवाबदेह हैं, जो उन पर पाबंदी लगा सकती हैं।

विदेशी आपूर्तिकर्ताओं के आने से भारतीय क्षमता क्षीण हो जाएगी, ऐसी आशंकाएँ व्यक्त की जाती हैं। भारतीय अनुसंधान और विकास इतना कमजोर नहीं है कि उनका मुकाबला न कर पाए। पृथ्वी और अग्नि मिसाइलें इसकी मिसाल हैं कि 1950 के बाद से भारत ने प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में बहुत लंबा सफर तय कर लिया है, पहले तो भारत में रक्षा अनुसंधान जैसी कोई चीज थी ही नहीं। भारत बड़े पैमाने पर निर्माण क्षमता के मामले में लड़खड़ाता नजर आता है। मुख्य युद्धक टैंक तथा हलके लड़ाकू विमानों जैसी रक्षा परियोजनाओं में देरी का एक यह भी कारण है। एक अन्य कारण भारत पर अंतरराष्ट्रीय संधियों के तहत मिसाइलों और परमाणु अस्त्र प्रौद्योगियों के विस्तार पर लगाई जा रही रोक भी है।

रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन ने 400 सरकारी और निजी क्षेत्र की आपूर्ति कंपनियों का नेटवर्क तैयार किया है, जो रॉकेट मोटर से लेकर लॉन्चर और कंप्यूटर तक, सबकुछ की आपूर्ति कर सकती हैं। स्वदेशीकरण का स्तर 1990 के दशक के 30 प्रतिशत से ऊपर उठकर करीब 55 प्रतिशत तक जा पहुँचा है। थोड़े और प्रयासों के जरिए इसे 70 प्रतिशत तक ले जाया जा सकता है।

भारत का चालू साल का रक्षा बजट डॉलर के वर्तमान मूल्य के अनुसार 40 अरब डॉलर है। उसके पास कई सालों से सबसे ज्यादा रक्षा उपकरण हैं।

रक्षा आधुनिकीकरण का उसका 623,000 करोड़ ($103 अरब) का कार्यक्रम है। विदेशी कंपनियों के लिए भारत में उत्पादन करने के लिए यह पर्याप्त आकर्षण है। यहाँ तक कि वे नवीनतम प्रौद्योगिकी नहीं भी देते, तो वे कम-से-कम रोजगार तो सृजित करेंगे ही। भारतीय लोग कौशल विकास करेंगे और निर्यात के लिए मजबूत निर्माण आधार तैयार करेंगे।

हमें अपनी ऑटोमोबाइल उद्योग से सीखना चाहिए। सौ प्रतिशत एफडीआई के कारण हमें कड़े पश्चिमी बाजार में अपनी कारें निर्यात करने का अवसर मिला है और हम सस्ती कार नैनो तैयार कर सके हैं। इसी तरह चीन बोइंग निर्माण इकाई हासिल करने या दुनिया भर के रेलवे में प्रौद्योगिकी देने में अपनी क्रयशक्ति का फायदा उठाता है। गुजरात ने अपने विकास मॉडल को चीन की तर्ज पर ही तैयार किया है। अगर मोदी अगले प्रधानमंत्री बनते हैं तो वे निश्चित ही उसने पूर्ववर्ती नेताओं की तरह सफल साबित होंगे।

## संदर्भ—


1. अदिति फडनीस, पॉलिटिकल प्रोफाइल्स ऑफ केबल्स ऐंड किंग्स, बीएस बुक्स, 2009
2. मधु लिमये, कैबिनेट गवर्नमेंट इन इंडिया, रेडिएंट पब्लिशर्स, 1989
3. प्रतापभानु मेहता, द एंड ऑफ करिश्मा, सेमिनार, 2004
4. 27 फरवरी, 2014 को दिल्ली में चार्टर्ड एकाउंटेंटों के सम्मेलन में मोदी का भाषण
5. मधु लिमये, कैबिनेट गवर्नमेंट इन इंडिया, रेडिएंट पब्लिशर्स, 1989
6. रेजीगिंग द ऐलीफेंट डांस : हक्सर स्मृति व्याख्यान, भारतीय रिजर्व बैंक के पूर्व गवर्नर डी. सुब्बाराव का 25 नवंबर, 2011 को दिया गया भाषण
7. राइटर्स ने वन टीम रिसर्च एजेंसी के हवाले से 22 जनवरी, 2014 को कहा था कि भारत का कोयला आयात 2013 तक 21 फीसदी बढ़कर 152 मिलियन टन हो गया है। बीपी पीएलसी के आकलन के हवाले से उसने बताया कि भारत के पास कोयले का पाँचवाँ सबसे बड़ा सुरक्षित भंडार है।
8. आर्थिक सर्वेक्षण


□□□
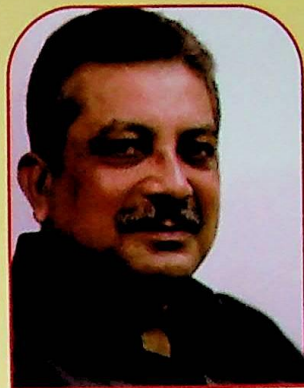
## विवियन फर्नांडीज

30 वर्षों से अधिक समय से पत्रकारिता में सक्रिय; प्रारंभिक 10 वर्ष 'द हिंदुस्तान टाइम्स', 'द ऑब्जर्वर ऑफ बिजनेस ऐंड पॉलिटिक्स' तथा 'इंडिया टुडे' में कार्यरत रहे। तदुपरांत नेटवर्क ग्रुप 18 के सी.एन.बी.सी.-टी.वी.-18 को नई ऊँचाइयाँ दीं। आर्थिक नीतियों और सुशासन में इनकी विशेष रुचि रही है।

## श्री नरेंद्र मोदी द्वारा लिखित पुस्तकें

## श्री नरेंद्र मोदी पर केंद्रित पुस्तकें
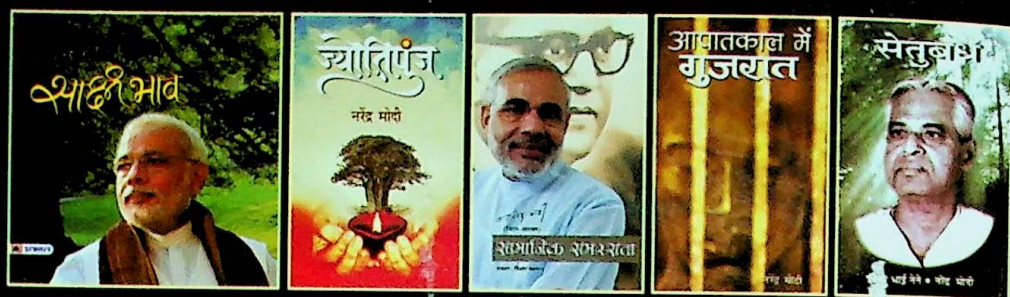
ISBN 978-93-5186-466-0
9 789351 864660
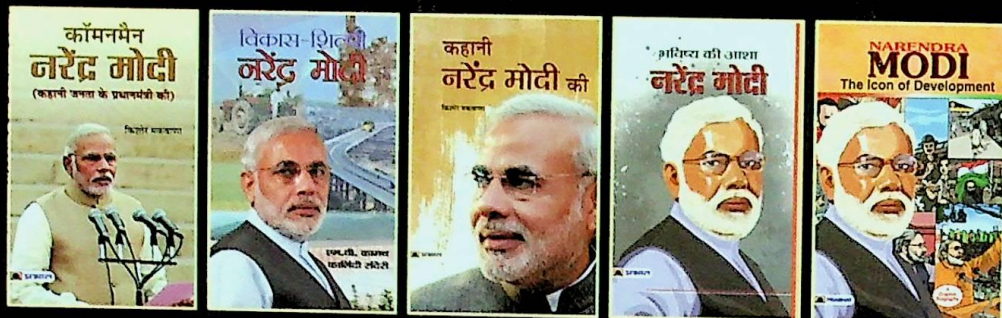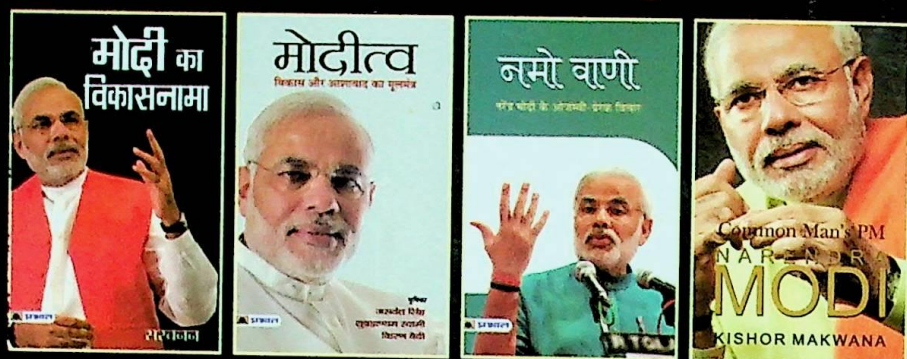
प्रभात
प्रकाशन
www.prabhatbooks.com

₹ 250/-